TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180554
UNIVERSAL
LIBRARY

पुष्यमित्र

गुरुदत्त

भारती साहित्य सदन - नई दिल्ली

प्रकाशक
©मकरद प्रकाशन
नई दिल्ली–१

●

वितरक
भारती साहित्य सदन
३०/६० कनाट सरकस, नई दिल्ली–१

●

प्रथम सस्करण
सितम्बर, १९५९

●

आवरण शिल्पी
पालबन्धु,
गाधीनगर, दिल्ली

●

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ
नवीन प्रेस, दिल्ली

भूमिका

मानव-चरित्र राजनीति की आधारशिला है और चरित्रहीनता राजनीति मे अवतरित होकर देश और राष्ट्र के ह्रास मे कारण होती है। चरित्रहीनता को राजनीति मे अवतरित होने मे समय लगता है। यही कारण है कि राज्य मे उच्छृंखलता अथवा भूल तुरन्त प्रभाव उत्पन्न नही करती।

इसको पाप का घड़ा भरना कहते है। यह माना जाता है कि घडा भर कर ही उछलता है। यही बात अशोक की नीति के विषय मे कही जा सकती है। अशोक ने राजनीति मे एक सम्प्रदाय का विशेष समर्थन किया था और वह सम्प्रदाय संन्यास धर्म को मानने वाला था, जो राज्य-धर्म कदापि नही हो सकता।

पचशील का राज्य-कार्य मे चलन अव्यवहारिक है। जहाँ तक किसी एक राज्य का, अपने देश के कार्य से सम्बन्ध है, पंचशील का एक सीमा तक, प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु अन्य राज्यो, विशेष रूप में अन्य राष्ट्रों से व्यवहार के समय तो पचशील सदा असफल रहा है।

मौर्यवंशीय अशोक ने बौद्ध पंचशील का प्रयोग अन्य राष्ट्रों के साथ भी किया। जब तक तो चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार के काल का तथा अशोक के अपने जीवन के पूर्व काल का दबदबा बना रहा, राज्य मे शान्ति बनी रही। ज्यो-ज्यों वह दबदबा पुराना और प्रभावहीन होता गया, पहिले देश के भीतर विद्रोह हुआ और पश्चात् विदेशीय आक्रमण होने आरम्भ हो गये।

जब-जब अशोक के उत्तराधिकारी यह अनुभव करते रहे कि उनकी पंचशील की नीति राज्य और राष्ट्र के ह्रास मे कारण हो रही है, तब-तब बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवक्ता उनको प्रेरणा देकर शान्ति और आत्मोन्नति के वाग्जाल मे फँसा कर अकर्मण्यता मे रत करते रहे ।

परिणाम यह हुआ कि अशोक के साम्राज्य का विघटन, जो उसके जीवन-काल में ही आरम्भ हो गया था, उत्तरोत्तर बढ़ता गया ।

मौर्यवंश के अन्तिम अधिकारी के राज्यकाल मे तो मौर्य साम्राज्य सुकड़कर एक छोटा-सा राज्य ही रह गया था । इस समय विदेशीय आक्रमणकारी भी बढ़ने-बढ़ते साकेत तक पहुँच गये थे, परन्तु राज्य की ओर से उनको रोकने का उपाय तक नही किया गया ।

तब मौर्यवंश को समाप्त किया गया और उसके स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार जिसका नाम शुंग था, राज्यगद्दी पर आया । शुंग परिवार की स्थापना करने वाला पुष्यमित्र था ।

इतिहास मे पुष्यमित्र के विषय मे बहुत कम लिखा मिलता है ; इस पर भी जो कुछ मिलता है, वह इस प्रकार है—

हर्षचरित में मौर्य वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ की हत्या के विषय में लिखा है—

"पुष्यमित्रस्तु सेनानी समुद्धृत्य बृहद्रथम् ।' सेना का निरीक्षण करते समय राजा का वध कर डाला ।

"सम्भवत बृहद्रथ अत्यन्त दुर्बल राजा था (प्रज्ञा दुर्बल) और पुष्यमित्र को सारी सेना की पूरी सहायता उपलब्ध थी ।

"शुंग, वर्ण के ब्राह्मण थे । विख्यात वैय्याकरण पाणिनी इनका सम्बन्ध भारद्वाज गोत्र से स्थापित करता है और आश्वलायन श्रौत सूत्र में उनका आचार्य कहा गया है ।"

आगे चलकर इतिहासकार लिखता है,

"हमें ठीक ज्ञात नहीं कि (आक्रमणकारी) यवन सेनापति कौन था । कुछ विद्वान् उसको डेमैट्रियस और अन्य उसको मिनैण्डर मानते है ।

"अश्वमेध का अनुष्ठान पुष्यमित्र के राज्यकाल की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी·····पतंजलि स्वयं इस यज्ञ में ऋत्विज बने।·····

"यदि हम दिव्यावदान और तिब्बती इतिहासकार तारानाथ का प्रमाण माने तो यह स्पष्ट है कि पुष्यमित्र का अधिकार पंजाब में जालन्धर और स्यालकोट तक था·····और मालविकाग्निमित्र के अनुसार पुष्यमित्र के साम्राज्य में विदिशा और नर्मदा तक के दक्षिण प्रान्त भी सम्मिलित थे।"

यह उद्धरण डॉक्टर रमाशकर त्रिपाठी के 'प्राचीन भारत का इतिहास' मे से लिया गया है।

वास्तव में इतिहास अपने को दुहराता है। जब-जब भी पंचशील जैसे सिद्धान्त का असीम प्रयोग राजनीति में हुआ है, तब-तब ही देश विदेशीय तथा अराष्ट्रवादियों से क्लान्त हुआ है।

आज भी भारत मे एक ऐसा ही परीक्षण हो रहा है। महात्मा गाँधी ने इस बौद्ध पचशील का रूपान्तर अहिंसात्मक व्यवहार तथा आन्दोलन का प्रचलन देश मे किया। इस प्रचलन से पूर्व भी स्वराज्य आन्दोलन देश मे चल रहा था और उसका प्रभाव भी हो रहा था। यदि रॉलेट कमेटी की रिपोर्ट पढ़ी जाय तो ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि १९०१ से आरम्भ हिंसात्मक आन्दोलन का प्रभाव अंग्रेजो मस्तिष्क पर अहिंसात्मक के प्रभाव से अधिक हुआ था। अंग्रेज भयभीत थे और राज्य मे हिन्दुस्तानियो को अधिक-और-अधिक सुविधाएँ देते जाते थे। यह कहना असंगत प्रतीत नहीं होता कि यदि वह दबाव जो क्रान्तिकारी एक ओर से और नरम दल वाले, विधानात्मक आन्दोलन द्वारा, दूसरी ओर से डाल रहे थे, जारी रहता, तो स्वराज्य १९३५ तक मिल जाता। यह स्वराज्य देश-विभाजन के बिना होता और देश में देश-प्रेम और देशीय सस्कृति और परम्पराओ मे निष्ठा की स्थापना रहती। परन्तु महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक आन्दोलन से एक वर्ष में स्वराज्य ले देने का वचन देकर ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न की कि सी० आर० दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू जैसे बुद्धिमान वकीलों से लेकर गाँव के भंगी, चमार तक महात्मा गाँधी के पीछे लग गये। सबने

महात्माजी के नेतृत्व मे न्यूनाधिक त्याग और प्रयत्न किया।

गाँधीजी के आन्दोलन का यह चमत्कारक विस्तार वैसा ही हुआ, जैसा महात्मा बुद्ध के काल मे बड़े-बड़े महाराजा, राजकुमार और राजकुमारियाँ अपना घर-बाहर छोड़कर, शिर मुंडा, पीत-वस्त्र धारण कर महात्मा के पीछे चल पड़े थे। महात्मा बुद्ध ने एक ही जन्म मे और बिना ज्ञान प्राप्त किये तथा बिना भले कर्म किये मोक्ष-प्राप्ति का आश्वासन दिया था। महात्मा गाँधी ने एक वर्ष मे ही एक करोड़ रुपया और एक करोड़ स्वयं-सेवक एकत्रित कर स्वराज्य प्राप्ति का विश्वास दिलाया था।

दोनो का आश्वासन मिथ्या था, परन्तु कौन है जो अनायास खीर पा जाने के लोभ को छोड सकता है? सफलता और असफलता का विचार छोड़ भी दिया जाय तो भी मिथ्यावाद के प्रचार से मानव-चरित्र मे पतन अवश्यम्भावी है। जो कुछ देश मे सदैव तथा सर्वत्र पंचशील के सिद्धान्त ने उत्पन्न किया, वह ही महात्मा गाँधी के सर्वत्र और सर्वदा अहिंसा के आचरण ने किया। दोनो ने अन्यायाचरण, असत्य भाषण, कुटिलता और क्रूरता करने वालो का विरोध भी छोड़ दिया।

देश विभाजन हुआ। इसका विरोध नहीं हो सका। प्रत्युत देश विभाजन की माँग करने वालो को सिर पर उठाकर मान और आदर का पात्र माना गया। इतना ही नहीं कि जो देश विभाजन की माँग तलवार की नोक पर करते थे, उनको सहन किया गया, प्रत्युत उनके अत्याचार के शिकार हिन्दुओ को दुष्ट, देशद्रोही और भीरु कहकर सम्बोधित किया गया।

यह सदा और सर्वत्र अहिंसा का सिद्धान्त मानने वालो का व्यवहार रहा है कि कलकत्ता मे डायरेक्ट ऐक्शन कराने वाले मिस्टर जिन्ना को कायदेआजम मानते थे और देश के लिए सर्वस्व निछावर करने वाले सावरकर और भाई परमानन्द इत्यादि व्यक्तियों को गद्दार कहकर सम्बोधन करते थे।

अहिंसावादी सर्वदा और सर्वत्र हिंसा को मानने वाले प्रबल विपक्षियों से मित्रता का व्यवहार करते देखे जाते है। विरोधियों के जूते खाते हुए

भी उनके सामने जी-जी कहने नहीं थकते, परन्तु अपने हितैषियों की निन्दा किया करते हैं। यही बौद्ध करते थे और यही गाँधीवादी करते आये हैं।

यहाँ स्थान नहीं कि १९२१ से लेकर आज तक की गाँधीवादी नीति की बौद्ध मीमांसा से समानता प्रकट करने के लिए उदाहरण दिये जाएँ। किंचित् गम्भीरता से इस काल के इतिहास और उसके परिणामों का अध्ययन किया जाय तो यह, स्वर्णसम चमचमाता, पंचशील का सिद्धान्त वास्तव में पीतलसम प्रतीत होगा।

इस सिद्धान्त का एक आश्चर्यकारक परिणाम यह हुआ है कि गाँधीजी का मानस पुत्र पण्डित जवाहरलाल हुआ है और पण्डित जवाहरलाल का मानस पुत्र कोई भारतीय स्टालिन होने वाला प्रतीत हो रहा है।

गाँधीजी का अहिंसात्मक सिद्धान्त का रूपान्तर पण्डित जवाहरलाल का पंचशील है। पंचशील के प्रभाव में ही पण्डितजी रूस और चीन को तो पंचशील के अनुयायी मानते हैं और देश तथा विदेश के डेमोक्रेटिक सत्ताओं को, जो मुख से पंचशील का व्यर्थ घोषण नहीं करते, शान्ति के शत्रु मानते हैं।

इति। इस विचार को प्रकट करने के लिये पुष्यमित्र तथा तत्कालीन परिस्थितियों को आधार बनाकर यह उपन्यास 'पुष्यमित्र' लिखा गया है।

इसमें इतिहास कम और कल्पना अधिक है ही। इस पर भी कल्पना में आधार है। सिद्धान्तों और विचारों में संघर्ष तो वास्तविक ही है। पंचशील का विकल्प है, 'यथायोग्य व्यवहार।"

इसके अतिरिक्त यह उपन्यास है। इससे किसी से द्वेष अथवा किसी के मान-अपमान करने का आशय नहीं।

—गुरुदत्त

प्रथम परिच्छेद

: १ :

पाटलीपुत्र मे राजपथ से एक ओर हटकर, एक वीथिका के एक विशाल गृह के प्रागण मे यज्ञवेदी बनी हुई थी। उस वेदी पर पुरोहित के स्थान पर एक ब्राह्मण कौशेय वस्त्र धारण किए बैठा मत्र उच्चारण कर रहा था।

वह बोल रहा था, "ओ श नो वात ॐ श नस्तपतु सूर्य शन· कनिक्रदद्देव पर्जन्योऽअभिवर्षतु। ओ स्वाहाः।"

इस प्रकार आहुति मे घी, सामग्री, समिधा होम की जा रही थी। इस यज्ञ मे यजमान था अरुणदत्त ज्ञानाचार्य, राजपुरोहित। आज अरुणदत्त के एकमात्र पुत्र पुण्यमित्र का उपनयन सस्कार हो रहा था। पुण्यमित्र दस वर्ष का मेधावी सुन्दर बालक था। वह अपने पिता से सस्कृत भाषा, गणित इत्यादि पढकर पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुका था।

यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिए सम्बन्धी तथा मित्रगण एक भारी सख्या मे उपस्थित थे। पूर्ण प्रागण अभ्यागतो से खचाखच भर रहा था।

अरुणदत्त के वाम आसन पर उसकी धर्मपत्नी भगवती बैठी प्रेमभरी दृष्टि से अपने पुत्र के ओजस्वी मुख को देख आनन्द से पुलकित हो रही थी।

यज्ञ समाप्त हुआ। आचार्य ने दोनो हाथो मे यज्ञोपवीत का सूत्र खोल तथा फैला मत्र उच्चारित किया, 'ओ यज्ञोपवीत परम पवित्र प्रजापतेर्यत्सहज पुरस्तात्, आयुष्यमग्रय प्रतिमुच शुभ्र यज्ञोपवीत बलमस्तु तेज.। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।'

पश्चात् सूत्र बाये कधे से ऊपर और दाहिने बाजू से नीचे कर बालक पुण्यमित्र को पहना दिया।

अब ब्रह्मचारी से यज्ञ कराया गया। जब संस्कार समाप्त हुआ तो सब आये हुए अभ्यागतों ने बालक को आशीर्वाद दे, बालक के माता-पिता को बधाइयाँ दीं। इस पर अरुणदत्त ने उठकर, हाथ जोड़ सबका धन्यवाद कर दिया।

मिष्ठान्न वितरित हुआ और सब लोग पलाश के पत्तों से बने दूनों में मिठाई ले-लेकर विदा हो गए। पुष्यमित्र भी अपने गुरु के साथ विदा होने लगा तो भगवती की आँखों में अश्रु भर आये।

आचार्य श्वेताश्वर ने देवी भगवती की आँखों को भरते देखा तो कहा, "देवी! तुम्हारा बालक महायशस्वी, तेजोमय और प्रतापी होने वाला है। इस तेजस्वी बालक से संसार का कल्याण हो, ऐसा हमें यत्न करना है।

"यह यहाँ माता-पिता के लाड-प्यार में होना सम्भव नहीं। बारह वर्ष तक यह मेरे संरक्षण में रहेगा और पश्चात् लौटकर माँ के वात्सल्य-पूर्ण हृदय को शान्ति प्रदान करेगा।

"देवी! समाज के इस विधान को धैर्य और शान्ति से स्वीकार करो।"

भगवती अपनी दुर्बलता पर लज्जा अनुभव करने लगी। उसने आँचल से अपने चक्षु पोंछे और अपने पुत्र के सिर पर हाथ फेर आशीर्वाद दिया। पश्चात् आचार्य श्वेताश्वर बालक पुष्यमित्र को लेकर अरुणदत्त के गृह से विदा हो गया।

इस समय पाटलीपुत्र में मौर्य वंशज देववर्मन् का पुत्र शतधन्वन् राज्य-गद्दी पर विराजमान था। जो कुछ राज्यकार्य में बौद्ध प्रभाव का ह्रास महाराज सम्प्रति के काल में हुआ था, वह बौद्धों को पुनः प्राप्त होता जा रहा था। सम्प्रति के काल में ब्राह्मणों और शैव मतावलम्बियों को जो मान प्राप्त हुआ था, वह धीरे-धीरे विलुप्त होता जा रहा था।

इस पर भी सम्प्रति के काल से राज्य-परिवार का एक पुरोहित होता था जो राज्य-परिषद् का सदस्य माना जाता था।

बौद्धों का प्रभाव इतना था कि राज्य-परिषद् के सात सदस्यों में तीन बौद्ध थे। अन्य चार में से एक महाराज स्वयं थे, एक अरुणदत्त था।

महामात्य भी एक ब्राह्मण था और सेनापति क्षत्रिय।

महाराज अशोक के नाम की महिमा गानकर बौद्ध सदैव महाराज शतधन्वन् को महाराज अशोक के पद-चिह्नों पर चलने की प्रेरणा देते रहते थे। मगध-साम्राज्य की आय उतनी नहीं रही थी, जितनी अशोक के काल में थी। इस पर भी बौद्ध-विहारों को दान-दक्षिणा उसी स्तर पर दिलवाई जाती थी।

: २ :

पुष्यमित्र अभी सात-आठ वर्ष का बालक ही था और उसका अभी उपनयन-संस्कार भी नहीं हुआ था कि एक दिन वह माँ के कहने पर कोपीनों के लिए वस्त्र क्रय करने पिता के एक परिचित वस्त्र-विक्रेता के यहाँ गया। जाते हुए वीथिका में ही एक स्त्री मैले, चिथड़े हुए वस्त्रों में, नंगे पाँव, एक बालिका को अंगुली पकड़ाये, बहुत थके हुए पगों से चलती हुई आती दिखाई दी। पुष्यमित्र ने समझा कोई भिखारिन होगी। इस कारण उसकी ओर ध्यान दिए बिना वह उसके समीप से निकल कर आगे बढ़ा। परन्तु उस स्त्री ने अन्य कोई पुरुष वीथिका में न देख उसको पुकार लिया। उसने कहा, "बालक!"

पुष्यमित्र खड़ा हो उस स्त्री का मुख देखने लगा तो उसने पूछा, "राज-पुरोहित का गृह कौन-सा है?"

"क्या काम है उनसे?" पुष्यमित्र ने आश्चर्य में पूछा।

स्त्री ने तनिक डाँट के भाव में कहा, "राजपुरोहित तुम हो क्या?"

"नहीं, वे मेरे पिता हैं।"

"काम तुम्हारी माँ से है, तुमसे नहीं।"

इस डाँट से पुष्यमित्र ने नम्र हो अपना गृह बता दिया। वह स्त्री उस ओर चल पड़ी।

पुष्यमित्र राजमार्ग पर वस्त्र-विक्रेता की दुकान पर पहुँचा। इस समय श्रावकों की एक मण्डली राजपथ पर से होती हुई उस ओर आती दिखाई दी। इस मण्डली में पाँच सौ के लगभग श्रावक थे। ये पीत-वसनधारी,

पाँव से नगे, सिर मुंडे हुए और बौद्ध सघ मत्र—'बुद्ध शरणं गच्छामि, धम्मं शरण गच्छामि, सघ शरणं गच्छामि' का उच्चारण करते हुए जा रहे थे। पथ के दोनों ओर आते-जाते नागरिक इनको देखते, माथे पर त्योरी चढाकर परस्पर कहते, 'व्यर्थ में खाने वाले, कोई भी सार्थक काम करने मे अयोग्य, ये पुनः इस नगर मे आए है। अवश्य कोई आडम्बर खडा करेगे।'

इस पर भी श्रावको की मण्डली इन कहने वालो की टीका-टिप्पणी की ओर कुछ भी ध्यान न देती हुई, अपनी धुन मे लीन, आगे और आगे बढती चली जा रही थी। जब यह मण्डली राजपथ पर से निकल रही थी, तो राजपथ के दुकानदार दुकानो से बाहर निकल, आदरयुक्त मुद्रा बनाकर इनको देखते थे। वैसे तो कोई भी दुकानदार इनको देख प्रसन्नता अनुभव नही करता था।

जिस दुकान पर पुष्यमित्र वस्त्र क्रय करने आया था, वह दुकानदार भी श्रावकों की मण्डली आती देख खडा हो गया था। जब सब श्रावक मत्र-गान करते हुए आगे बढ गए तो वह दुकानदार एक दीर्घ नि.श्वास छोड़ पुष्यमित्र से पूछने लगा, "बालक ! क्या चाहिए ?"

पुष्यमित्र ने अपनी माँग उपस्थित करने के स्थान पूछ लिया, "कौन थे ये ?"

"भगवान जाने कौन थे। आज इस राज्य मे पीत वस्त्रो की महिमा है। जिसने दो टके का रग ले वस्त्र रग लिए, उसका आदर होना ही चाहिए।"

पुष्यमित्र अभी बहुत ही कम आयु का था। इस पर भी समझ रहा था कि दुकानदार क्या कह रहा है ? वास्तव मे वह उसे पसन्द नही करता। इस कारण उसने पुन. पूछ लिया, "क्यों ?"

"तुम नही जानते बालक ! यह राजाज्ञा है। जब ये लोग किसी पथ पर निकले, तो प्रजा को आदरयुक्त मुद्रा मे खडे हो इनका स्वागत करना चाहिए और जब तक ये उस पथ पर से निकल न जाएँ, इस मुद्रा मे खड़े

रहना चाहिए।"

यह बात तो पुष्यमित्र के बाल-मस्तक को भी नही सुहाई। उसने कहा, "वाह! जिसका आदर तुम मन से नही करते, उसके लिए दिखावे की क्या आवश्यकता है? क्या हमारे मनो पर भी राजा राज्य करता है?"

"बालक! हम तो वैश्य है। यहाँ के तो ब्राह्मण भी इस अत्याचार का विरोध करने की सामर्थ्य नही रखते। जब देश मे ब्राह्मण ही तेजहीन हो गये है, तो फिर अब्राह्मणो का मान करना आवश्यक हो गया है।"

पुष्यमित्र कोपीनो के लिए वस्त्र क्रय करने आया था, परन्तु इस दुकानदार ने पूर्ण ब्राह्मण वर्ग की निन्दा की तो वह मन-ही-मन जलभुन गया, परन्तु वह इसका उत्तर नही जानता था। इस कारण चुप हो, वस्त्र क्रय कर अपने घर को लौट पडा। मार्ग मे वह विचार करता चला जा रहा था कि क्या सत्य ही ब्राह्मण तेजहीन हो गए है?

उसने अपने पिता से यह सुन रखा था कि एक सच्चे ब्राह्मण मे मिथ्याचरण को भस्म कर देने की शक्ति होती है। यदि यह सत्य है तो, वह मन मे विचार करता था कि दुकानदार का कहना सत्य है। यदि इस काल में कोई सच्चा ब्राह्मण होता तो यह अन्याययुक्त आज्ञा चल न सकती।

दुकानदार ने वस्त्र नापते हुए कहा था, मानो वह अपने आपको ही सुना रहा हो, "हमको भारी कर देना पडता है, परन्तु उसके प्रतिकार मे हमको कुछ नही मिलता। पूर्ण कर या तो राज्य-परिवार की सुख-सुविधा मे व्यय हो जाता है, अथवा इन श्रावकों के पेट में चला जाता है।"

दुकानदार की इस बात पर बालक पुष्यमित्र विचार करता हुआ घर की ओर आ रहा था। उसको ऐसा भास हो रहा था कि यह बात भ्रममूलक है। उसका पिता भी परिषद् का सदस्य है। भला इस प्रकार की बात सत्य कैसे हो सकती है?

घर पर पहुँच उसने अपने पिता को दुकानदार का पूर्ण वार्त्तालाप सुना कर पूछा, "पिताजी! वह दुकानदार सत्य कहता था क्या?"

"हाँ बेटा! शासन का सर्वप्रथम कार्य प्रजा की आततायियों से रक्षा

करना है। राज्य यह काम नही कर रहा।"

"पर क्यो नही कर रहा ?"

"इस कारण कि राज्य के सचालक यह विश्वास रखते हैं कि दुष्ट को सुधारने का उपाय उसको दण्ड देना नही, प्रत्युत उसको समझाना है। अतः जब कोई व्यक्ति चोरी करता है, तो दो मास के लिये किसी विहार मे ध्यान, तपस्या और बौद्ध मन्त्र का जाप करने के लिये भेज दिया जाता है।"

"तो इससे उनका सुधार नही होता क्या ?"

"कुछ सुधरते भी होगे, परन्तु अधिक सख्या में तो चोरी करने के लिए अधिक उत्साहित होकर आते है।"

"परन्तु पिताजी ! आप भी तो राज्य परिषद् मे है। आप ऐसा क्यो होने देते है ?"

"बेटा ! यह तुम अभी नही समझ सकोगे। कुछ बडे हो जाओ और पढ लिखकर विद्वान बन जाओ तो मेरी विवशता को समझ सकोगे।"

"परन्तु आप इन दुष्ट प्रमादी लोगो को श्राप देकर भस्म क्यो नही कर देते ?"

पिता हँस पडा। हँसकर उसने कहा, "मेरी तपस्या मे अभी कमी है।"

"तपस्या कैसे होती है पिताजी ! मै तपस्या करूँगा।"

"पहिले तुम्हारा उपनयन होगा। पश्चात् तुम विद्याध्ययन करोगे। तदनन्तर तपस्या कर तुम जान सकोगे कि देश तथा राष्ट्र का कल्याण किस बात मे है और वह कैसे सम्पन्न हो सकता है।"

यह काल था जब कि पूर्ण देश यह अनुभव कर रहा था कि देश तथा समाज मे ह्रास हो रहा है। इस पर भी कोई नही जानता था कि इस ह्रास को किस प्रकार रोका जाये। बात ठीक थी। देश को तपस्वी, मेधावी तथा कर्मनिष्ठ ब्राह्मणो की आवश्यकता थी।

: ३ :

पुष्यमित्र माँ को वस्त्र देने गया तो उस स्त्री को, जिसको चिथड़ों में उसने वीथिका में देखा था, माँ के पास बैठे देखा। वह स्त्री आँखों से अश्रु

बहा रही थी। माँ ने उसको नए वस्त्र पहिनने के लिए दिए थे और बीस रजत उसके सम्मुख रखे हुए थे।

पुष्यमित्र ने माँ को वस्त्र दिए तो माँ ने वह भी उस स्त्री को देते हुए कहा, "इस लडकी के लिए कपडे बनवा लेना। और मै चाहती हूँ कि तुम कुछ दिन यहाँ ठहरकर विश्राम करो। भीतर एक आगार रिक्त पड़ा है, उसमे ठहर सकती हो।"

"नही भगवती ! मै जिस उद्देश्य से यहाँ आई थी, वह जब पूर्ण नही हो सकता तो मै जाती हूँ। इसके पिता की इच्छा थी कि इसकी शिक्षा वही, महर्षि जी के आश्रम मे हो। सो इसको वहाँ पहुँचा दूं। पश्चात् ही निश्चिन्त होऊँगी।

"तुमने मुझको पहिचान लिया और मेरी सहायता की है, मै तुम्हारी ऋणी हूँ।"

इतना कह वह स्त्री बालिका की अगुली पकड और वस्त्र तथा रजत उठा, हाथ जोड नमस्कार कर गृह से बाहर निकल गई। पुष्यमित्र उस स्त्री को जाते हुए देखता रह गया। जब वह चली गई तो उसने अपनी माँ से पूछा, "माँ ! यह कौन थी ?"

"बेटा ! मेरी एक सखी है। हम दोनो एक ही आश्रम मे पढ़ती थी। इसका विवाह स्थानेश्वर के प्रकाड विद्वान श्री निखिलेश्वर जी से हुआ था। यह बच्ची, उन्ही पडित जी की लडकी है।

"स्थानेश्वर पर यवनो का अधिकार हो गया और इसके पति उस झगडे मे मारे गये है। इनके घर को आग लगा दी गई। यह बेचारी ज्योत्यों कर अपनी और इस बच्ची की जान बचाती हुई यहाँ आ पहुंची है।

"अब यह महर्षि पतजलि के आश्रम मे अपनी लड़की को छोड़ने जा रही है।"

"परन्तु माँ ! एक ब्राह्मण को यवनों ने क्यो मारा है ? उसके घर को आग क्यों लगा दी है ?"

"इसके पति ने यवनो को स्थानेश्वर से निकाल देने के लिए षड्यंत्र

किया था। वह षड्यत्र सफल नही हुआ। पडित निखिलेश्वर पकड कर सूली पर चढा दिये गये और यह भाग आई है।"

"परन्तु माँ! एक ब्राह्मण ने राजा के विरुद्ध षड्यत्र क्यो किया था? यह तो राजद्रोह के तुल्य हो गया न?"

"बेटा! वह यवनाधिपति जिसके विरुद्ध प० निखिलेश्वर ने षड्यत्र किया था, वहाँ का राजा नही था। वहाँ का सम्राट तो शतधन्वन् है। यवनाधिपति तो अनधिकारी आक्रमणकर्ता है। अतएव ब्राह्मण ने कोई अनुचित बात नही की थी। वास्तविक सम्राट शतधन्वन् ने उसकी सहायता नही की?"

"सम्राट ने क्यों सहायता नही की?"

"वह भीरु है। वह मूर्ख है और···।" वह कहती कहती रुक गई।

पुष्यमित्र पिता के वचन सुनकर आ रहा था। उस पर माँ के कथन ने रग चढा दिया। वह उत्कट इच्छा करने लगा कि शीघ्र ही उसका उपनयन हो, वह वेदाध्ययन करे, तपस्या करे और इस प्रकार पूर्ण ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर देश मे से भीरुता तथा अज्ञानता का नाश करे।

समय पर पुष्यमित्र का उपनयन सस्कार हुआ और वह आचार्य श्वेताश्वर के साथ विद्याध्यन के लिए उसके आश्रम मे चला गया।

पुष्यमित्र की शिक्षा होने लगी। समय पाकर वह वेद, शास्त्र और इतिहास का ज्ञाता हो गया। शिक्षा के पूर्ण काल मे वह अपने मन से, न तो वस्त्र-विक्रेता के कथन को कि 'सच्चे ब्राह्मण नही रहे, इसी कारण राज्य मे अब्राह्मणों की पूजा होती है', और न ही माँ के कथन को कि 'राजा भीरु है, मूर्ख है', निकाल सका। वह यत्न करता रहा था कि देश तथा जाति की विडम्बना को समझे और इसकी चिकित्सा करे।

उसने भारत-युद्ध की कथा पढी थी। इसमें उसने कृष्ण का अर्जुन को उपदेश भी पढा था। उसके पढने से उसके मन मे प्रकाश होने लगा था।

अर्जुन निरुत्साह हो युद्ध करने से पीछे हट रहा था। कृष्ण ने उसको कहा था, 'यह क्लीवता तुम्हारे अन्दर कैसे आ गई? तुम क्षत्रिय हो।

युद्ध करना तुम्हारा धर्म है। इन मरने वालों को मरते देख तुम भयभीत हो गए हो क्या? तुम भीरु हो क्या? यह व्यवहार तुमको घोर नरक मे ले जाने वाला सिद्ध होगा।'

इस मीमासा को पढ पुष्यमित्र के मन मे मार्ग स्पष्ट हो रहा था। कृष्ण ने अर्जुन के हाथ मे धनुष-बाण पकडा दिया था। उसको युद्ध मे प्रवृत्त कर दुष्टों को दमन किया था।

पाण्डवो के भाई दुर्योधन इत्यादि महादुष्ट थे। उनको मारकर पृथ्वी का भार हलका करना था। कृष्ण ने भाइयो मे युद्ध कराकर यह कार्य सम्पन्न किया था।

परन्तु, पुष्यमित्र विचार करता था, अर्जुन और युधिष्ठिर के पास सात अक्षौहिणी सेना थी। साथ ही कृष्ण-जैसा नीतिज्ञ योगी उनका मार्ग-द्रष्टा था। इस कारण ही तो वे युद्ध मे सफलता प्राप्त कर सके थे।

अर्जुन भयभीत था और कृष्ण ने उसकी आत्मा मे जीवन का सचार किया था। कृष्ण ने अर्जुन को समझाया था कि वह राज्य के लिए युद्ध नही कर रहा, प्रत्युत वह तो 'विनाशाय दुष्कृताम' अर्थात् दुष्टो के विनाश के लिए युद्ध कर रहा है। दुष्टो का विनाश तो होना ही चाहिए।

पुष्यमित्र को तात्कालिक परिस्थिति के अध्ययन से यह पता चला था कि भारत मे वही क्लीवता आ गई है, जो किसी समय अर्जुन मे उत्पन्न हुई थी।

शिक्षा समाप्त हुई और पुष्यमित्र घर लौटा। माता-पिता उससे घर-गृहस्थी मे लग जाने की आशा करते थे, परन्तु पुष्यमित्र अपने विचारो मे लीन इधर-उधर भटकता दिखाई दे रहा था।

: ४ :

एक दिन पुष्यमित्र अपने पिता के सम्मुख उपस्थित हो कहने लगा, "पिता जी! मै अपने देश तथा जाति के उद्धार के लिए एक विपुल प्रयत्न करना चाहता हूँ। इसके लिए मै अपने मन मे एक योजना बना चुका हूँ। आप मुझको आशीर्वाद दे, जिससे मै अपनी योजना मे सफल हो सकूँ।"

पंडित अरुणदत्त अपने पुत्र की इस बात को सुन अवाक् बैठा रह गया। वह इसका अर्थ नहीं समझ सका। वह यह तो जानता था कि पुष्यमित्र पढ़-लिखकर योग्य हो गया है और उसके मुख पर ब्रह्मचर्य का तेज देदीप्यमान हो रहा है। वह यह भी समझता था कि देश और राष्ट्र घोर पतित अवस्था में है और इसके उद्धार की आवश्यकता है। पुत्र के कथन से वह अब विचार करने लगा कि क्या उद्धार का यह कठिन काम वह कर सकेगा ?

उसको विदित था कि धर्म तथा जाति में ह्रास का कारण राज्य-परिवार की दुर्बल तथा दूषित मनोवृत्ति है। क्या पुष्यमित्र राज्य परिवार की इस मनोवृत्ति को सुधार सकेगा ? उसके मन में तो कई बार आ चुका था कि मौर्य वंश की, अशोक के काल से चली आ रही परम्परा को निकाल देने के लिए इस वंश को ही शून्य करना पड़ेगा। परन्तु यह कैसे होगा, वह नहीं जानता था।

इस पर भी वह पुत्र को इस शुभ कार्य से मना करना नहीं चाहता था। इस कारण बहुत ही विचारोपरान्त उसने पुष्यमित्र को मौर्य परिवार में घटी एक घटना सुना दी। उसने कहा, "देखो बेटा ! मैं इसी परिवार में घटित एक घटना का वर्णन करता हूँ। कदाचित् इससे तुम्हारा मार्ग-दर्शन हो सके।

"सम्राट अशोक का नाम तुमने सुना ही होगा। उसका एक पुत्र कुणाल था, जो अशोक की सबसे छोटी रानी के कुचक्र से चक्षु-विहीन कर दिया गया था।

"अशोक अभी जीवित था और राज्यगद्दी पर विराजमान था कि कुणाल प्रौढ़ हो गया और उसका पुत्र सम्प्रति युवा हो गया। अशोक स्वयं वयोवृद्ध हो चुका था।

"इस समय तक अशोक ने बौद्धों तथा विहारों को दान दे-देकर राज्यकोष रिक्त कर रखा था। साथ ही अहिंसामार्ग का मिथ्यारूप ग्रहण कर राज्य अरक्षित एवं अव्यवस्थित था। परिणाम यह हुआ कि राज्य के

दूर दूर प्रान्तो मे विद्रोह होने आरम्भ हो गये। उस समय ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि अशोक वृद्ध हो गया है और किसी युवा पुरुष को राज-गद्दी पर बैठना चाहिए। सबकी दृष्टि सम्प्रति पर थी। वह सुन्दर, मेधावी युवक था। कुणाल चक्षुविहीन होने से उचित अधिकारी नही समझा गया। अशोक भी चाहता था कि सम्प्रति ही गद्दी पर बैठे।

"परन्तु बौद्ध भिक्षु कुणाल का पक्ष लेते थे। कुणाल बौद्ध मतावलम्बी था और सम्प्रति शैव था। अत. विवाद खडा हो गया। कुणाल के पक्ष मे पूर्ण बौद्ध सम्प्रदाय था। सम्प्रति अशोक के समर्थन पर भी निस्सहाय था।

"सम्प्रति की सहायतार्थ एक तेजस्वी ब्राह्मण वज्रबाहु खडा हो गया। उसने सम्प्रति को बौद्धो के कुचक्र से निकाल कर एक स्वतन्त्र स्थान पर खडा कर दिया और दोनो एक सेना निर्माण कर पाटलीपुत्र पर अधिकार करने चल पडे।

"इस बीच अशोक राज्याच्युत कर कही अन्यत्र भेजा जा चुका था और कुणाल राज्याधिकारी माना जा चुका था। इस पर भी राज्य मे सम्प्रति की सेना का विरोध करने की क्षमता नही थी। अत: पिता-पुत्र मे सन्धि हो गई और कुणाल नाम मात्र का राजा रह गया। वास्तविक राज्य का कार-भार सम्प्रति के हाथ मे आ गया।

"इस पर भी पुत्र के मन मे पिता के प्रति श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो गई और इसके परिणामस्वरूप राज्य को बौद्धो के दुष्प्रभाव से रिक्त नही किया जा सका। अत: राज्य में वह दुर्बलता, जो अशोक के काल मे उत्पन्न होने लगी थी, बढती गई। वह राज्य जो गाधार तथा कपिश से लेकर काम-रूप देश तक और हिमालय से लेकर कावेरी तक विस्तृत था, टूटने लगा। दूर-दूर के प्रदेश स्वतन्त्र राज्य बनने लगे। यहाँ तक कि अशोक के सम्बन्धी भी जहाँ-जहाँ पर थे, स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर बैठे।

"अब सम्प्रति का पर-पौत्र बृहद्रथ राज्य कर रहा है। महाराज शतधन्वन् के काल से तो विदेशियो के भी आक्रमण होने आरम्भ हो गये है।"

पुष्यमित्र इस कथा को सुनकर एक परिणाम पर पहुँचा कि देश मे

क्षत्रिय-वर्ग का अभाव वर्तमान दुर्दशा का परिणाम है। वज्रबाहु ने क्षत्रिय-वर्ग की सृष्टि तो की थी, परन्तु उसमे कुछ दोष रह गया था; अन्यथा सम्प्रति सुधार को अन्तिम ध्येय तक ले जा सकता था। वह त्रुटि क्या थी, इसका विचार कर पुष्यमित्र अपनी योजना मे से, उसे दूर रखने के लिए प्रयत्न करना चाहता था।

एक बात उसको समझ आ रही थी। वह थी क्षत्रिय-वर्ग के अभाव के साथ-साथ ब्राह्मणो के नेतृत्व मे त्रुटि। अत: गम्भीर भाव धारण कर, अपने पिता से आशीर्वाद ले, वह अपने आगार मे अपनी योजना के परिमार्जन के लिए चला गया।

: ५ :

महाराज बृहद्रथ को राज्यगद्दी पर बैठे तीन वर्ष हो चुके थे। इन तीन वर्षो मे उसने तीन विवाह किये थे। बृहद्रथ की तीनो रानियाँ अपने-अपने सम्बन्धियो के लिए धन, भूमि अथवा राज्य मे पदवी की माँग करती रहती थी। सबसे बडी रानी विदिशा का भाई लक्ष्मणपुर मे आयुक्तक था। उसका पत्र आया था कि उसको दो लक्ष स्वर्ण की अत्यन्त आवश्यकता है।

एक दिन महाराज के पास तीनों रानियाँ बैठी थी कि विदिशा ने अपने भाई के पत्र का उल्लेख करते हुए कहा, "महाराज ! लक्ष्मणपुर से भाई का पत्र आया है कि सेना के अभाव मे कृषको ने तथा दुकानदारो ने कर देने से इन्कार कर दिया है। पूर्व के आयुक्तक ने धन को बचाने के लिए सेना का विघटन कर दिया था और अब कर प्राप्त करने के लिए सैनिको की आवश्यकता है। नवीन सेना-निर्माण के लिए दो लक्ष स्वर्ण की अत्यन्त आवश्यकता है।"

विदिशा की इस माँग को सुनकर महाराज ने कहा, "यह माँग सर्वथा युक्तियुक्त है। हम राज्य परिषद् में इतना धन स्वीकार करवा कर भेज देगे।"

"परन्तु महाराज !" विदिशा ने कह दिया, "इतना धन तो राज्य-

कोष मे है नही ।"

"तो फिर हम क्या कर सकते है ? धन कहाँ से दिया जा सकता है ?"

"पद्मा विहार पर प्रतिवर्ष दो लक्ष से ऊपर व्यय किया जाता है। इस वर्ष उसको धन न दिया जाय ।"

"यह बहुत कठिन है ।"

"क्यो ?"

"तुम नही जानती विदिशा ! जैसे मै अपनी प्रिय रानियो का व्यय बन्द नही कर सकता, उसी प्रकार विहार का व्यय बन्द नही किया जा सकता ।"

इस पर सौम्या, महाराज की दूसरी रानी, कुछ उद्विग्न भाव मे कहने लगी, "महाराज ! आप हमारी तुलना इन सिर मुडो से कर हमारा अपमान कर रहे है । देखिये, मै एक उपाय बताती हूँ । मेरे पिता लक्ष्मणपुर मे आयुक्तक बना दिये जायँ । मुझे विश्वास है कि वे आपसे बिना एक भी स्वर्ण लिए, वहाँ नवीन सेना का निर्माण कर सकेगे और कर प्राप्त कर आपको भेज सकेगे ।"

महारानी सौम्या के पिता का नाम वीरभद्र था और वह सेना मे एक सेनानायक था । अपनी लडकी का विवाह बृहद्रथ से कर आज तक उसने किसी भी सुविधा की माँग नही की थी । इस कारण महाराज ने इस योजना को स्वीकार करते हुए कहा, "यह ठीक है । हम महारानी विदिशा के भाई को किसी अन्य स्थान का आयुक्तक बना देगे ।"

परन्तु विदिशा को इसमे अपना और अपने भाई का अपमान प्रतीत हुआ । उसने कहा, "महाराज ! ऐसा नही होगा । मुझे विश्वास है कि वीरभद्र जी भी, लक्ष्मणपुर मे जाकर, कुछ कर नही सकेगे और उनको भी स्वर्ण की आवश्यकता पडेगी ।"

"महाराज ! परीक्षा कर देखना चाहिए ।"

यह वाद-विवाद अभी आगे चलता, परन्तु इसी समय प्रतिहारिन ने आकर सूचना दी कि महामात्य चन्द्रभानु किसी अत्यावश्यक कार्य से

महाराज से मिलना चाहते है।

महारानियाँ अन्त.पुर के भीतरी आगारो मे चली गई तो महामात्य ने आगार मे प्रवेश कर नमस्कार की और अपने आने का आशय बता दिया। उसने कहा, "महाराज ! अभी-अभी कौशाम्बी से एक गुप्तचर यह समाचार लाया है कि गान्धार सैनिकों ने आक्रमण कर कौशाम्बी पर अधिकार कर लिया है और आस-पास के गाँव मे लूटमार मचा दी है।"

"ओह ! तो गान्धार भारतवर्ष मे इतनी दूर तक आ पहुँचे है ?"

"हाँ महाराज ! पिछले बीस वर्षो से वे एक-एक गाँव पर अधिकार कर अपने राज्य की वृद्धि करते चले आ रहे है। इससे पहिले समाचार आया था कि उन्होने हस्तिनापुर पर अधिकार जमा लिया है।"

"परन्तु तब हमने अपना विरोध पत्र उनको भेजा था। उसका क्या परिणाम हुआ ?"

"महाराज ! हम अपने धर्म से बँधे हुए सबके कल्याण का चिन्तन करते है। हम निर्वाण-पथ पर अग्रसर हो रहे है और पथ विचलित होने के भय से अहिंसा करने मे सकोच करते है। परन्तु ये गाधार हमारी भावना का आदर नही करते। महाराज ! गाधार मानव नही, पशु है। मानवो के साथ मानवता का सा व्यवहार तो ठीक है, परन्तु पशुओ के साथ मानवता का व्यवहार अयुक्ति-सगत है।"

"महामात्य ! यदि ऐसा है तो भगवान तथागत ने यज्ञो मे पशु बलि का विरोध क्यो किया था ?"

"महाराज ! पशुओ के स्वभाव वाला मनुष्य पशुओं से भी भयकर होता है।"

"अच्छा ऐसा करें। आज सायकाल राज्य परिषद् की बैठक बुला ले। राज्य परिषद् मे इस समस्या पर विचार किया जायगा।"

महामात्य इससे प्रसन्न नही था। वह जानता था कि बौद्धों के हठ के कारण राज्य-परिषद् मे पुनः वही निर्णय होगा, जो पिछली बार हस्तिनापुर पर गाधारों के आक्रमण के समाचार पर हुआ था। इस पर

भी वह महाराज की आज्ञा सुन चुपचाप उठ, नमस्कार कर चला गया।

: ६ :

वीरभद्र बृहद्रथ का स्वसुर था। उसकी महाराज का स्वसुर बनने की किंचित् मात्र भी इच्छा नही थी, परन्तु जब महाराज ने सौम्या को देखा तो उस पर मोहित हो गये और फिर वीरभद्र उसका महाराज से विवाह करने के लिए विवश हो गया।

विवाह हुआ तो वीरभद्र ने प्रयत्न किया कि महाराज क्षत्रियो का सा व्यवहार करे और राज्य की रक्षा का प्रबन्ध करे। इसी प्रयत्न मे उसने एक दिन, जब वह महाराज से मिलने गया था, कह दिया. "महाराज ! यदि आपका व्यवहार क्षत्रियो जैसा होता, तो ये यवन इतनी दूर तक न चले आते।"

"वीरभद्रजी ! जब राज्य-परिषद् मुझको युद्ध की सम्मति नही देती तो मेरा दोष कैसे हो गया ?"

"परन्तु महाराज ! यह राज्य परिषद् भी तो आपने ही निर्माण की है। जब राज्य-परिषद् मे आपने शूद्र रखे है तो वे आपको क्षत्रियों के योग्य सम्मति कैसे दे सकेंगे ?"

"कौन शूद्र है हमारी परिषद् में ?"

"बौद्ध, वर्ण-व्यवस्था को नही मानते। अतः वे शूद्रो से भी नीच अर्थात् वर्ण-सकर है।"

इस पर तो महाराज को क्रोध चढ आया। उन्होंने कह दिया, "वीर-भद्रजी ! आप सौम्या के पिता है, इसलिए हम आपको क्षमा करते है। अन्यथा राज्य-परिषद् के इस अपमान पर आपको प्राण-दण्ड मिलना चाहिए था। अब आप जा सकते है।"

वीरभद्र वहाँ से चला आया। वह पुनः कभी महाराज से मिलने नही गया और राज्य-परिषद् मे उसकी उन्नति पर विरोध होता रहा।

वीरभद्र की पत्नी का एक भाई शीलभद्र था। वह गुप्तचर विभाग में कार्य करता था। महामात्य ने उसकी नियुक्ति कौशाम्बी मे की हुई थी।

शीलभद्र ही कौशाम्बी से यवनों के आक्रमण का समाचार लेकर आया था।

महामात्य को समाचार देकर जब वह वीरभद्र तथा अपनी बहिन से मिलने आया तो उन्होने भी समाचार जानने की उत्सुकता प्रकट की। शीलभद्र ने बताया, "मुझको कौशाम्बी तब भेजा गया था, जब यवन हस्तिनापुर पर अधिकार कर चुके थे। वहाँ, पिछले वर्ष ही, यह चर्चा चल पडी थी कि यवन कौशाम्बी पर शीघ्र ही आक्रमण करेगे। मैने यह समाचार सविस्तार लिखकर पाटलीपुत्र भेज दिया था।

"मैने अपना सन्देह वहाँ के आयुक्तक सोमप्रभ को भी बताया। सोमप्रभ बौद्ध उपासक था। मेरे इस समाचार का आधार यह था कि एकाएक कौशाम्बी मे यवनो की संख्या बढने लग गई थी।

"सोमप्रभ ने भी पाटलीपुत्र सूचना भेजी, परन्तु न तो उसे और न ही मुझे कोई उत्तर आया कि क्या करना चाहिए।

"परिणाम यह हुआ कि दो मास पूर्व एकाएक दो लक्ष गान्धार सैनिक कौशाम्बी को घेरा डाल बैठ गये। वहाँ के सेनानायक ने युद्ध की योजना बना ली, परन्तु सोमप्रभ ने समझौता करना उचित समझा। उसने एक शान्ति आयोग यवन सेनापति के पास भेजा और सन्धि कर ली। सन्धि की शर्तो मे यह निश्चय हुआ कि बिना रक्तपात कौशाम्बी यवनों को दे दी जाय और इसके प्रतिकार मे यवन लोग कौशाम्बी की प्रजा के धन, सम्पद् तथा मान की रक्षा करे।

"इस सन्धि के अनुसार कौशाम्बी यवनों के हाथ में दे दी गई। यवनाधिपति डोमैट्रियस कुछ दिन पश्चात् वहाँ पहुँच गया। इस समय तक यवनों का नगर पर पूर्ण रूप से अधिकार हो चुका था। यवन अच्छे-अच्छे भवन, सुन्दर वस्तुएं और युवा स्त्रियाँ अपने लिए लेने लगे। कुछ डरा-धमका कर, कुछ छल कपट से तथा कुछ बलपूर्वक।

"इस पर सोमप्रभ ने डोमैट्रियस के सम्मुख उपस्थित होकर सन्धि के नियमों का स्मरण कराया। डोमैट्रियस ने पूछ लिया, 'तुम कौन हो ?'

"सोमप्रभ ने कहा, 'मैं यहाँ का आयुक्तक हूँ। मैने ही आपके सेना-

पति से सन्धि की थी ।'

'तुमसे सन्धि अमान्य है । तुम पराजित हो । हम विजयी है और पराजित की विजयी के साथ सन्धि नही होती ।'

'महराज !' सोमप्रभ ने कहा, 'सन्धि तो एक प्रकार का वचन-पत्र होता है । श्रीमान् जैसे शक्तिमान और माननीय व्यक्ति के लिए वचन-भंग शोभा की बात नही है ।'

"डोमैट्रियस को इस पर क्रोध चढ आया । उसने कहा, 'तुम हमारा अपमान कर रहे हो ।'

'नही श्रीमान् ! मै आपके प्रतिनिधि द्वारा दिये गये वचन आपको स्मरण करा रहा हूँ ।'

'तुम मूर्ख हो ! हम तुमको प्राणदंड की आज्ञा देते है ।'

"सोमप्रभ तो वही उसी समय मार डाला गया । उसकी सम्पत्ति राज्याधिकार मे ले ली गई और उसकी स्त्री तथा कन्याओ को लूट लिया गया । इस पर तो नगर-भर में धाँधली मच गई । जो जिसके हाथ में आया और जिस स्त्री पर, जिसकी दृष्टि पडी, वह उसने अपने खड्ग के बल पर हथिया ली ।"

इस कथा को सुन कर वीरभद्र की आँखों से खून उतरने लगा । उसकी पत्नी पद्मा के अश्रु बहने लगे । इस पर भी वे कुछ नही कर सकते थे ।

: ७ :

शीलभद्र गुप्तचर विभाग मे भेजे जाने से पूर्व सेना में था । सेना मे उसके कई मित्र तथा परिचित थे । वह सेना-शिविर मे उनसे मिलने गया तो उसने देखा कि एक ब्राह्मणकुमार को घेर कर कई नायक बैठे है । उस मंडली में उसके भी मित्र थे । मित्रों ने जब उसे पहिचाना तो उठकर उससे गले मिलने लगे । शीलभद्र ने बताया कि वह कौशाम्बी पर यवनों के आक्रमण तथा वहाँ के रक्तपात की सूचना लेकर आया है । उस ब्राह्मण-कुमार ने उससे विस्तार में कौशाम्बी का समाचार पूछ लिया और शीलभद्र ने सविस्तार वर्णन कर दिया ।

सैनिक तो महाराज और राज्य-परिषद् के सदस्यों को गाली देने लगे। यह परिस्थिति उनकी ही बनाई हुई थी। ब्राह्मणकुमार ने उनको धैर्य से परिस्थिति पर विचार करने का आग्रह करते हुए कहा, "इसमे महाराज का इतना दोष नही। यह तो उस वातावरण का दोष है, जो बौद्ध जीवन-मीमासा ने पिछले छः-सात सौ वर्ष से इस देश में बनाया है। मै तो इसका यही उपाय समझता हूँ, जो मैने आपको बताया है।"

यह ब्राह्मणकुमार पुष्यमित्र ही था। पुष्यमित्र ने सबसे पूर्व सेनापति से बातचीत कर उसको अपने पक्ष मे किया था। सेनापति ने अपनी असमर्थता बताई कि इस पुरानी सेना से उद्धार-कार्य सम्पन्न नही हो सकता। इस पर पुष्यमित्र ने अपनी योजना उसके सम्मुख रख दी। यही योजना वह सेनानायको को समझा रहा था, जब शीलभद्र कौशाम्बी का समाचार लेकर वहाँ आया। पुष्यमित्र की योजना थी कि सेनानायक, जो सैनिक शिक्षा दे सकते है, सेना से अवकाश लेकर गाँव-गाँव मे फैल जायँ और वहाँ के युवको को एकत्रित कर, उनको समझा कर सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार करे। इस प्रकार एक वर्ष मे ही दो लक्ष सैनिक शिक्षा प्राप्त कर, बीस सहस्र पुरानी सेना के साथ महाराज के सम्मुख उपस्थित हो यह माँग उपस्थित करे कि यवनो को देश से निकालने के लिए युद्ध की-घोषणा कर दी जाय।

पुष्यमित्र ने यह समझाया कि यह कार्य अवैतनिक किया जाना चाहिए, परन्तु नवीन सेना के लिए शस्त्रास्त्र तथा गणवेश बनवाने के लिए धन एकत्रित किया जायगा। यह धन सेट्ठियो से प्राप्त होगा।

उसने पाटलीपुत्र के प्रमुख सेट्ठी धनसुखराज से भी अपनी योजना पर बातचीत की थी। यह धनसुखराज वही सेट्ठी था, जिसकी दुकान पर सात वर्ष की आयु का बालक पुष्यमित्र वस्त्र क्रय करने गया था। पुष्य-मित्र अपनी शिक्षा प्राप्त कर जब से लौटा था, इस सेट्ठी से मिलता रहता था और अपनी योजना पर उससे विचार-विनिमय करता रहता था।

धनसुखराज पुष्यमित्र की योजना से पूर्णतया सहमत था, परन्तु वह

कुछ भयभीत भी था। वह समझता था कि यदि राजा को इसका ज्ञान हो गया तो यह देशद्रोह माना जायगा और उनको सूली पर चढाया जा सकता है। इस पर भी अब पानी नाक तक चढ चुका था। पूर्ण नगर में कौशाम्बी की लूटमार तथा अत्याचार के समाचार फैल चुके थे और लोगों मे, मुख्यतया धनी वर्ग मे, यही कुछ निकट भविष्य में पाटलीपुत्र मे होने की आशका घर कर चुकी थी। इसी कारण पुष्यमित्र की योजना भययुक्त होने हुए भी, वह इसमें सहायक होना चाहता था।

सेनानायको को अपनी योजना भली-भाँति समझाकर पुष्यमित्र सेठ धनसुखराज के पास जा पहुँचा। उसने सेठ से कहा, "धर्ममूर्ति ! मै अपनी योजना का श्रीगणेश कर आया हूँ। अब मैं चाहता हूँ कि आप लोग मिल कर धन एकत्रित करें, जिससे नवीन सेना के लिए गणवेश तथा शस्त्र इत्यादि निर्माण करने का कार्य आरम्भ किया जा सके।

धनसुखराज ने पुष्यमित्र के मुख पर ध्यान से देखते हुए कहा, "कल मै शिव मन्दिर मे पूजा करा रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम पुरोहित बन पूजा कार्य सम्पन्न करो। नगर भर के परिचित सेट्ठी वहाँ एकत्रित होगे। तुम उनके सम्मुख अपनी योजना रखना। आवश्यकता हुई तो मैं तुम्हारी बात का समर्थन कर दूंगा।

अगले दिन पुष्यमित्र पूजा के समय मन्दिर मे जा पहुँचा। धनसुख ने उसको पुरोहित के आसन पर बैठाया और स्वय यजमान बन बैठ पूजा करने लगा।

इस पूजा मे धनसुखराज के बहुत से सम्बन्धी, मित्र इत्यादि उपस्थित थे। प्रायः सभी व्यापारी थे और करोडपति से लेकर साधारण आय वाले, सभी श्रेणी के लोग थे।

पूजन हुआ और पूजा के पश्चात् धनसुखराज ने सब उपस्थित जनों को सबोधित कर कहा, "आज की पूजा मे पुरोहित के आसन पर राज-पुरोहित पं० अरुणदत्त के सुपुत्र पं० पुष्यमित्र विराजमान है। अब ये आपसे एक विशेष निवेदन करना चाहते हैं। मुझे आशा है कि आप इनकी

बात को ध्यानपूर्वक सुनेगे और उस पर गभीरता पूर्वक मनन करेगे ।"

इस परिचय के पश्चात् पुष्यमित्र ने कहना आरम्भ कर दिया । उसने अपनी बात महाभारत युद्ध के कारणो को बताते हुए आरम्भ की । उसने कहा, "दुर्जन मनुष्य समझाने से कभी नही समझता । दुर्योधन आदि कौरवों को बार-बार समझाया जाता था कि वे अपने भाइयो से सरलता का व्यवहार रखे, परन्तु वे सदैव कुटिलता का व्यवहार रखते रहे । जब वे अपने भाइयो को पाँच गाँव तक देने को तैयार नही हुए तो युद्ध अनिवार्य हो गया । एक बार युद्ध आरम्भ हुआ तो प्रत्येक प्रकार के छल, कपट नीति और प्रयोगो से युद्ध जीता गया । भगवान कृष्ण ने अपने प्रवचन मे यह बात स्पष्ट कर दी कि 'परित्राणाय साधुनाम् विनाशायच दुष्कृताम्' इस युद्ध का उद्देश्य है ।

"इसी प्रकार," पुष्यमित्र का कहना था, "नन्द परिवार के लोग व्यसनी, दुराचारी, अभिमानी तथा मूर्ख हो गये थे । इसलिए महाराज चाणक्य ने एक दासी पुत्र को खडा कर नन्दों का विनाश कराया और यहाँ पर एक अति सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना की ।

"आज देश की समस्या कुछ भिन्न है । देश के भीतर से कुछ विशेष हानि नही हो रही, जितनी विदेशीय आक्रमणकारियो से हो रही है ।

"अतः हमको उन विदेशीयो का मुखतोड़ उत्तर देना चाहिए । महाराज तथा बौद्ध श्रावक अभी तक इन आक्रमणकारियो को समझाने का यत्न करते रहे है कि उनका व्यवहार उचित नही, परन्तु ये यवन लोग, दुर्योधन की भाँति अपना अनाचार छोड नही रहे । अब स्थिति असह्य हो चली है और हमारा कर्तव्य है कि हम कृष्ण की भाँति युधिष्ठिर अर्थात् महाराज बृहद्रथ की विजय करायें और दुष्ट विदेशीय आक्रमणकारियों को परास्त कर देश से बाहर निकाल दे ।

"युधिष्ठिर की भाँति हमारे महाराज अत्यन्त सरल चित्त और शान्तिप्रिय हैं । वे रक्तपात पसन्द नही करते और जो कुछ विदेशीय अपने अधिकार में कर चुके हैं, उनको देने को तैयार हो गये है; परन्तु डोमैट्रियस

,दुर्योधन की भाँति अपनी दुष्टता छोडने को तैयार नही और निरपराध नागरिको को मार-पीट तथा अपमानित करने मे सकोच नही करता ।

"इस समय हमारा कर्तव्य है कि हम महाराज की सहायता करें, जिससे वे डोमैट्रियस को परास्त कर सके । ऐसा करने के लिए मेरी यह योजना है कि एक विशाल, सुदृढ और शक्तिशाली सेना का निर्माण किया जाय और इसके द्वारा देश को विदेशियों से मुक्त किया जाय ।

"मैंने नवीन सैनिक भरती करने का कार्य आरम्भ कर दिया है । इन नवीन सैनिकों को वेतन नही दिया जायगा । ये स्वेच्छा से देश तथा जाति के उद्धार के लिए अपना तन-मन अर्पण करने को तैयार हो जायँगे । इनको सैनिक शिक्षा देने के लिए हमारे सेनानायक अवैतनिक कार्य करेंगे । इस पर भी शस्त्रास्त्र के लिए तथा इन नवीन सैनिको के गणवेश के लिए धन की अत्यन्त आवश्यकता है और मै देश के धनी-मानी लोगो से इस अर्थ धन की भिक्षा माँग रहा हूँ ।

"यह सुझाव दिया जा रहा है कि यह सेना महाराज बृहद्रथ निर्माण करे । सुझाव बहुत सुन्दर है, परन्तु महाराज ने अभी तक इस कार्य को नही किया । इस न करने का कारण भी हम सबको विदित है ।

"हमही, जो देश की रक्षा से लाभ उठाने वाले है और देश के पराधीन हो जाने से जिनको हानि होने वाली है, इस कार्य को करने के अधिकारी है । जो लोग महाराज को सेना-निर्माण करने से मना करते है, उनका देश मे अपना कुछ भी नही ।

"मेरी योजना इस प्रकार है कि सेना भरती कर, उसको शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित कर महाराज की सेवा में भेट कर दी जाय । यदि तो वे इस भेट को स्वीकार कर लें तो निस्सन्देह डोमैट्रियस से युद्ध होगा और विजय हमारी होगी । यदि महाराज इस भेट को स्वीकार नही करेंगे, तो हम स्वयं डोमैट्रियस पर आक्रमण कर उसे देश से बाहर कर देगे ।

"जब विदेशीय यहाँ से निकल जायेगे तब पुनः विजित देश हम मगध-सम्राट को भेंट मे दे देगे ।"

इस योजना को सुन प्रथम प्रतिक्रिया तो यह हुई कि सबके सब सेट्ठी स्तब्ध बैठे रह गये। जब बात मस्तिष्क मे बैठने लगी तो अनेकानेक शकाएँ उपस्थित होने लगी।

एक सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र था। सबसे पहिले उसने ही शका उपस्थित की। उसने पूछा, "यह राज्य-कार्य है। इसको हम अपने हाथ मे कैसे ले सकते है ?"

"यह राज्य-कार्य हम अपने हाथ मे नही ले रहे। इस कार्य को सेना-नायक इत्यादि ही करेगे और वे इसको करने के योग्य है। आपने तो केवल वही कार्य करना है, जो अब तक करते आ रहे है। अर्थात् राज्य-कार्य चलाने के लिए धन देना। राज्य को धन हम खड्ग की नोक पर विवश होकर देते है। यहाँ तो एक ब्राह्मण देश और समाज के कल्याण के लिए भिक्षा माँग रहा है।

"यदि आप समझते है कि मै दान पाने का पात्र हूँ और कार्य कल्याण-मय है तो धन तो आप ही देगे।"

दूसरा प्रश्न था, "एक राज्य मे दो सेनाएँ कैसे हो सकती है ?"

पुष्यमित्र का कहना था, "यह नवीन सेना प्रथम सेना का अग ही होगी। केवल इसका कार्य आक्रमणकारियो से युद्ध करना होगा, जो पहली सेना करने के योग्य नही है।"

"यह देश-द्रोह नही होगा क्या ?"

"नही, यह देश की विधर्मियो से रक्षा के निमित्त होगा। जो कार्य देश की रक्षा के निमित्त किया जाय, वह देश-द्रोह कैसे हो सकता है ?"

"यदि महाराज किसी प्रकार भी युद्ध करने की आज्ञा न दे तो ?"

"तब जनता यह युद्ध बिना राजा की अनुमति के चलायगी।"

"यह कैसे पता चले कि जन-साधारण युद्ध चाहता है ?"

"देहातों में नव सेना निर्माण का कार्य होगा। यदि जनता नही चाहेगी तो सेना में भरती नहीं होगी। यदि आप लोग धन नही देगे तो यह समझा जायगा कि आप युद्ध नही चाहते।"

इस प्रकार चिरकाल तक प्रश्नोत्तर होते रहे। तदनन्तर धनसुखराज

ने अपना वक्तव्य दे दिया। उसने कहा, "स्थानेश्वर, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर और कौशाम्बी मे यवन सेना ने अधिकार कर लिया है। यह बात निश्चित ही है कि यदि उनको रोका न गया तो वे एक दिन पाटलीपुत्र पर भी अधिकार करने के लिए आक्रमण कर देगे। तब पाटलीपुत्र मे वही कुछ होगा, जो अन्य स्थानो पर हुआ है। वहाँ पर धन-सम्पद् लूट लिया गया है। युवको की हत्या कर दी गई है और स्त्रियो से बलात्कार किया गया है।

"हम ऐसा नही चाहते। इस कारण सेना तो निर्माण करनी ही पडेगी। महाराज उस सेना का प्रयोग करते है तो ठीक है, अन्यथा जाति के क्षत्रिय-वर्ग इसका प्रयोग करेगे।

"हम जो धनीवर्ग मे से है, धन देगे तो क्षत्रिय जाति के लोग पूर्ण जाति की रक्षा के लिये युद्ध करेगे।"

इस प्रकार बात निश्चित हो गई। एक अर्थसमिति बना दी गई और धन एकत्रित होने लगा।

पहले पाटलीपुत्र के राजपथ पर, पश्चात् पाटलीपुत्र के अन्य भागों में और तदनन्तर मगध राज्य के अन्य स्थानों पर मगध संरक्षण समितियाँ बनाई गई। धन आने लगा और सेना के लिए शस्त्र, अस्त्र तथा गणवेश बनाए जाने लगे।

: ८ :

राज्य-परिषद् की बैठक मे कौशाम्बी पर हुए यवन आक्रमण के समाचार पर विचार-विनिमय हो रहा था। परिषद् मे महामात्य चन्द्रभानु, सेनापति विद्रुम, राजपुरोहित अरुणदत्त, सेठ नीलमणि कोषाध्यक्ष, सेठ महाकान्त प्रमुख न्यायाधीश, महाप्रभु बादरायण और श्रावक सुनन्द सदस्य थे और सभी इस बैठक मे उपस्थित थे।

महाराज के पधारने पर महामात्य ने कौशाम्बी से आये गुप्तचर का समाचार सुनाया। पश्चात् महाराज ने कुछ उत्तेजना के स्वर मे कहा, "मौर्य-राज्य सिन्धु नदी तक फैला हुआ था। यह घटता-घटता कौशाम्बी

तक रह गया है। साथ ही हमारी प्रजा पर जो घोर अत्याचार हुआ है, वह हम सहन नहीं कर सकते। मैं चाहता हूँ कि मत्री मडल इस आँधी को रोकने का कोई उपाय करे।"

"परन्तु महाराज !" राजपुरोहित का प्रश्न था, "अभी तक इसके विरोध के लिए कुछ उपाय किया गया है अथवा नही ?"

उत्तर महामात्य ने दिया। उसका कहना था, "हमारे देश तथा धर्म की नीति यह रही है कि बातचीत कर समस्या का सुझाव ढूँढा जाय। इसके लिए हम कई बार प्रयत्न कर चुके है; परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस का यवनो पर कोई प्रभाव नही पड रहा। हमने लिखा था कि हम मानव-समाज एक मानते है। हम गान्धार तथा भारतीयो मे कोई अन्तर नही मानते। यदि गान्धार इस देश मे प्रभुता प्राप्त कर रहते है, तो हमारा उन से वैमनस्य नही। हम यह चाहते है कि वे भी मानव के आत्म-सम्मान की रक्षा करे। इस सब कुछ लिखने का कोई उत्तर नही आया और यवनो का व्यवहार बिगडता ही जा रहा है।"

अरुणदत्त ने कहा, "महाराज ! यवनो से युद्ध की घोषणा कर दी जाय। जो समझाने से नही समझते, उनको अपनी शक्ति का परिचय देना ही होगा।"

इस पर नीलमणि कोषाध्यक्ष ने कह दिया, "पहिले शक्ति एकत्रित की जाय तब ही तो शक्ति का परिचय दिया जा सकता है।"

"तो हमारा इतना बडा साम्राज्य क्या शक्ति-विहीन है ?"

"हाँ पुरोहित जी ! शक्ति का स्रोत धन है और हमारे कोष मे कुछ सहस्र स्वर्ण से अधिक कुछ नही।"

"इस वर्ष की आय किधर गई ?"

"इस वर्ष आय बहुत कम रही है। साकेत से कर नही आया। विदर्भ ने भी कर देने से इन्कार कर दिया है। लक्ष्मणपुर के आयुक्तक ने लिखा है कि बिना सैनिकों की सहायता के कर प्राप्त नही हो सकता। सेना है नही। स्थानेश्वर, इन्द्रप्रस्थ और कौशाम्बी से भी कर नही आ रहा।"

इस पर महाराज ने कह दिया, "कर बढा दिए जायँ।"

राजपुरोहित का कहना था, "राज्य व्यय कम कर दिया जाय।"

"इसके लिए स्थान नही। सबसे अधिक व्यय विहारों मे होता है। यदि उसमें कमी की गई तो भिक्षु लोग भूखे मरने लगेगे।"

"हमारे पास कितनी सेना है ?"

"इस समय बीस सहस्र है। परन्तु वेतन मिले कई-कई मास हो चुके है।" सेनापति विद्रुम ने कह दिया।

इस पर महामात्य ने कहा, "कर-वृद्धि की आज्ञा दे दी जाय और जितना अधिक धन प्राप्त हो, सेनावृद्धि मे व्यय किया जाय।"

इस पर महाप्रभु बादरायण कहने लगे, "प्रायः सेट्ठी लोग उपासक है और वे अपने कर का प्रयोग सेना के विस्तार पर पसन्द नही करेगे।"

"यह आप कैसे कहते है ?" महामात्य का प्रश्न था।

"युद्ध उनके धर्म के विपरीत है।"

"तो क्या अपना धन-जन अरक्षित रखना उनके धर्म के अनुसार है ?"

"यह बात नही महामात्य ! यदि जनता नवीन राज्य के अधीन रहना स्वीकार कर ले तो फिर कौन राजा होगा, जो अपनी प्रजा को व्यर्थ में तग करेगा। जहाँ-जहाँ पर भी अत्याचार हुए है, वहाँ प्रजा के विद्रोह करने पर ही हुए है। इन्द्रप्रस्थ के नागरिको ने यवन-राज्य स्वीकार कर लिया था। इस कारण वहाँ किसी प्रकार का अत्याचार नही हुआ। अब कौशाम्बी के सोमप्रभ ने डेमिट्रियस से झगडा किया तो वहाँ हत्याकाण्ड मच गया है।"

अब सेनापति ने कहा, "हत्याएँ हुई है अथवा नही हुई हैं, धन लूटा गया है अथवा नही, विवादास्पद बात नहीं। विवाद की बात तो यह है कि महाराज के राज्य का एक भाग डेमिट्रियस ने अधिकार में कर लिया है। यह उसका अधिकार नहीं। हमको अपने राज्य का वह भाग वापिस लेना चाहिये।"

"हमारा और पराया तो मूर्खो की बात है। कोई राज्य का अंश हमारा

कैसे हो गया ? प्रजा वहाँ रहती ही है । हम वहाँ प्रबन्धक के रूप में रहे, चाहे डेमिट्रियस रहे, इसमे क्या अन्तर है ?"

"तब तो ठीक है," न्यायाधीश का कहना था, "हमारा विचार है कि यदि महाप्रभु का कथन मान लिया जाय तो महाराज एक पत्र डेमिट्रियस को लिख दे, जिसमे उसका धन्यवाद करें कि उसने महाराज के स्थान पर प्रबन्ध-कार्य करना आरम्भ कर दिया है और इससे महाराज के कन्धों पर बोझा हलका हो गया है ।"

"मै समझता हूँ कि," महाप्रभु का कहना था, "मेरे कथन का मिथ्या अर्थ लगाया जा रहा है। मै राज्य छोडने के लिए नही कहता । मै तो यह कह रहा था कि जहाँ तक प्रजा का सम्बन्ध है, उसने तो किसी-न-किसी के अधीन रहना ही है । उसको विद्रोह करने मे कोई कारण नही है। रहा हमारा अर्थात् महाराज का आक्रमणकारी के साथ सम्बन्ध, वह परस्पर समझौते से निश्चित होना चाहिए ।"

"समझौता कैसे किया जाय और फिर यदि दूसरा समझौता तोड़ दे तो उसका पालन कैसे कराया जाय ?"

"मै चाहता हूं कि हमारे राज्य का कोई अधिकारी डेमिट्रियस से स्वय जाकर मिले और उससे मिलकर उसकी इच्छा जाने । पश्चात् हम समझ सकते है कि युद्ध के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय है अथवा नही ।"

"तो ठीक है," महाराज का कहना था, "हम समझते है कि महामात्य दूत बन कर जायें और डेमिट्रियस से मिलकर उसकी इच्छा जानने का यत्न करे ।"

"मै समझता हूँ," राजपुरोहित का कहना था, "राज्य को सबल बनाने का कार्य आरम्भ कर दिया जाये । शत्रु मानेगा नही । अन्त मे उससे युद्ध करना ही पड़ेगा । अतः सेना के विस्तार और सुदृढ़ करने का कार्य अभी से आरम्भ कर दिया जाय ।"

"ऐसा करने से तो," महाप्रभु का कहना था, "शत्रु भड़क उठेगा । हमारी ओर से युद्ध की तैयारी देखकर तो समझौते की सम्भावना क्षीण हो जायगी।"

"जब वह स्वयं एक बलशाली सेना रखता है, तो हमको सेना बढाते देख उसको रोष क्यो होगा ?"

"हम तो शान्ति से वार्त्तालाप कर सन्धि करना चाहते है न ? इस कारण हमको अपना व्यवहार भी ऐसा बनाना चाहिये, जिससे हम मन, वचन और कर्म से एकरस प्रतीत हों।"

अब सेनापति ने पूछ लिया, "मान लीजिये कि डेमिट्रियस कोई ऐसी बात नही मानता, जो हमारे हित मे हो, तब हम क्या करेगे ?"

"मुझको मनुष्य-प्रकृति पर विश्वास है। इसके सद्गुणो पर भरोसा कर ही तो भगवान् तथागत ने अपनी अहिसा की मीमासा निकाली थी।"

अब महाराज ने अपना निर्णय दे दिया, "हम समझते है कि आज का विचार समाप्त हुआ। जो कुछ हमने निश्चय किया है, उसको कार्यान्वित किया जाय। अभी महामात्य को जाने की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिये और वहाँ जाकर शत्रु की इच्छाओ की जानकारी हमे देनी चाहिये।"

महाप्रभु ने कहा, "हमारा राजदूत पूर्ण रूप से शान्ति का दूत बनकर जाना चाहिये। अस्तु वे अपने साथ पचास श्रावक ले जाये तो बहुत अच्छा रहेगा। साथ ही यदि भगवान् तथागत के किसी प्रवचन की व्याख्या की आवश्यकता पड़ी तो हो सकेगी।"

राजपुरोहित का कहना था, "इसमे क्या आपत्ति हो सकती है ? परन्तु मुझको विश्वास है कि महामात्य अपने कार्य मे सफल नही होगे। अतएव मै तो यह चाहता हूँ कि युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी जाय, अन्यथा आग लगने पर कुआँ खोदने से आग बुझ नहीं सकेगी।"

इस पर महाराज उठ खड़े हुए और राज्य-परिषद् की बैठक समाप्त हुई।

: ६ :

राज्य-परिषद् के सब सदस्यों मे से सबसे अधिक निराशा राजपुरोहित पं० अरुणदत्त को हुई थी। सेनापति के मुख पर पूर्ण कार्रवाई पर सन्तोष विराजमान था। महामात्य चिन्ता अनुभव कर रहा था। वह नही जानता था कि बिना राज्य मे शक्ति रखे कैसे शत्रु से बात कर सकेगा ?

कोषाध्यक्ष युद्ध का निर्णय न हो सकने से प्रसन्न था। वह जानता था कि युद्ध का व्यय राज्य सहन नही कर सकता।

जब महाराज चले गये तो सेनापति ने राजपुरोहित से पूछा, "पण्डित जी ! कैसी रही आज की बैठक ?"

"मुझको तो कोई मार्ग सूझ नही रहा।"

"मेरे लिए मार्ग स्पष्ट होता जा रहा है।"

"किस प्रकार ?"

"देखिये पण्डितजी ! महामात्य सर्वथा अयोग्य व्यक्ति है। मैने उनसे कहा था कि हमको राज्य की बागडोर अपने अधिकार मे कर लेनी चाहिये। यदि महाराज युद्ध के लिए तैयार न हो सके तो महाराज को बन्दी बना लिया जाय और उनके नाम पर हम राज्य चलाये। सेना तैयार करे और कौशाम्बी पर आक्रमण कर दें।

"परन्तु महामात्य कहने लगे, 'यह तो राज्यद्रोह हो जायगा।' ऐसा वह नही कर सकता। इस पर मै हँस पडा और मैने कह दिया कि मै तो हँसी कर रहा था।"

"आपने ठीक किया है। ऐसी बात हमको मन में भी नही लानी चाहिए।"

न्यायाधीश चुपचाप इनकी बाते सुनता हुआ इनके साथ-साथ चल रहा था। राजपुरोहित की बात सुन उसने कह दिया, "पण्डित जी ! बृहद्रथ राज्य है क्या ?"

"वह राज्य का प्रतीक है।"

"किस वेद-शास्त्र में लिखा कि बृहद्रथ, जो महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य के परपौत्र का परपौत्र होगा, वही मगध राज्य का प्रतीक होगा।"

"तो राज्य का प्रतीक कौन हो सकता है।"

"राज्य-परिषद्।"

"राज्य-परिषद् तो इस विषय में एकमत नहीं है।"

"एकमत की जा सकती है।"

"कैसे ?"

'प्रजा-परिषद् की बैठक बुला कर ।"

"प्रजा-परिषद् में कौन-कौन बुलाया जायगा ?"

"प्रत्येक एक लक्ष जनता के पीछे एक व्यक्ति । पूर्ण राज्य, जो इस समय हमारे पास बचा है, उसके, इस अनुपात में प्रतिनिधि बुला लिये जाएँ ।"

"यह असम्भव है । यदि परिषद् बुला भी ली जाय तो उसका एक मत होना असम्भव है ।"

"तो फिर विप्लव हो जायगा, पण्डित जी ! प्रजा यवनों का विरोध चाहती है और हम अपनी अज्ञानता के कारण शान्ति-शान्ति का पाठ पढ़ाकर शत्रु की सहायता कर रहे है ।"

इस पर सेनापति ने कह दिया, "देखिये पुरोहित जी ! महामात्य के जाने के पश्चात् आप महामात्य नियुक्त होगे । अतः मैं चाहता हूँ कि मेरे अथवा सेना के विषय में जो भी सूचना आपको मिले, वह मुझसे पूछे बिना महाराज अथवा राज्य-परिषद् में उपस्थित न करें । मेरा इसी प्रकार का समझौता महामात्य चन्द्रभानुजी के साथ था और यही समझौता आपके साथ होना चाहिये । अन्यथा मैं सैनिको को कह कर एक दिन मे विप्लव उत्पन्न कर दूँगा । तब उसमे कौन बचेगा और कौन नही, कहा नही जा सकता ।"

इस चुनौती पर पण्डित अरुणदत्त विस्मय में मुख देखता रह गया ।

सेनापति अपने भवन में पहुँचा तो पुष्यमित्र उसकी प्रतीक्षा कर रहा था । पुष्यमित्र यह जानने के लिए आया था कि राज्य-परिषद् ने क्या निर्णय लिया है । सेनापति ने राज्य-परिषद् की कार्यवाही बताने के पश्चात् कहा, "जी तो चाहता है कि यहाँ पर सेना का राज्य स्थापित कर दूँ और महाप्रभु इत्यादि सबको मृत्यु के घाट उतार दूं ।"

इस पर पुष्यमित्र ने मुस्कराते हुए कहा, "ऐसा नही सेनापति ! मैं देश में विप्लव खड़ा करना नही चाहता । विप्लव से अव्यवस्था हो

जायगी और तब शत्रु को पाटलीपुत्र पर चढ आनेका अवसर मिल जायगा।

"अभी तो नवसेना निर्माण में द्रुत गति से कार्य करना चाहिए। धन की तो वर्षा होनी आरम्भ हो जायगी। पाटलीपुत्र के प्रायः सभी सेट्ठियों ने जी खोलकर धन देने का निर्णय ले लिया है।

"अब मै स्वयं भी गाँव-गाँव में भ्रमण कर युवकों को सेना में भरती होने की प्रेरणा देना चाहता हूँ। राज्य-परिषद् को तोडने का अवसर तब आयगा, जब नवीन सेना के निर्माण के पश्चात् भी महाराज युद्ध का विरोध करेंगे।"

: १० :

महामात्य और उनके साथ पचास बौद्ध-भिक्षु यवनाधिपति डेमिट्रियस से विचार-विमर्श करने के लिए पाटलीपुत्र से रवाना हो गए और उनके स्थान पंडित अरुणदत्त महामात्य नियुक्त हो गया। अरुणदत्त देख रहा था कि पुष्यमित्र प्रायः घर से अनुपस्थित रहने लगा है। कभ-कभी तो दस-दस बीस-बीस दिन तक उसके दर्शन नही होते थे। इसके साथ-साथ पुष्यमित्र को पूछने के लिए बहुत से लोग आने लग गये थे। इस सब हलचल से अरुणदत्त यह तो समझ रहा था कि पुष्यमित्र कुछ कर रहा है, परन्तु क्या कर रहा है और किस अर्थ कर रहा है, वह नही जानता था।

महामात्य को पाटलीपुत्र से गये कई मास व्यतीत हो चुके थे और उनका कोई समाचार नही आया था। महामात्य के परिवार के सदस्य समाचार न आने पर बहुत चिन्ता अनुभव करने लगे थे और उनकी पत्नी तो कई बार अरुणदत्त के भवन में आकर उसको आग्रह कर चुकी थी कि उनका पता किया जाय।

अरुणदत्त इसके लिए अपने को निस्सहाय पाता था। राज्य का कोई सूचना-विभाग नही था, गुप्तचर-विभाग भी छिन्न-भिन्न हो चुका था, जिन के द्वारा पाटलीपुत्र से सूचना प्राप्त की जा सकती। वह समझता था कि महामात्य चन्द्रभानु के कारण ही सारे प्रबन्ध में गड़बड़ हुई है; परन्तु अब तो वह स्वयं महामात्य के पद पर आसीन था। अतः उसने

निश्चय कर लिया कि वह कुछ गुप्तचर कौशाम्बी भेजकर सूचना मँगवाने का प्रयत्न करेगा।

इसी अर्थ उसने कोषाध्यक्ष सेठ नीलमणि को बुला भेजा। जब नीलमणि आया तो उसने पूछ लिया, "सेठ जी! कोष की क्या अवस्था है?"

नीलमणि ने स्थिति वर्णन कर दी। उसने कहा, "महाराज की आज्ञा आई है कि दस सहस्र स्वर्ण महारानी सौम्या को दे दिये जायँ। कोष में तो इतना धन भी नही है।"

"तो फिर क्या होगा?"

"मैने महाराज को पूर्ण स्थिति से अवगत कर दिया है। उनकी आज्ञा हुई है कि किसी सेट्ठी से ऋण ले लिया जाय और जब कोष मे धन आयेगा तो यह ऋण चुका दिया जायगा।"

"मै चाहता हूँ कि कुछ गुप्तचर नियुक्त कर उनको कौशाम्बी भेजा जाय, जिससे महामात्य चन्द्रभानु का समाचार मिल सके।"

"कितना धन इस कार्य के लिये चाहिये?"

"मै पाँच व्यक्ति भेजना चाहता हूँ। प्रत्येक गुप्तचर के साथ पाँच-पाँच अश्वारोही जाने चाहिएँ, जो वहाँ का समाचार यहाँ तक पहुंचा सके।

"इस प्रकार तीस व्यक्तियो का कम-से-कम दो-दो मास का व्यय मिलना चाहिये। यह लभभग तीन सहस्र स्वर्ण होगा।"

"यह तो बहुत अधिक हो जायगा।"

"जहाँ आप दस सहस्र महारानी जी के लिये प्रबन्ध कर रहे है, वहाँ इनका भी प्रबन्ध कर दीजिये।"

"महाराज की आज्ञा के बिना एक टका भी ऋण नहीं लिया जा सकता।"

महाराज बृहद्रथ के पास अनुमति के लिये अरुणदत्त ने सदेश भेजा तो उन्होने आज्ञा दे दी कि पन्द्रह सहस्र स्वर्ण का प्रबन्ध कर दिया जाय। सेठ नीलमणि ने धनसुखराज के पास ऋण के लिए सन्देश भेज दिया। धनसुखराज अपने पास से इतना धन दे तो सकता था, परन्तु वह जानता

था कि यह धन वापस मिलने की कोई आशा नही। इस कारण उसने यह प्रयत्न किया कि कई सेट्ठी मिलकर यह प्रबन्ध कर दें, जिससे प्रत्येक पर अधिक बोझा न पड़े। इससे बात फैल गई कि राजकोष रिक्त हो गया है।

महाराज के लिये ऋण का प्रबन्ध तो हो गया, परन्तु सब अनुभव करने लगे थे कि अब राज्य स्थिर नही रह सकता। राज्यकोष की इस स्थिति पर विचार करने के लिये एक सेट्ठियो की गोष्ठी बुला ली गई। गोष्ठी में सेठ लक्ष्मीपति ने अपने विचार रख दिये, "सौ, दो-दो सौ स्वर्ण एकत्रित कर यह धन हम राज्य को दे रहे है, परन्तु इतना निश्चित है कि यह ऋण तब तक वापस मिलने की आशा नही, जब तक पुष्यमित्र की योजना फलीभूत नही होती।

"प्रायः सारा धन या तो राज्य-परिवार की सुख-सुविधा पर व्यय हो जाता है या बौद्ध विहारो को दान मे दे दिया जाता है। अतः हमको चाहिये कि राज्य संरक्षण समिति को पर्याप्त धन देकर नवीन सेना के निर्माण का कार्य शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण कर दे, जिससे हमारे घरो मे रखा धन तथा राज्य को दिया गया ऋण सुरक्षित रह सके।"

परिणाम यह हुआ कि संरक्षण समिति का एक सदस्य, सेठ पूर्णचन्द्र पुष्यमित्र के साथ-साथ घूमने लगा और जहाँ-जहाँ, जितने धन की आवश्यकता पडती, खुले हाथ से देने लगा। इससे सेना-निर्माण का कार्य पूर्ण गति से चलने लगा। परन्तु इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि इसके समाचार महामात्य तक पहुँचने लगे।

एक दिन राजपुरोहित के एक सम्बन्धी, जो प्रतिष्ठानपुरी में रहते थे, पुरोहित जी से मिलने आये तो बधाई देने लगे। राजपुरोहित के पूछने पर उन्होंने बताया, "राज्य भर में यह विख्यात हो रहा है कि जब से आप महामात्य पद पर नियुक्त हुए हैं, तब से राज्य की सेना मे वृद्धि होनी आरम्भ हो गई है। सब बुद्धिमान व्यक्ति समझने लगे है कि राज्य ने उचित दिशा में करवट ली है।"

"सेना में वृद्धि ? कहाँ हो रही है ?"

"पूर्ण राज्य भर में। हमारे प्रतिष्ठानपुरी में ही इस समय तीस नये सैनिक शिविर लगने लगे है। प्रत्येक शिविर में साठ से अस्सी तक युवक सैनिक शिक्षा प्राप्त कर रहे है और सुना है कि ऐसे शिविर गाँव-गाँव, नगर-नगर मे खुल रहे है।"

"उनको सैनिक शिक्षा कौन दे रहा है ?"

"महाराज के सेनानायक।"

अरुणदत्त इसको सेनापति का षड्यंत्र समझता था। सेनापति ने एक बार कहा था कि वह सेना की सहायता से विप्लव खडा कर देगा। तो कदाचित् वह ही इसकी तैयारी कर रहा हो।

अपने सम्बन्धी के सामने तो अरुणदत्त ने चुप रहना ही उचित समझा, परन्तु सेनापति को सचेत करने के लिए उसने सबसे पहले उसी से बात करनी चाही।

उसने सेनापति को बुला भेजा और उसके आने पर पूछा, "विद्रुम जी ! यह सेना का विस्तार कौन कर रहा है ?"

"कौन सी सेना का ?"

"महाराज की सेना का ?"

"तो महाराज कर रहे होंगे। मुझको इस बात का ज्ञान नही। मुझको तो यह बताया गया है कि महाराज ने पन्द्रह सहस्र स्वर्ण सेट्ठियों से ऋण लिया है। कदाचित् यह धन इसी उद्देश्य से लिया हो।"

"परन्तु मुझको तो सूचना मिली है कि सेनानायक इस विस्तार-कार्य मे लगे हुए है।"

"सेना को पिछले छः मास से वेतन नही मिला। इस कारण बहुत से सेनानायक छुट्टी लेकर अपने-अपने गाँव को चले गये है। वे सेनानायक तथा सैनिक क्या कर रहे है, मुझको पता नही।"

"सुना है धन भी खुले हाथों बाँटा जा रहा है।"

"मुझको तो अपना वेतन मिले एक वर्ष के लगभग हो चला है और मेरा अपना निर्वाह कठिनाई से हो रहा है। मैं सेना-निर्माण के लिए धन

कहाँ से दे सकता हूँ ?"

इन युक्तियों से अरुणदत्त को विश्वास हो गया कि सेनापति ऐसा कार्य नहीं कर सकता। कदाचित् यह महाराज का कार्य ही हो और बौद्धों से इस बात को छिपा कर रखने के लिये राज्यपरिषद् के किसी सदस्य को न बताया गया हो।

इस प्रकार अपने मन मे निर्णय कर उसने नवीन सेना-निर्माण के समाचारो पर से आँखे मूंद ली और कान बन्द कर लिये।

*

*

द्वितीय परिच्छेद

: १ :

भगवती की सखी जगदम्बा स्थानेश्वर के एक विद्वान् निखिलेश्वर की पत्नी थी। अरुन्धति उनकी एकमात्र सन्तान थी।

जगदम्बा और भगवती दोनो ने महर्षि पतंजलि के आश्रम मे शिक्षा प्राप्त की थी। शिक्षा समाप्त हुई तो एक का विवाह पाटलीपुत्र के राज-पुरोहित के पुत्र अरुणदत्त से हो गया और दूसरी का स्थानेश्वर के विद्वान् पडित निखिलेश्वर से।

पडित निखिलेश्वर की स्थानेश्वर मे भारी ख्याति थी। वे एक महा-विद्यालय के अधिष्ठाता थे, जिसमे वेद, शास्त्र तथा उपनिषदों की ही मुख्यत: शिक्षा दी जाती थी। नगर के प्राय. गण्यमान्य परिवारो के बालक तथा बालिकाएँ इनके विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त करते थे और इस प्रकार पडित निखिलेश्वर नगर के सब शिष्ट परिवारों से मान तथा प्रतिष्ठा पाते थे।

जब यवन-आक्रमण स्थानेश्वर पर हुआ तो वहाँ का आयुक्तक, जो बौद्ध उपासक था, अपने को असहाय समझ भाग खडा हुआ। नगर मे नाम-मात्र की सेना थी, जो यवन-आक्रमण को रोकने मे सर्वथा अशक्त थी।

इन सैनिकों ने नगर के प्राचीन द्वार पर खड़े होकर शत्रु की टिड्डी-दल सेना का विरोध किया और एक-एक कर सबने अपनी आहुति दे दी। पश्चात् यवनों का अधिकार स्थानेश्वर पर हो गया।

निखिलेश्वर को बौद्ध आयक्तक की भीरुता पर अत्यन्त क्रोध आया।

इससे वह देश की प्रवृत्ति को समझ गया। जब यवन-राज्य स्थानेश्वर पर भली-भाँति स्थापित हो गया तो उसने शिष्ट परिवारों मे घूम-घूम कर नगर को यवनों से मुक्त कराने की प्रेरणा देनी आरम्भ कर दी। समय पाकर उसका प्रयत्न सफल हुआ और कुछ युवकों को लेकर एक षड्यंत्र की रचना की गयी। भूल इस बात मे हुई कि इस षड्यत्र को संचालन करने वाली समिति में कुछ बौद्ध भिक्षु भी सम्मिलित कर लिये गए।

षड्यंत्र दूर-दूर तक फैल चुका था। स्थानेश्वर पर नियुक्त यवन-सेनापति की हत्या कर सेना को वहाँ से खदेड़ देने का कार्यक्रम बन चुका था। आस-पास के गाँवो में सैनिक तैयार कर एकत्रित कर लिए गए थे, जिन को आदेश था कि यवन सेनापति की हत्या होते ही नगर पर चारों ओर से आक्रमण कर दें। षड्यंत्र की कार्रवाई आरम्भ होने के एक दिन पूर्व बौद्ध-भिक्षु, जो षड्यत्र मे सम्मिलित थे, नर-रक्तपात से अथवा अपनी योजना के असफल हो जाने की आशका से भयभीत यवन-सेनापति के पास जाकर भेद खोल बैठे। इसका परिणाम यह हुआ कि षड्यंत्र के सभी नेता पकड कर सूली पर चढ़ा दिये गए और जहाँ कही भी सैनिक तैयारी के लक्षण दिखाई पड़े, वहाँ बृहत् हत्याकाड सम्पन्न कर दिया गया।

पंडित निखिलेश्वर पकडे जाने वालो मे सबसे पहला व्यक्ति था और इसकी हत्या के समाचार से नगर-भर में आतक छा गया।

निखिलेश्वर की पत्नी जगदम्बा अपनी लडकी अरुन्धति को लेकर घर से निकल कुछ दिन तक अपने एक निर्धन सम्बन्धी के घर मे छुपी रही और पश्चात् अवसर पा, पैदल ही नगर से बाहर निकल, पाटलीपुत्र की ओर चल पडी।

पाटलीपुत्र पहुँच जगदम्बा अपनी सखी भगवती के पति अरुणदत्त, जो इस समय तक राजपुरोहित बना दिया गया था, से सहायता पा मगध सम्राट् को अपने पति की हत्या का बदला लेने के लिए प्रेरणा देने का विचार रखती थी, परन्तु भगवती से बातचीत कर वह समझ गई थी कि मगध सम्राट् से किसी प्रकार की आशा रखनी व्यर्थ है। अतः वहाँ से

निराश हो, वह महर्षि पतंजलि के आश्रम मे अपनी लड़की की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करने चल पड़ी।

महर्षि पतजलि का आश्रम साकेत और लक्ष्मणपुर के मध्य एक साधारण सी वस्ती गोनर्द मे था। यह आश्रम गोमती नदी के तट पर एक अति रमणीक स्थान पर बना था। आश्रम के दो विभाग थे। एक बालिकाओं की शिक्षा के लिए और दूसरा बालकों के लिए। दोनो पृथक्-पृथक् थे। महिला विभाग का प्रबन्ध महर्षि की धर्मपत्नी कात्यायिनी की देख-रेख मे था। दोनो की शिक्षा भी पृथक्-पृथक् चलती थी। केवल उच्च शिक्षा बालक-बालिकाएँ एक साथ ग्रहण करती थी, इस पर भी निवास भिन्न-भिन्न था।

यद्यपि आश्रम सांसारिक भाग-दौड से दूर और उससे असम्बद्ध था, इस पर भी ससार मे होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव आश्रमवासियों पर पड़ता रहता था और जब से पण्डित निखिलेश्वर की पत्नी जगदम्बा और लडकी अरुन्धति वहाँ आई थी, यवन-आक्रमण चर्चा का मुख्य विषय रहता था।

इसके पश्चात् यवनों ने इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार किया और फिर हस्तिनापुर पर उनका राज्य स्थापित हो गया। इससे तो पश्चिम की दिशा से आ रही इन काली घटाओ पर चर्चा और भी अधिक तीव्र होनी आरभ हो गई थी। जब-जब भी अरुन्धति इन चर्चाओं मे उपस्थित होती थी, वह चर्चा के पश्चात् एक ही प्रश्न किया करती थी कि इस भय के निवारण का कोई उपाय है क्या ?

ज्यो-ज्यों समय व्यतीत होता गया और यवन-सेना समीप और समीप आती गई, अरुन्धति का प्रश्न एक महान् अर्थ रखने वाला होता गया।

अन्त में कौशाम्बी पर यवनों के अधिकार का समाचार पहुँचा। वहाँ के अत्याचार को सुन तो पूर्ण आश्रमवासियों के रोंगटे खड़े हो गए। जब-जब भी वहाँ पर कोई रोमांचकारी समाचार आता, आश्रमवासी परस्पर विचार-विमर्श करते और महर्षि की सेवा में उपस्थित हो, अपने संशयों के निवारण का प्रयत्न करते।

कौशाम्बी मे यवनो द्वारा हत्याकाड का समाचार, जिस दिन मिला, उसी सायकाल पूजा-हवन के उपरान्त पूर्ण आश्रमवासी महर्षि के चारो ओर एकत्रित हो गये और समाचारों के विषय मे चर्चा चल पडी।

महर्षि के ग्यारह-बारह सौ शिष्यो मे कौशाम्बी के विद्यार्थी भी पर्याप्त सख्या मे थे। अतः उनकी इन समाचारो मे विशेष रुचि थी। महर्षिजी के समाचार जानने के अनेक साधन थे। वर्ष भर देश-भर के भिन्न-भिन्न स्थानो से दर्शक तथा पुराने शिष्य आते रहते थे और वे स्थान-स्थान के समाचार दे जाया करते थे।

आज कौशाम्बी से कुछ लोग आकर वहाँ के समाचार बता गये थे। ये समाचार आश्रमवासियो मे जगल की अग्नि के समान फैल गये और वे महर्षिजी से इस विषय मे अन्य जानकारी प्राप्त करने के लिए आ पहुँचे।

सन्ध्योपासना के उपरान्त महर्षि ने आश्रमवासियो की इच्छा जानकर कौशाम्बी के समाचार बताते हुए कहा, "यवन समस्या अब देश मे एक विकट रूप धारण कर चुकी है। लगभग एक सहस्र कोस लम्बा-चौडा देश का भाग इन्होने अपने अधीन कर लिया है। देश की यह भूमि अत्यन्त उपजाऊ और धन-जन से सम्पन्न है। इन साधनो के रखते हुए यवनो को देश से निकालना सुगम नही।

"इस पर भी यह कार्य ऐसा है, जो किसी को करना ही है। सर्व प्रथम तो राज्य को इस कार्य को करने का प्रयत्न करना चाहिए। राज्य को ही अपनी शक्ति, धन और जन को संगठित करना चाहिए। परन्तु ऐसा हो नही रहा। इसमे मुख्य कारण जनता का प्रभाव राज्य पर कम हो जाना है और राज्य भी जनता के हित मे विचार करना छोड़ बैठा है।"

इस दिन एकत्रित हुओं मे महिला-आश्रम की छात्राएँ भी भारी संख्या मे उपस्थित थी। कौशाम्बी मे स्त्रियों के साथ अनाचार भारी परिमाण में हुआ था। इस कारण छात्राएँ क्रोध से उतावली हो रही थीं। इन सब में अरुन्धति सबसे आगे थी। जब महर्षि जी ने कहा कि राज्य अपना कार्य नहीं कर रहा, तो उसने खड़े होकर कहा, "वह तो हम आपसे कई-बार

सुन चुके है। यह हमने समझ लिया है कि राज्य मे लोक कल्याण की भावना नहीं रही। परन्तु सदा की भाँति इसके अतिरिक्त आपके पास क्या कोई सुझाव नही ?"

"देखो अरुन्धति ! अधीर होने से कुछ बनता नही। प्रत्येक कार्य के सफल होने मे वातावरण में परिपक्वता आनी चाहिए। यह परिपक्वता है जन विचार की। बौद्ध धर्म मे बहुत से अच्छे गुण थे, परन्तु उन गुणो की मिथ्या मीमासा जनता मे फैल गई और उसके दुष्परिणाम उत्पन्न होने मे समय लगा। पश्चात् उन दुष्परिणामों की अनुभूति मे समय लगना भी अनिवार्य था। इस अनुभूति मे और भी अधिक समय लग रहा है, जाति मे ब्राह्मणत्व के निस्तेज हो जाने से।

"पिछले पचास वर्ष मे मेरे सहस्रो शिष्य इस आश्रम से शिक्षा प्राप्त कर निकले है, परन्तु उनमे एक भी ऐसा तपस्वी और त्यागी शिष्य नहीं निकला, जो उच्चकोटि का विद्वान् होता और फिर अपनी पूर्ण विद्या तथा अनुभव को देश और समाज पर निछावर करने की क्षमता रखता।

"वास्तविक ब्राह्मण देश में एक भी होता तो देश में क्षत्रिय-वर्ग का निर्माण असम्भव नही था। क्षत्रिय-वर्ग उत्पन्न हो जाता तो विदेशीय आक्रमणो को निस्तेज करना कठिन नही था।"

"तो महर्षि जी का कहना है कि इस भारत भूमि मे ब्राह्मण और क्षत्रिय नि.शेष हो गये है ?"

"हाँ अरुन्धति ! मै अपने जीवन भर मे एक भी ऐसा ब्राह्मण बनाने मे सफल नही हो सका। इस पर भी मै साहस छोड़े बिना सतत इस प्रयत्न में संलग्न हूँ।"

"हम इसमे क्या करे ? हमारा मार्ग दर्शन महर्षि क्या करते है ?"

"मेरे आश्रमवासियों को सदैव तैयार रहना चाहिये, उस महापुरुष की सहायता करने के लिए। एक बात तो हम कर ही सकते हैं। वह है जनता में उचित दिशा में विचार करने का अभ्यास डालना। बौद्ध धर्म के पंचशील की मिथ्या मीमासा जनता के मन से निकाल दें। इस प्रकार जनता

मे नेता की सहायता के लिए भावना उत्पन्न होगी। दूसरे जब भी कोई नेता इस दिशा मे कार्य करने के लिए युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण हो, हमको उसके कार्य मे सहायक होना चाहिए।"

: २ :

महर्षि के इस कथन से सन्तोष किसी को भी नही हुआ। इस पर भी प्रत्येक आश्रमवासी यह समझने लगा था कि इस भीड़ के समय उसका भी कुछ कर्तव्य है। एक बात सब समझ गये थे कि जनता के विचारो मे परिवर्तन लाना प्रत्येक ब्राह्मण का कर्तव्य है।

आश्रम मे कुछ वृद्धजन भी रहते थे। उनका कार्य आश्रम में एक सहस्र से ऊपर छात्रो के भोजन-वस्त्रादि का प्रबन्ध करना था। वे तो तुरन्त ही आश्रम छोड़, जनता मे फैल जाना चाहते थे और जन साधारण में देश और समाज के प्रति कर्तव्य की भावना का प्रसार करना चाहते थे, परन्तु महर्षि उनको स्वीकृति नही देते थे।

इस पर अरुन्धति का प्रश्न था, "क्या महर्षि हम सब को खड्ग धारण कर अपने देश और समाज की रक्षा करने के लिए तैयार हो जाने को कहते है ?"

"हाँ, यह भी एक कार्य है, परन्तु इसके लिए नेतृत्व की आवश्यकता है। जन-विचारों को प्रेरणा देना उससे भी अधिक आवश्यक और प्रथम कार्य है।"

इसके पश्चात् विद्यार्थी गण जब-तब भी उनको अवसर मिलता, परस्पर विचार-विमर्श करते। प्रातः-सायं पठन-पाठन-काल से पूर्व तथा पश्चात् अध्यापकों तथा विद्यार्थियों मे कार्य की दिशा पर विचार होता रहता था।

जब-जब भी अरुन्धति ऐसी सभाओं में होती, वह उग्र विचारो की पोषक बनी रहती थी। वह कहती थी कि देश के स्वतन्त्र और निर्भय होने में दो बाधाएँ है। एक बौद्ध मिथ्या जीवन मीमांसा और दूसरा राज्य, जो अपना कर्तव्य पालन नही कर रहा। इन दोनों को देश से निर्मूल कर देना चाहिए।"

उसके कथन पर प्रश्न यही उठा करता था कि किस प्रकार उन्मूलन किया जा सकता है और फिर कौन करे ?

इसके लिए अवसर आया । एक दिन अरुन्धति अपनी कुटिया के बाहर पुष्प-वाटिका मे पौदो को जल से सीच रही थी । इस समय आश्रम के बाहर, कुछ अन्तर पर मैदान मे एक जन-समूह का घोर नाद सुनाई दिया ।

आश्रम की शान्ति मे यह एक विलक्षण विघ्न था । ऐसा पहले कभी सुनाई नही दिया था । अतएव यह सब सुनने वालो का ध्यान आकर्षित करने वाला सिद्ध हुआ । अरुन्धति भी जल-सिचन छोड, सीधी हो सुनने लगी कि यह कैसा शब्द है । जब यह नाद बार-बार आने लगा तो कलश, जिसमे जल भर कर वह सीच रही थी, एक ओर भूमि पर रख, एक उच्च स्थान पर खडी हो, आश्रम की प्राचीर के बाहर उस ओर देखने लगी, जिधर से यह नाद बार-बार उठता सुनाई पड़ रहा था ।

उसने देखा कि आश्रम की प्राचीर से कुछ अन्तर पर बहुत से युवक एकत्रित है और एक ऊँचे स्थान पर एक युवक खड़ा, दूसरों को कुछ बता रहा है । एकत्रित भीड़ बार-बार किसी की जय बोल रही है । अरुन्धति समझ नही सकी । उसके मन मे इसका अभिप्राय जानने की इच्छा प्रबल हुई । वह स्वय बाहर जाकर जानना चाहती थी कि यह क्या है, परन्तु महर्षि की स्वीकृति के बिना यह सभव नही था । अतएव वह महिला कक्ष मे से निकल महर्षि की कुटिया की ओर चल पडी । वहाँ पर पहिले ही कई विद्यार्थी महर्षि को घेरे हुए खड़े थे और सब आश्रम के बाहर उत्सुकता पूर्वक देख रहे थे । महर्षि ने अरुन्धति को उस ओर आते देख कह दिया, "लो, आश्रम की दुर्गा भवानी भी आ गयी है ।"

इस पर सब हँसने लगे ।

अरुन्धति जानती थी कि महर्षि उसको माँ-दुर्गा कह कर चिढाया करते हैं और आश्रमवासी महर्षि के इस सबोधन पर हसा करते है । वह इस प्रकार के सबोधन किए जाने पर लज्जा से लाल हो जाया करती थी । इस पर भी अपने मे गर्व अनुभव करती थी और विचार करती थी कि

अपनी शिक्षा से अवकाश पाकर वह महर्षि के इस सबोधन को सत्य सिद्ध करके दिखायगी।

जब वह महर्षि के पास पहुँची तो विद्यार्थी गण उसके लिए मार्ग छोड एक ओर हट गए। अरुन्धति महर्षि के सामने जा खडी हुई और कहने लगी, "भगवन ! इस अभूतपूर्व नाद का कारण जानने की आवश्यकता अनुभव कर आई हूँ।"

"वह हम भी अनुभव कर रहे है।"

"तो मै जाऊँ देखने के लिए ? आश्रम से पश्चिम की ओर भारी भीड एकत्रित है और एक युवक उनको कुछ सबोधन कर रहा है।"

"यह हमने भी देखा है; परन्तु अरुन्धति ! वह देखो, शखपाद वहाँ का समाचार ला रहा है।"

एक हृष्ट-पुष्ट युवक लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ आश्रम के बाहर से उस ओर आ रहा था। यह शखपाद था। महर्षि के सम्मुख आकर खडा हो, हाथ जोड उसने निवेदन किया, "भगवन् ! गांव के लगभग दो-सौ युवक वहाँ एकत्रित है और एक ब्राह्मण कुमार ऊँचे स्थान पर खड़ा हो उनको कह रहा है कि वे नव-सेना मे भरती हो जाएँ। उसका कहना है कि महाराज को एक बहुत बडी देश-भक्तो की सेना की आवश्यकता है। वे विदेशीय तथा विधर्मियो को, जो आक्रमण कर देश के बहुत बड़े भाग पर अधिकार जमा बैठे है, देश से बाहर कर देना चाहते है। अतएव यह प्रत्येक युवक का कर्त्तव्य है कि अपने आपको महाराज की सेना मे भरती होने के लिए उपस्थित करदे।

"भगवन् ! उस युवक ने यवनो के कौशाम्बी मे किए अत्याचारो का भीषण चित्रण किया, जिसको सुनकर युवकों की भृकुटि चढ़ गई और वे महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार कर उठे। अब सब युवक सेना मे भरती होने के लिए एक सेना-नायक को अपना-अपना नाम लिखा रहे हैं।"

महर्षि इस सूचना पर कुछ विचार करने लगे। इस समय शंखपाद ने पुनः कहना आरम्भ किया, "भगवन् ! उस युवक का यह भी कहना है

कि महाराज के पास नवीन सेना को वेतन में देने के लिए धन नही है। इस कारण इस नवीन सेना को कोई वेतन नही मिलेगा। जब तक वे शिक्षा प्राप्त करेंगे, अपना निजी जीविकोपार्जन का कार्य करते हुए करेंगे। जब वे युद्ध-शिविर मे जायेंगे, उनको गणवेश तथा भोजन मिलेगा। सब युवक इसको अपने देश तथा धर्म का कार्य समझ, इसमे अपना तन-मन लगा दे।"

अब महर्षि ने पूछ लिया, "कितने युवक भरती हुए है ?"

"भगवन् ! प्राय. सभी युवक इसमे सम्मिलित होना चाहते है।"

"वह ब्राह्मणकुमार राज्य में क्या पदवी रखता है ?"

"मैने पूछा था। यह कोई नही जानता।"

"शखपाद ! तुरन्त जाओ और उस ब्राह्मणकुमार को हमारा परिचय देकर हमारी ओर से निमन्त्रण दो। वह अवश्य कोई विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति है।"

: ३ :

गॉव के लोगों को एकत्रित किया था एक सेनानायक ने और उनको प्ररणा देने वाला था पुष्यमित्र। पुष्यमित्र गॉव-गॉव मे घूम-घूम कर नव-सेना मे भरती होने की प्रेरणा दे रहा था। इसी अर्थ वह गोनर्द में आया था।

गोनर्द के युवक सेना-नायक को अपना नाम आदि लिखा रहे थे कि शंखपाद पुनः उस समूह मे जा पहुँचा। इस समय तक एक सौ के लग-भग युवक नाम लिखा चुके थे। शेष कार्य पुष्यमित्र, सेना-नायक को सौप, वहाँ से विदा होने लगा तो शखपाद ने आगे बढकर अपना आशय वर्णन कर दिया। उसने कहा, "ब्राह्मण देवता ! मै महर्षि पतंजलि के आश्रम से महर्षि जी का सन्देश लेकर आया हूँ। महर्षि जी आपको आश्रम मे पधारने का निमन्त्रण दे रहे है।"

"महर्षि पतंजलि ? कहाँ है उनका आश्रम ?"

"वह है। आइए, मै मार्ग दर्शन कराता हूँ।"

पुष्यमित्र महर्षि जी के विषय में जानता था। उसकी माँ भगवती इसी

आश्रम मे शिक्षा पा चुकी थी। अतएव वह महर्षि जी के दर्शन करने के लिए शंखपाद के साथ चल पडा।

आश्रमवासी एक भारी सख्या मे महर्षि सहित पुष्यमित्र की प्रतीक्षा कर रहे थे। पुष्यमित्र पहुँचा तो महर्षि जी को देख, आगे बढ उनके चरण स्पर्श करने लगा। चरण स्पर्श कर वह हाथ जोड खडा हो गया।

महर्षि ने पुष्यमित्र को सिर से पाँव तक देखा और उसके ओजस्वी मुख को देखकर बहुत प्रभावित हुए। पश्चात् उन्होने पूछा, "वत्स ! तुम कौन हो ? मै अस्सी वर्ष की आयु का हो गया हूँ, परन्तु इस जीवन में ऐसा चमत्कार करने वाला मैने कोई व्यक्ति नही देखा, जो राज्य की सेना मे अवैतनिक सेनानी भरती करा सके।"

"भगवन् ! मै राजपुरोहित पंडित अरुणदत्त और आपकी शिष्या देवी भगवती का पुत्र पुष्यमित्र हूँ। यह कार्य मै स्वेच्छा से बिना किसी राजा अथवा राज्याधिकारी की आज्ञा के कर रहा हूँ।

"मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शीघ्र ही मगध राज्य को यवनो से भीषण युद्ध करना पडेगा। उस समय राज्य को एक सुदृढ सेना की आवश्यकता पडेगी। जैसे आग लगने पर कुआँ खोदना मूर्खता है, इसी प्रकार युद्ध आरम्भ होने पर सेना तैयार करना भारी मूर्खता होगी। अतएव मैं यह आयोजन सैनिकों तथा सेट्ठी-वर्ग के लोगो की सहायता से चला रहा हूँ।

"अभी तक हम एक लक्ष के लगभग सैनिक भरती कर चुके है। हमारी योजना दो लक्ष सैनिक तैयार करने की है। इनके लिए गणवेश तथा शस्त्रास्त्र बनवाए जा रहे है। इस सेना मे शिक्षा देने वाले सैनिक अवैतनिक कार्य कर रहे है और भरती हुए युवक बिना वेतन के अपनी सेवाएँ दे रहे है।

"जब यह सेना शिक्षित तथा शस्त्रादि से सुसज्जित हो जायगी, हम महाराज बृहद्रथ की सेवा मे अर्पण कर देंगे और उनसे निवेदन करेंगे कि वे देश का विदेशियों से उद्धार करें।"

"तो अभी तक इस सेना के निर्माण के लिए किसी प्रकार की राजाज्ञा नही है ?"

"नही भगवन् ! इसके प्राप्त होने की न तो आशा है और न आवश्यकता ।"

महर्षि पतजलि अवाक् पुष्यमित्र का मुख देखने लगे । पश्चात् कुछ विचार कर कहने लगे, "वत्स ! तुम हमारी शिष्या भगवती के सुपुत्र हो । हमारा स्नेह तुम पर उमड रहा है । इस कारण जो कुछ तुम कर रहे हो, उसकी अपने मन पर प्रतिक्रिया बता देना हम आवश्यक समझते है ।

"यह तुमको ज्ञात होना चाहिए कि किसी भी राज्य में राजाज्ञा के बिना सेना निर्माण करना राज्यद्रोह है ।"

"भगवन् ! राज्यद्रोह नही, राजद्रोह हो सकता है । साधारण रूप मे राजा राज्य का प्रतीक होता है, परन्तु कभी राजा स्वय राज्यद्रोही हो जाय तो राज्य का पक्ष, राजा का विरोध कर ही, लिया जा सकता है ?"

"परन्तु तुम्हारा कार्य राज्य के पक्ष में है, इसका प्रमाण देना होगा ?"

"एक प्रमाण तो यह है ही कि राज्य के एक लक्ष से ऊपर युवक सेना मे स्वेच्छा से भरती हो चुके है । राज्य का धनी वर्ग अभी तक दस लक्ष-स्वर्ण मुद्रा इस कार्य के लिए एकत्रित कर चुका है । अभी और एकत्रित हो रहा है । क्या यह एक स्पष्ट प्रमाण नही कि राज्य का पक्ष यही है जो मैं कर रहा हूँ ?"

महर्षि पुष्यमित्र की युक्ति से प्रभावित हुआ । इस पर भी उसने कहा, "तुम युक्ति तो तार्किकों की भाँति करते हो । तुम निर्भीकता मे ब्राह्मण हो । तुम शौर्यता में क्षत्रिय हो । तुम सगठन करने तथा परिश्रम करने मे वैश्य और शूद्र के समान हो । अतएव तुम पूर्ण समाज के प्रतीक हो । मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि तुम अपने में राजा बनने के पूर्ण लक्षण रखते हो । परन्तु राजनीति मे एक रहस्य है । वह है सेना और अवसर । देखो, तुमने राज्य का पक्ष लिया है और तुम्हारे कथनानुसार ही राजा राज्य का विरोधी है । इस कारण सेना को राज्य के निमित्त निर्माण

करो, राजा के नही ।

"यदि जैसा मुझको सूचित किया गया है, तुम महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार करवा रहे हो, तो विरोध के समय यह सेना राजा का पक्ष लेगी और तुम्हारा ही गला काट देगी । सेना को राजभक्त न बना कर राज्यभक्त बनाओ । तब उस विरोध के अवसर पर वह सेना तुमको राज्याधिकारी बना देगी ।"

पुष्यमित्र समस्या के इस नवीन पहलु को सुन गभीर हो गया । उस ने बहुत विचारोपरान्त कहा, "इस समय राजा को छोड़ा नही जा सकता। मै यत्न करूँगा कि परिस्थिति पर हमारा अधिकार बना रहे ।"

इस पर महर्षि ने पुष्यमित्र को अपनी कुटिया मे प्रवेश करने का निमंत्रण दिया और उसका फल-फूल से सत्कार किया ।

विदा लेते समय महर्षि ने उसको आशीर्वाद दिया, "तुम सम्राट के पूर्ण लक्षणो से युक्त हो । भगवान तुम्हारा पथ प्रदर्शन करे और तुमको सद्बुद्धि दे ।

पुष्यमित्र वहाँ से विदा हुआ तो आश्रमवासी इस आन्दोलन को समझने के लिए महर्षि से प्रश्न पूछने लगे । इनमे सबसे आगे अरुन्धति तथा उसकी माता जगदम्बा थी । जगदम्बा मन मे विचार करती थी कि क्या उसके साथ हुए अन्याय का प्रतिकार लेने के लिए यह युवक समर्थ है ?

आन्दोलन के विषय मे महर्षि ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा, "यह आन्दोलन सर्वथा उचित और प्रभावशाली होगा । परन्तु देश में इस आन्दोलन के विरोधी भी होंगे । उनको इसका ज्ञान हुए बिना नही रह सकता । जब तक तो यह आन्दोलन देहातो मे फैला हुआ है, इसका विरोध संभव नहीं । साथ ही देश-भर मे फैला हुआ यह आन्दोलन कुछ कार्य सम्पन्न नही कर सकता । क्योंकि यह आन्दोलन सेना का है और सेना जब तक एक स्थान पर एकत्रित न हो, वह कुछ भी प्रभाव उत्पन्न नही कर सकती ।

"सेना के एकत्रित होने पर भी सफलता इस बात पर निर्भर होगी

कि यह किसके आदेश पर कार्य करती है। यह भी सभव है कि एकत्रित सेना उद्देश्य के विरोधियो को ही अपना नेता मान बैठे और उद्देश्य की पूर्ति के स्थान उद्देश्य का विरोध करने वाली बन जाय।

"इस कारण मै समझता हूँ कि इस आन्दोलन को गलत व्यक्तियो के नेतृत्व मे न जाने देने का प्रयत्न अभी से होना चाहिए। इसके लिए मै अपनी एक योजना बनाना चाहता हूँ।

"मै इस आश्रम के युवको को कहूँगा कि वे भी सैनिको के रूप में इस नवीन सेना मे भरती हो जाएँ। सैनिक शिक्षा प्राप्त कर वे दो-दो चार-चार की सख्या मे प्रत्येक सैनिक-शिविर मे प्रवेश ले ले और उन शिविरो मे शिक्षा प्राप्त कर रहे सैनिको के विचारों को उचित दिशा दे।

"हमारे आश्रम के युवक पढे-लिखे विद्वान् है और वे अपनी योग्यता के कारण अवश्य इस सेना मे प्रतिष्ठित स्थान पा जावेगे और फिर इस आन्दोलन को उचित दिशा का ज्ञान करा सकेगे।"

: ४ :

पुष्यमित्र को कार्यारम्भ किए एक वर्ष से ऊपर हो चुका था। इस कार्य से पूर्ण राज्य-भर मे चहल-पहल उत्पन्न हो गई थी। इस पर भी इस चहल-पहल की स्पष्ट सूचना राज्य-परिषद् को नही थी। एक तो राज्य का गुप्तचर विभाग सर्वथा अयोग्य था। दूसरा राज्य का महामात्य अभी तक अरुणदत्त था और जब-जब भी सैनिक-शिविरो की सूचना आती, वह अपने वचन के अनुसार सूचना सेनापति को भेज देता और सेनापति इसको एक साधारण-सी बात कहकर, इसका उल्लेख राज्य-परिषद् मे करने से मना कर देता।

महामात्य चन्द्रभानु का अभी तक कोई समाचार कौशाम्बी से नही मिला था। गुप्तचर, जो उसका समाचार लेने कौशाम्बी गये थे, लौटे नहीं थे। जो अश्वारोही उनके साथ गये थे, मार्ग में सूचना की प्रतीक्षा करते-करते थक कर वापस चले आये थे।

चन्द्रभानु की अनुपस्थिति मे अरुणदत्त कोई झगड़े की बात करना

नहीं चाहता था और उसके लौट आने की किसी भी दिन आशा कर रहा था।

पुष्यमित्र घर से कई-कई दिन तक अनुपस्थित रहता था। प्रायः जब कभी वह आता तो सायंकाल आकर प्रातः सूर्य निकलने से पहले ही विदा हो जाता। कभी माँ पूछ लेती, "बेटा ! कहाँ रहते हो आजकल ?"

"माँ !" पुष्यमित्र का उत्तर होता, "धर्म की स्थापना के लिए यत्न कर रहा हूँ।"

"घूम-घूम कर धर्म की स्थापना कैसे करोगे ?"

"अन्न-अनाज तो देहातों मे उत्पन्न होता है। मै उन खेतो में बीज के साथ धर्म का बीज भी डाल रहा हूँ। समय पर फ़सल के साथ धर्म भी पर्याप्त मात्रा मे मिला हुआ होगा और जो कोई भी उस अन्न का भोग करेगा, वह धर्ममय होकर धर्म की स्थापना मे सहायक हो जावेगा।"

भगवती इस बुझारत का अर्थ समझने मे अशक्त थी। वह कहती, "माँ को पागल बना रहे हो बेटा ?"

"नही माँ ! भगवान् कृष्ण ने गीता मे कहा है, जैसा अन्न खाया जाता है वैसा ही मन बनता है और उसके अनुकूल मनुष्य के कर्म होते जाते है। इसीलिए देहातो के खेतों मे धर्म का बीज रोपने जाया करता हूँ।"

एक दिन वह बहुत रात्रि व्यतीत हुए आया। घर का द्वार बद था। उसने द्वार खटखटाया तो उसने देखा कि द्वार खोलने वाली एक युवती है। पुष्यमित्र उसे देख विस्मय मे उसका मुख देखता रह गया।

युवती द्वार खोल, एक ओर हटकर खड़ी हो गयी, जिससे पुष्यमित्र भीतर आ सके; परन्तु पुष्यमित्र एक अपरिचित युवती को वहाँ खड़े देख यह समझा कि अन्धेरे मे वह किसी अन्य के घर के बाहर आ खड़ा हुआ है। युवती हाथ में दीपक लिए मार्ग दिखा रही थी। पुष्यमित्र घर के बाहर हो पुनः ध्यान से देखना चाहता था कि वह अपने घर के बाह रही खड़ा है न।

इसी समय उसकी माँ द्वार पर आ गई। पुष्यमित्र ने माँ को देखा

तो समझ गया कि घर तो अपना है, परन्तु उस युवती के विषय में उसकी उत्सुकता बनी हुई थी। उसने पूछ लिया, "मा ! यह कौन है ?"

"तो बिना जाने भीतर नही आओगे ?"

यह युवती अरुन्धति थी और दो दिन से वह अपनी माँ की सखी भगवती के घर पर आकर ठहरी हुई थी। पुष्यमित्र को भीतर आने में संकोच करते देख, वह कहने लगी, "मौसी ! मैं अपने आगार में बैठी एक पुस्तक पढ रही थी कि द्वार खटखटाने का शब्द हुआ। मैं दीपक लेकर देखने चली आई कि कौन आया है तो द्वार खोलने पर इनको खड़े देखा। ये आपके सुपुत्र ही है न ?"

इस प्रश्न के साथ अरुन्धति ने पुष्यमित्र की ओर मुस्कराकर देखा। इससे पुष्यमित्र समझा कि वह उसको जानती है और केवल व्यग्य में यह कह रही है।

माँ ने पुष्यमित्र का परिचय कराने के स्थान अरुन्धति का परिचय उसको कराना उचित समझा। उसने कहा, "यह लड़की महर्षि पतंजलि के आश्रम से आई है ? कहती है कि महर्षिजी ने तुम्हारे लिए एक विशेष सन्देश भेजा है।"

"ओह ! परन्तु देवी !" पुष्यमित्र ने अरुन्धति के मुख पर देखते हुए पूछ लिया, "क्या महर्षिजी को कोई अन्य दूत नही मिला, जो एक सुकुमारी कन्या को इतनी लम्बी यात्रा पर भेज दिया है ?"

"इस प्रश्न का उत्तर तो महर्षिजी ही दे सकते है। मैं तो सन्देश देने आई हूँ और इस विषय मे ही कुछ कह सकती हूँ।"

"तो देवी बताएँ कि महर्षिजी की क्या आज्ञा है ?"

"इस समय ? यहाँ द्वार पर खड़े होकर ? आपने शिष्टाचार सीखा प्रतीत नही होता ?" अरुन्धति ने मुस्कराते हुए कहा।

माँ हँस पड़ी और हँसते हुए बोली, "बेटा ! भीतर चलो न। यह दो दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।"

पुष्यमित्र इस प्रकार डाँटे जाने से लज्जा अनुभव करने लगा और

सिर झुकाए हुए भीतर चला आया। चलते हुए अपनी सफाई देने के लिये उसने कहा, "मुझको प्रातःकाल ही यहाँ से चले जाना है।"

"वह आप नही जा सकेंगे।" अरुन्धति ने कह दिया।

"क्यों ?"

"महर्षिजी की आज्ञा है।"

"क्या उनकी आज्ञा माननी ही होगी ?"

"न मानने से भारी अनर्थ होने की सम्भावना है।"

पुष्यमित्र इस कथन को सुनकर गम्भीर विचार मे डूब गया। इस पर अरुन्धति ने पुष्यमित्र से विदा लेने के लिए नमस्कार करते हुए कहा, "अब प्रातःकाल अल्पाहार के समय आपके दर्शन होगे।"

पुष्यमित्र गम्भीर विचार में मग्न, आश्चर्यवत्, उसको देखतां रह गया। और वह अपने आगार मे चली गई। माँ पुष्यमित्र को अपने आगार मे ले गई। पिताजी वहाँ नही थे। पुष्यमित्र ने पूछ लिया, "पिताजी कहाँ है ?"

"आज राज्य-परिषद् की विशेष बैठक हो रही है। वे वहाँ गये हुए है। अभी तक बैठक समाप्त हुई प्रतीत नही होती।"

"अच्छा माँ ! मैं अब विश्राम करूँगा। भोजन मैने कर लिया है। इस समय तो बहुत ही थका हुआ अनुभव कर रहा हूँ। प्रातःकाल का चला हुआ बीस कोस की यात्रा करके आ रहा हूँ।"

"यह क्या हो रहा है बेटा ? तुमको घर पर आकर आराम करने का भी अवकाश नही मिलता ?"

"माँ ! बताया तो था कि राज्य के गाँवों मे धर्म का बीज बो रहा हूँ।"

"मुझे मत बनाओ बेटा ! इस लड़की ने मुझे कुछ और ही बताया है।"

"क्या बताया है ?"

"कहती थी कि इस राज्य में विप्लव होने वाला है और यह तुम्हारे करने से ही हो रहा है।"

"माँ ! ठीक ही कहा है उसने। मैने भी यही कहा है। राज्य मे अध-

र्माचरण व्याप्त हो रहा है। मैने धर्म के वृक्ष भारी संख्या मे लगा दिए है। उन वृक्षों के फल जब यहाँ आवेंगे तो अधर्म का लोप हो धर्म की स्थापना होगी। इसी को तो विप्लव कहते है।"

पुष्यमित्र अपने आगार मे जाने ही वाला था कि उसके पिता आ गए। पुष्यमित्र ने अपने पिता के चरणस्पर्श किए तो पिता ने उसको पुनः भीतर बुला लिया और कहा, "तुमने सुना है मित्र! कि महामात्य चन्द्रभानु की कौशाम्बी में हत्या कर दी गई है?"

"किसने की है?"

"महामात्य के साथ गये सब श्रावक सूली पर चढ़ा दिये गए है। गुप्तचर, जो उनका समाचार लेने भेजे गए थे, सब बंदी बना लिये गए थे। उनमे से एक भागने मे सफल हो गया था। वह यहाँ आया है और उसी ने यह वृत्तान्त बताया है।"

"अब क्या होगा पिता जी?"

"इसी बात पर विचार करने के लिए राज्य-परिषद् की बैठक बुलाई गई थी। सदैव की भाँति इसमे भी कुछ निश्चय नही हो सका। महाप्रभु और उनके साथी कहते है कि शान्तिमय ढंग से यवनों को समझाने का प्रयत्न करना चाहिए, जब कि सेनापति कहता था कि युद्ध की घोषणा कर दी जाय।"

"महाप्रभु कैसे समझावेगे?"

"उनका कहना है कि यदि यवन-सेना आक्रमण करे तो लाखो की संख्या मे लोग सेना के मार्ग पर लेट जावें और उनको आगे बढ़ने न दे। उनमें सोया हुआ मानव जाग उठेगा और वे आक्रमण करने से रुक जावेगे।"

"यह तब होगा, जब यवन सेना कौशाम्बी से आगे बढ़ेगी, परन्तु इस समय वे क्या करने को कहते हैं?"

"इस समय की नीति पर भी राज्य-परिषद् में एकमत नहीं है। मैंने यह सम्मति दी थी कि महाराज सेनापति को लिखित आज्ञा दे दें कि वह युद्ध कर यवनों को देश से बाहर कर दे। युद्ध का सारा प्रबन्ध सेनापति

को सौंप दे। उस समय के लिए धन, जन का प्रबन्ध सेनापति स्वयं कर लेगा। मुझको सेनापति ने कहा था कि मैं ऐसा प्रस्ताव राज्य-परिषद् में रख दूं।"

"बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सेनापति अपने ऊपर ले रहा है।"

"हाँ।" इस पर अरुणदत्त ने तनिक समीप हो धीरे से कहा, "मुझको विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि सेनापति अपनी सेना तैयार कर रहा है और कुछ सेट्ठी धन से इसमे उसकी सहायता कर रहे है।"

"सत्य ? पिता जी !"

"हाँ, परन्तु मै यह जानकारी राज्यपरिषद् मे उपस्थित नही कर रहा। मै मन से चाहता हूँ कि सेनापति विद्रोह कर दे।"

"तब तो यहाँ अराजकता उत्पन्न हो जावेगी।"

"वर्तमान राज्य से अराजकता अच्छी है।"

पुष्यमित्र ने इसका उत्तर नही दिया और चुप-चाप अपने आगार मे चला गया।

: ५ :

पुष्यमित्र आया था प्रातःकाल जाने के लिए, परन्तु महर्षिजी का सन्देश उसको प्रातः अल्पाहार के समय मिलने वाला था। इस कारण उसने जाना स्थगित कर दिया।

प्रातः वह उठा और स्नानादि से निवृत्त हो पूजा पर बैठ गया। पूजा के पश्चात् जब उसने आँखे खोली तो उसके सामने अरुन्धति बैठी हुई थी। पुष्यमित्र ने उसे देख कहा, "तो देवी महर्षि का संदेश देने के लिए बैठी है ?"

"हाँ आर्य ! संन्ध्योपासना के उपरान्त चित्त स्थिर तथा शान्त होता है। इस कारण इस गभीर और आवश्यक वार्त्तालाप के लिए यही समय ठीक समझ कर आयी हूँ।"

"वार्त्तालाप करना है अथवा महर्षिजी का संदेश देना है।"

"जैसी महर्षिजी की आज्ञा है, वैसा ही कर तथा कह रही हूँ। आपके

कार्य की प्रगति से महर्षि पूर्ण रूप से परिचित हैं। वे आपके कार्य को सफल बनाने के लिए चिन्तन करते रहते है। उनका विचार है कि जिस भाँति आप चल रहे है, सफलता अति सदिग्ध है। उन्होने अपने सदेह को और सदेह के कारणो को आप तक पहुँचाने के लिए मुझको भेजा है।"

"महर्षिजी को मेरे कार्य की सफलता मे सदेह हो रहा है ?"

"हाँ, यद्यपि वे उस कारण को, जिसके कारण यह सदेह और भी दृढ होता जाता है, दूर करने का यत्न कर रहे है; इस पर भी रोग का कारण तो आप में है। इस कारण रोग की चिकित्सा करने से पूर्व वे रोग के कारण को मिटा देना चाहते है।"

"क्या रोग है और क्या कारण है रोग का ?"

"रोग तो है महाराज बृहद्रथ। इस रोग को सेना मे महाराज के गुणानुवाद गा-गाकर आप पुष्ट कर रहे है। महर्षि चाहते है कि आज के पश्चात् आप अपने मुख से महाराज का नाम मत लें और यदि कहीं महाराज के प्रति विरोध प्रकट हो तो आप चुप रहे।"

"मै तो समझता हूँ कि महाराज का नाम लेने से मै तथा नवीन-सेना विद्रोह के लाछन से बची रहेगी, अन्यथा यह वृक्ष बड़ा होने से पूर्व ही नष्ट किया जा सकता है।"

"आपके कार्य के आरम्भ-काल मे भले ही इस बात की आवश्यकता रही हो, परन्तु अब न तो महाराज के नाम की आवश्यकता है और न ही उससे लाभ। विपरीत इसके महाराज बृहद्रथ आपके उद्देश्य के विरोधी है। वे सेना को आपके विरुद्ध भी आज्ञा दे सकते है। ऐसा सम्भव है कि जब सेना एकत्रित हो जावे तो महाराज की आज्ञा हो जाय कि आप राज्यद्रोही है और आपको बन्दी बना लिया जाए।

"इसके अतिरिक्त युद्ध बिना पूर्ण राज्य के सहयोग के नही चल सकता। कदाचित् यह एक लम्बा युद्ध होगा। केवल सेट्ठियों के धन से यह सफल नहीं होगा। इस अवस्था में बृहद्रथ के विरोध के कारण यवनों से युद्ध असफल होगा।"

"तो क्या किया जाय ?"

"महर्षि आपकी सेना मे एक ब्राह्मणकुमार की प्रतिष्ठा ऊँची कर रहे है। वे सैनिको के मन मे यह बात बैठा रहे है कि सेना यवनो से युद्ध करने के लिए तैयार की जा रही है। जो भी व्यक्ति इस युद्ध का विरोध करता है अथवा इसमे सहयोग नही देता, वह देशद्रोही है और सेना उसको शत्रु मानती है।

"महाराज बृहद्रथ भी सेना मे चर्चा का विषय बन रहा है। उसको मूर्ख और भीरु प्रकट किया जा रहा है।

"इस प्रकार महर्षि एक दिशा मे आपके कार्य को ले जाने के लिए यत्नशील है और वे चाहते है कि आपको उस दिशा का ज्ञान हो और आप इस दिशा को बदलने का यत्न न करे।"

"मेरी योजना यह नही, जिसका महर्षि अनुमान लगा रहे हैं। मै अपने लिए कुछ नही कर रहा। मै चाहता हूँ कि जब यह सेना तैयार हो, महाराज को भेट मे दे दी जाय और उनको युद्ध के लिए विवश कर दिया जाय।"

"परन्तु बृहद्रथ को कैसे विवश करेंगे ?"

"जब एक विशाल, शस्त्रास्त्र से सुसज्जित सेना को सामने खड़ी देखेंगे तो वे युद्ध के लिए विवश हो जावेंगे।"

"परन्तु आर्य ! यदि सेना के मन में महाराज के प्रति भक्ति बनी रही तो वह महाराज बृहद्रथ का कहा मानेगी। महाराज सेना को यह भी आज्ञा दे सकते है कि आपको बन्दी बना लिया जाय। अथवा वे सेना को विघटन की आज्ञा भी दे सकते हैं। आपको विदित होना चाहिए कि महाराज के ऊपर बौद्ध महाप्रभु का प्रभाव सर्वोपरि है। यह भी हो सकता है कि सेना के एकत्रित होने से पूर्व ही आप महाराज से अकेले मिलने जावे तो वे वही आपको अपने अंगरक्षकों द्वारा पकड़वाकर मृत्यु दण्ड दिलवा दें।"

इस सम्भावना को सुन पुष्यमित्र अरुन्धति का मुख देखता रह गया। इस पर अरुन्धति ने अपना कहना जारी रखा। उसने बताया, "महर्षिजी

के पास यह सूचना पहुँची है कि आप महाराज से मिलने पाटलीपुत्र आ रहे है। अतएव उन्होने तुरन्त मुझको एक वेगगामी अश्व देकर कहा कि मै यहाँ पहुँचूं और आपको ऐसी भूल करने से रोकूं।"

इस बात को सुनकर तो पुष्यमित्र और भी अधिक विस्मय मे अरुन्धति का मुख देखने लगा। उसका आज का कार्यक्रम ऐसा था कि सर्वप्रथम सेट्ठियो की एक सभा मे उपस्थित हो और,पश्चात् मध्यान्ह के समय महाराज से भेट करने की अनुमति ले। महर्षि पाटलीपुत्र से अढाई-सौ-कोस दूर बैठे हुए उसके विषय मे इतना कुछ जानते है, वह समझ नही सका, कैसे ?

कुछ विचार कर उसने कहा, "तो महर्षि जी नही चाहते कि मै महाराज से मिलूं ?"

"उनको विश्वास है कि वहाँ जाने पर आपके जीवन का भय है।"

"तो फिर क्या करू ?"

"जो कर रहे है, करते जाएँ। केवल महाराज के विषय मे न कुछ कहे और न कुछ सुने।"

पुष्यमित्र गभीर विचार मे बैठा रह गया। वह विचार कर रहा था कि वह किसी शक्ति द्वारा एक ऐसे पथ पर धकेला जा रहा है, जो उसका निर्वाचित किया हुआ नही है। उसे चुप देख अरुन्धति उठ खडी हुई और उसको नमस्कार कर आगार से बाहर जाने लगी। पश्चात् द्वार के पास पहुँच, एकाएक घूमकर खड़ी हो गई और कहने लगी, "आर्य ने मेरा धन्यवाद नही किया।"

पुष्यमित्र हस पड़ा और हँसकर कहने लगा, "तो क्या देवी ने मेरे लिए कुछ किया है ?"

"हाँ, यदि आर्य महर्षि का कहा मानेगे तो उनका संदेश यहाँ तक लाने में बहुत बड़ा कार्य किया है। कदाचित् आर्य को सूली पर चढ़ाये जाने से बचा लिया है।"

"तब तो मैं देवी का बहुत आभारी हूँ।"

"तो इस आभार का एक पुरस्कार चाहती हूँ।"

"क्या ?'

"मेरे दो धर्मभाई यहाँ आए हुए है। एक है शखपाद। उसको, जब वह चाहे, आप से मिलने की सुविधा हो। दूसरे का नाम है कान्तमणि। वह आर्य का अगरक्षक बनना चाहता है।"

पुष्यमित्र ने हँसते हुए कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि देवी और महर्षि-जी को मेरे जीवन का बहुत भय लग रहा है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मै श्रुति भगवती के अनुसार आत्मा को अमर मानता हूँ और मरने से नही डरता।"

"परन्तु आर्य !" अरुन्धति ने द्वार के अन्दर हो, पुष्यमित्र के समीप पुनः आकर कहा, "आपके मरने-जीने की महर्षि जी को इतनी चिन्ता नही। यह आज के वार्त्तालाप का विषय भी नही। वे तो आपकी योजना के विषय मे चिन्तित है। यह सत्य है कि न केवल हमको प्रत्युत इस राज्य की कोटि-कोटि जनता को आपकी योजना की चिन्ता है। इसी कारण आपके जीवन की चिन्ता करनी पड रही है। आर्य से निवेदन है कि शंखपाद तथा कान्तमणि को अपना कार्य करने से मना न करे और उनकी सेवा, जो महर्षि के आदेशानुसार होगी, स्वीकार करे।"

: ६ :

अरुन्धति तो पूजागृह से बाहर चली गई, परन्तु पुष्यमित्र इस सब वार्त्तालाप का अर्थ समझने के लिए वहाँ बैठा रहा। कितने ही काल तक वह विचार करता रहा और अपना मार्ग निश्चित करता रहा। उसका ध्यान तब भंग हुआ, जब माँ पूजा के आगार मे आकर खडी हुई और कहने लगी, "बेटा ! अल्पाहार के लिए तुम्हारे पिता जी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

पुष्यमित्र उठा और भोजन करने वाले आगार मे जा पहुँचा। वहाँ पंडित अरुणदत्त और अरुन्धति बैठे थे।

जब तीनों आहार लेने लगे तो पिता ने कहा, "पुष्यमित्र ! मै रात-भर

राज्य-परिषद् की बात पर विचार करता रहा हूँ। मुझको तो देश तथा जाति के लिए एक भयकर स्थिति उत्पन्न हो गई प्रतीत होती है। दोनों का विनाश अब समीप ही प्रतीत होता है।

"मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ। कदाचित् इसी कारण मेरे कथन का कुछ भी प्रभाव महाराज पर नही रहा। तुम युवा हो, विद्वान् हो। क्या तुम मिलकर महाराज को समझा नही सकते ?"

पुष्यमित्र को महर्षि पतजलि का कथन स्मरण हो आया। उसने एक बार अरुन्धति के मुख पर देखा। अरुन्धति उत्सुकता से उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी। पुष्यमित्र ने साहस पकड कर कहा, "पिता जी ! मैं महाराज से मिलने मे कोई लाभ नही समझता।"

"तो मै महामात्य के पद से त्याग-पत्र दे देता हूँ।"

"परन्तु एक महामात्य के मारे जाने की सूचना पर आप त्यागपत्र देगे तो यह समझा जायगा कि आप भयभीत हो गए है।"

"तो क्या किया जाय ? इस पद पर बने रहने का अब कुछ भी प्रयोजन नही रहा।"

"पिता जी ! मै समझता हूँ कि अभी त्यागपत्र देने का अवसर नही आया। आप सेनापति तथा कोषाध्यक्ष से इस विषय पर राय ले ले। वे भी कदाचित् त्यागपत्र देना चाहेगे। मै चाहता हूँ कि आप तीनो इकट्ठे ही त्यागपत्र दे।"

"मै चाहता हूँ कि तुम महाराज से मिल लो। कदाचित् मेरे स्थान पर तुमको महामात्य नियुक्त कर दिया जाय।"

"मै अभी नही मिल सकता। मै महर्षिजी के काम से बाहर जा रहा हूँ और नही जानता कि कब तक लौटूँगा।"

"तो क्या महर्षि जी का कार्य राज्यकार्य से भी अधिक आवश्यक है ?"

"वह भी देश का ही कार्य है पिताजी !" अरुन्धति ने पुष्यमित्र को उत्तर देने से बचाने के लिए कहा, "कौन अधिक आवश्यक है तथा कौन कम, यह हम नही जानते। मैं तो इतना जानती हूँ कि महर्षिजी के आदेश

की अवहेलना कल्याणकारी नहीं हो सकती।"

इस बात ने अरुणदत्त का मुख बन्द कर दिया। अल्पाहार समाप्त हुआ तो अरुणदत्त अपने आगार मे वस्त्र बदलने के लिए चला गया। उसे राज्यपरिषद् में जाना था।

पुष्यमित्र तथा अरुन्धति अभी उसी आगार मे बैठे थे कि भगवती वहाँ आ पहुँची और आहार लेने लगी। पुष्यमित्र ने अरुन्धति से पूछ लिया, "देवी आश्रम के लिए कब प्रस्थान करने वाली है ?"

"महर्षि का दूत तो लौट गया है। अब तो मौसी की एक सखी जगदम्बा की लडकी अरुन्धति, मौसी के पास रहने के लिए आई है। मौसी का आग्रह है कि कुछ दिन के लिए वह यहाँ रह जावे।"

"जगदम्बा ? कौन है वह, माँ ?" पुष्यमित्र ने माँ की ओर घूम कर पूछा।

"बेटा ! मेरी एक सहपाठिन थी। एक बार पहिले भी यहाँ आयी थी। तब तुम बहुत छोटे थे। यहाँ से वह महर्षिजी के आश्रम में चली गयी थी। पश्चात् उसका मुझे कोई समाचार नही मिला। उस समय अरुन्धति भी साथ थी। तब वह पाँच वर्ष की बालिका-मात्र थी। अब तो यह सज्ञान हो गयी है। यह अपनी माँ का एक पत्र साथ लाई थी और मैने इसे यहाँ कुछ दिन रहने के लिए तैयार कर लिया है।"

पुष्यमित्र विचार कर रहा था कि इस लड़की की नस-नस मे राजनीति धँसी हुई है। इसका प्रत्येक वाक्य तथा कार्य एक उद्देश्य विशेष का सूचक है। इस कारण, उसका अनुमान था कि वह माँ के पास रहने का भी कोई उद्देश्य रखती होगी। उस उद्देश्य को भली-भाँति समझ न सकने के कारण वह चुप था। उसको चुप देख माँ ने कह दिया, "अरुन्धति बहुत ही प्रिय लड़की है। इसके यहाँ रहने से मुझको सुख अनुभव होगा।"

माँ के अल्पाहार समाप्त करने पर तीनों भोजनागार से बाहर निकले। अरुन्धति पुष्यमित्र के पीछे-पीछे उसके आगार में पहुँच गयी और धीरे से कहने लगी, "मेरी बात को सत्य सिद्ध करने के लिए आपको तो यहाँ से

चले ही जाना चाहिए।"

"महर्षिजी के आश्रम को ?"

"नहीं, वहाँ जाने की आवश्यकता नही। वहाँ से तो समय-समय पर दूत आते रहेगे, जो आपको उनका सन्देश देते रहेगे तथा आपका पथ-प्रदर्शन करते रहेगे।"

"और वह तुम्हारा शखपाद कहाँ है ?"

"वह तथा कान्तमणि यथा समय और स्थान पर आपको मिल जायंगे। अपना नाम बताकर वे आपको अपना परिचय दे देगे।"

पुष्यमित्र पाटलीपुत्र से बाहर चला जाना चाहता था, परन्तु उसी समय सेनापति का प्रतिहार उसको बुलाने आ पहुँचा।

वह सेनापति के भवन को चल पड़ा। सेनापति उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब पुष्यमित्र वहाँ पहुँचा तो सेनापति उसको एक पृथक् आगार मे ले गया और कहने लगा, "देखो पुष्यमित्र ! अभी तक तो हमारी योजना ठीक चल रही है। इस समय तक लगभग दो लक्ष सैनिकों को शिक्षा दी जा चुकी है तथा खड्ग इत्यादि शस्त्रास्त्रों से युद्ध करने की विधि उनको बताई जा चुकी है। यह सब आयोजन इतनी चतुराई से चलाया गया है कि पूर्ण राज्य मे यही विख्यात है कि महाराज बृहद्रथ ही यह सेना निर्माण कर रहे है। परन्तु यह बात अब महाराज के कर्णगोचर एक अन्य ढंग से हुई है। आज परिषद् में इस विषय पर विचार-विनिमय होने जा रहा है। बताओ, मैं स्वीकार करूँ अथवा न ?"

पुष्यमित्र महर्षि पतंजलि के सँदेश का अर्थ यही समझा था कि सेना-निर्माण की सूचना सेना को पाटलीपुत्र मे एकत्रित करने के पश्चात् ही देनी चाहिए और सेना को एकत्रित करने में लगभग पन्द्रह दिन लग सकते है। इस कारण उसने कहा, "आपको अभी सेना-निर्माण से अनभिज्ञता प्रकट करनी चाहिए। यदि बहुत प्रमाण दिए जाएँ तो जाँच करने के लिए समय माँग लीजिएगा।"

"मानलो, इस सेना-निर्माण को राज्यद्रोह घोषित कर मुझे बंदी बना लिया गया और मुझे इसके लिए दड दे दिया गया तो ?"

"रात्रि व्यतीत होने से पूर्व ही आपको बदीगृह से बाहर निकाल लिया जायगा।"

"तो इस कार्य के लिए तैयार रहो। मुझको लक्षण कुछ ठीक प्रतीत नही हो रहे है।"

"मैं पाँच सौ सुभट आपको छुडाने के लिए तैयार रखूंगा।"

: ७ :

सेनापति जानता था कि प्राचीन सेना के सैनिक राजाज्ञा को पवित्र मान, उसका पालन करना पसन्द करेगे और नवीन सैनिक प्राचीन सैनिकों का विरोध नही कर सकेगे। इस कारण वह चिन्तित था। इस पर भी वह साहसी वीर था और इस कठिनाई का सामना करने के लिए मन को तैयार कर राज्य परिषद् मे गया।

उसको यह सूचना कि महाराज को एक नवीन सेना के निर्माण का ज्ञान है, अपने एक प्रतिहार से मिली थी। वह प्रतिहार उसकी ओर से राज्य प्रासाद का समाचार लाने के लिए नियुक्त किया गया था। इसका ज्ञान नही हो सका कि यह सूचना किस स्रोत से पहुँची है।

सेनापति जब राज्य परिषद् भवन मे पहुँचा तो महाराज के अतिरिक्त सब सदस्य उपस्थित थे। अरुणदत्त तो महामात्य चन्द्रभानु की अनुपस्थिति में महामात्य का पद ग्रहण किये हुए था। सेठ नीलमणि कोषाध्यक्ष, सेठ महाकान्त प्रमुख न्यायाधीश, महाप्रभु बादरायण, श्रावक सुनन्द भी वहाँ उपस्थित थे। सेनापति विद्रुम आया तो महाराज को सूचना भेज दी गई।

महाराज आये और सभा के सभी सदस्यों ने उठकर महाराज का स्वागत किया। पश्चात् जब सब बैठ गये तो महाराज ने रात वाली बात छोड़ एक नवीन चर्चा चला दी। उन्होंने कहा, "डेमिट्रियस का राजदूत उसका एक पत्र लेकर आया है। मैं चाहता हूँ कि महाप्रभु वह पत्र

इस परिषद् मे पढ़कर सुनाएँ।"

महाराज ने जब संकेत किया तो महाप्रभु ने अपने झोले में से पत्र निकाल कर पढ़ना आरम्भ कर दिया। पत्र में लिखा था, "हमको विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि मगध साम्राज्य भर में लाखों की सख्या में सैनिकों की भरती की जा रही है और महाराज का आशय इससे यवन साम्राज्य पर आक्रमण करने का है। इस कारण हम भारत निवासियों को और मगध सम्राट् को चेतावनी देते है कि तैयारी एक दम रोक दी जाय, अन्यथा उस नवीन सेना के तैयार होने से पूर्व ही, हम पाटलीपुत्र पर आक्रमण कर देना उचित समझेंगे। इससे जो भी प्रजा अथवा राज्य को हानि होगी, उसका उत्तरदायित्व हम पर नही होगा।

"हमे एक मास के भीतर इस बात का आश्वासन मिल जाना चाहिए कि सेना भग कर दी गयी है।"

इतना पढकर बादरायण ने पत्र बन्द कर पुनः अपने झोले मे रख लिया। इस पर पण्डित अरुणदत्त ने पूछा, "यह पत्र किसने और किसको लिखा है ?"

महाप्रभु चुप रहे। उत्तर महाराज ने दिया, "एक भिक्षु यह पत्र लाया है। यह भिक्षु उन भिक्षुओं मे से एक है, जो महामात्य चन्द्रभानु के साथ कौशाम्बी भेजे गए थे।"

"तो सब भिक्षु मार नही डाले गए ?"

"इससे तो यही सिद्ध होता है।"

"महाराज !" सेठ नीलमणि ने पूछ लिया, "इस पत्र को लिखने वाला कौन है ?"

"पत्र के नीचे डेमिट्रियस के हस्ताक्षर हैं।"

"ये हस्ताक्षर झूठे भी हो सकते है।"

इस पर न्यायाधीश ने कह दिया, "मैं यह पत्र स्वयं देखना चाहता हूँ।"

"यह पत्र मेरी निजी सम्पत्ति है। यह मुझको लिखा गया है।" महाप्रभु ने कह दिया।

"तनिक दिखाइये, हम देखना चाहते हैं।"

"मेरा महाराज से निवेदन है कि मुझको अपने निजी पत्र दिखाने के लिए विवश न किया जाए।"

इस पर महाकान्त ने महाराज को सम्बोधन कर पूछा, "महाराज ! डेमिट्रियस हमारा मित्र है अथवा शत्रु ?"

महाराज बृहद्रथ ने कुछ क्षण विचार कर कहा, "जहाँ तक राजनीति का सम्बन्ध है, वह शत्रु है। परन्तु महाप्रभु तो एक धर्म का प्रतिनिधित्व करते है। धर्म की दृष्टि मे कोई शत्रु नही होता।"

"ऐसी अवस्था मे", महाकान्त का कहना था, "महाप्रभु को इस राजनीतिक संस्था से पृथक् हो जाना चाहिए। यह सस्था डेमिट्रियस को तथा यवनो को भारत का शत्रु मानती है। महाप्रभु धर्मगुरु होने से ऐसा नही मान सकते। अतएव उनको राज्य परिषद् का त्याग कर देना चाहिए।"

अब सेनापति ने भी अपने विचार प्रकट कर दिए। उसने कहा, "राज्य परिषद् यह सहन नही कर सकती कि इसका एक सदस्य देश के शत्रु से निजी रूप मे पत्र व्यवहार करे।"

इस पर महाप्रभु ने अपनी स्थिति का वर्णन कर दिया। उसने कहा, "मैं इस परिषद् मे महाराज के निमंत्रण पर सदस्य बना हूँ। महाराज ने जब मुझको निमत्रण दिया था तो यह जानकर ही दिया था कि मै एक सार्वभौमिक धर्म का नेता हूँ। इस राज्य परिषद् मे सम्मिलित होने पर मैंने अपने धर्म को त्याग देने का वचन नही दिया था।

"एक बात मैं और निवेदन करना चाहता हूँ कि महाराज तथा महाराज के पूर्वजों ने बौद्ध धर्म के प्रतिनिधियों को राज्य परिषद् में लेने का निर्णय इस कारण किया था कि हम अपने पचशील से प्रजा मे शान्ति रखने का प्रयत्न करते रहते हैं। देश की कोटि-कोटि जनता हम में श्रद्धा रखती है। अतः महाराज को हमारी और हमारे पंथ के लोगों के सहयोग की आवश्यकता रहती है; अन्यथा महाराज की राज्य सत्ता स्थिर नही रह सकती।"

इस पर महाराज बृहद्रथ ने स्पष्ट कह दिया, "इस परिषद् में सब सदस्यों का पद एक समान है। इस कारण कोई भी सदस्य किसी की धर्मपरायणता पर टीका-टिप्पणी नही कर सकता।"

इस पर महाकान्त ने कहा, "महाराज ! इन श्रावकों को या तो परिषद् से निकाल दिया जाय अन्यथा राज्य को इनके आदेशानुसार चलाने के लिए हमको परिषद् से निकाल देना चाहिए।"

"हम समझते है कि आप दोनो विचार के लोग इसमे रहे और कोई सर्वसम्मति से योजना बनाकर देश के कल्याण का प्रयत्न करे।"

अब महाप्रभु ने कहा, "इस समय सबसे पहले इस नवीन सेना के विषय मे विचार करना चाहिए।"

सेनापति का कहना था, "यह असत्य है। कोई सेना हमारी जानकारी मे नही है।"

"तो डेमिट्रियस का यह आरोप मिथ्या है ?"

"हम यहाँ बैठे जिस बात को जान नही सके, यहाँ से चारसौ-कोस पर बैठा एक विदेशी राजा कैसे जान सकता है ? मेरा तो यह कहना है कि न तो कोई नवीन सेना यहाँ बन रही है, न ही यह सूचना डेमिट्रियस को मिली है। यह पत्र झूठमूठ में बनाकर महाराज को धमकाया जा रहा है।"

"यह असत्य है महाराज ! यह पत्र वास्तव मे यवनाधिपति का लिखा है और उसकी यह सूचना सत्य है कि यहाँ पर एक विशाल सेना का निर्माण हो रहा है।"

न्यायाधीश ने कहा, "ऐसी सेना की सूचना न तो महाराज को है और न ही महामात्य को। सेनापति स्वयं इससे अनभिज्ञता प्रकट कर रहे है। केवल महाप्रभु ही जानते है कि यहाँ एक सेना संगठित की जा रही है। महाप्रभु के अतिरिक्त यवनाधिपति जानते है। इससे यह सिद्ध होता है कि महाप्रभु स्वयं ही सेना तैयार कर रहे हैं और स्वयं ही इसकी सूचना उन्होंने अपने मित्र डेमिट्रियस को भेजी है। डेमिट्रियस ने भी धमकी अपने

मित्र को भेजी है, महाराज को नही। अतएव मेरी प्रार्थना है कि राज्य-परिषद् का एक सदस्य शत्रु से सम्पर्क रख रहा है और इस राज्य के रहस्य की बातें शत्रु को बता रहा है।

"ऐसी अवस्था में शत्रु को रहस्य की बातें बताने वाले को बन्दी बनाकर न्यायाधीश के अधीन कर दिया जाए, जिससे वह जाँच कर अपराधी को उचित दंड दे सके।"

बादरायण इस पर क्रोध से भडक उठा। उसने कहा, "दोषी सेनापति है। उनकी ही आज्ञा से, राज्य-परिषद् की स्वीकृति के बिना सेना निर्माण की जा रही है।"

"यह असत्य है।"

"मैं इसको सत्य सिद्ध कर सकता हूँ।"

"पहिले महाप्रभु अपने को निर्दोष सिद्ध करे। पीछे वे दूसरों पर आरोप उपस्थित कर सकते है।"

इस वाद-विवाद को बन्द कर महाराज ने आज्ञा दे दी। उन्होने कहा, "हम यह जानना चाहते है कि क्या यह सत्य है कि यहाँ कोई नवीन सेना सगठित की जा रही है? यदि ऐसा है तो कौन कर रहा है? इसके लिए धन कहाँ से आ रहा है?"

"महाराज स्वय जाँच करे तो पता चल जायगा।"

"हम आज्ञा देते है कि महामात्य और सेनापति पन्द्रह दिन के भीतर इस बात का पूर्ण वृत्तान्त उपस्थित करें और यदि कोई दोषी हो तो उसको पकडकर बन्दी बनाया जाए।"

इस पर अरुणदत्त ने कहा, "महाराज की आज्ञा का पालन किया जायगा; परन्तु इसके साथ ही इस विषय मे भी आज्ञा हो कि वह श्रावक, जो डेमिट्रियस का पत्र लेकर आया है, हमारे सामने उपस्थित किया जाय जिससे राज्य के महामात्य चन्द्रभानु के विषय मे जानकारी प्राप्त की जा सके।"

"हम आज्ञा देते हैं कि उस श्रावक को महामात्य अरुणदत्त के समक्ष

उपस्थित किया जाय, जिससे इस विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।"

: ८ :

जब महाराज परिषद् से उठकर चले गए तो महाप्रभु ने कह दिया, "जाँच मे मैं यह सिद्ध कर दूँगा कि नवीन सेना का निर्माण किया जा रहा है।"

"इस सेना को निर्माण करने वाला राज्यद्रोही है। उसको उचित दंड मिलेगा।" अरुणदत्त का कहना था।

"तो जाँच कब आरम्भ होगी ?"

"आज सायंकाल ही मेरे घर पर।"

"क्यों सेनापति ! ठीक है न ?"

"नहीं, महामात्य ! मै आज ही देहातों मे घूम-घूमकर इस विषय में स्वय जाँच करना चाहता हूँ।"

"परन्तु महाराज ने हम दोनों को जाँच करने के लिए कहा है।"

"तो पण्डित जी ! ऐसा करिए। मेरे लौटने तक जाँच स्थगित रखिए। तब तक आप उस श्रावक से महामात्य के विषय में पूछ-ताछ कर लें।"

सेनापति की बात को स्वीकार करते हुए अरुणदत्त ने महाप्रभु से पूछा, "भगवन् ! कब तक उस श्रावक को उपस्थित कर सकेंगे ?"

"आज सायकाल ही वह आपकी सेवा मे उपस्थित हो जायगा।"

सेनापति विद्रुम अपने भवन में पहुँचा तो पुष्यमित्र उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब सेनापति ने राज्य-परिषद् की कार्रवाई सुनाई तो पुष्यमित्र ने हँसते हुए कहा, "मैं जो कुछ इससे समझा हूँ, वह यह है कि महाराज वृहद्रथ किसी भी विषय मे निर्णय लेने के अयोग्य है। जो कुछ भी निर्णय वह लेता है, वह बाहरी शक्तियों के दबाव के कारण है। महाराज के निर्णयों मे बौद्ध महाप्रभु तथा बौद्ध श्रावको के बल का ही भय मुख्य कारण होता है।

"इस निदान के पश्चात् मैं श्रावकों से भय का निवारण करने जा रहा हूँ। ज्यों ही श्रावकों से भय, महाराज के मन से उठा, वे देश के हित

मे कार्य करने पर विवश हो जायँगे।"

सेनापति ने कहा, "बौद्धो के बल के विषय मे भ्रम फैला हुआ है। वास्तव में यवनों को देश से निकालने के विषय मे प्राय. बौद्ध अन्य देश-वासियो का साथ देगे। उनको अपने भिक्षुओ की नीति पसन्द नहीं। यह तो भिक्षुओं ने एक आतक फैला रखा है कि बौद्ध जनता युद्ध का विरोध करेगी। ऐसा कुछ नही होगा, परन्तु यह भ्रम महाराज के मस्तिष्क से निकालने की बात है।"

"इसी के लिए मेरी योजना चल रही है। मै आज्ञा भेज रहा हूँ कि सब नवीन सैनिक पाटलीपुत्र मे एकत्रित हो जाएँ। उनकी धनुर्विद्या तथा खड्ग चलाने मे प्रतियोगिता होगी। उनको पुरस्कार मिलेगे तथा गण-वेश और शस्त्र वितरित किए जायँगे।

"आप आज्ञा दे दे कि पुराने सैनिको मे से मुख्य-मुख्य सैनिक यहाँ एकत्रित हो जायँ। हम नवीन तथा प्राचीन सेना मे सम्पर्क उत्पन्न करना चाहते है।"

"पुष्यमित्र ! मुझको एक बात का भय लग रहा है। जब सैनिक एकत्रित हो गए और उन्होने महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार बुला दी और महाराज ने तुम्हे अथवा मुझे बन्दी बनाने की आज्ञा दे दी तो सब सैनिक हमारे विरुद्ध हो जायँगे।"

"मैं इसका भी प्रबन्ध कर रहा हूँ। इस पर भी मै चाहता हूँ कि आप इस झमेले से बाहर रहने का यत्न करें। यह इसलिए कि यदि कही यह आयोजन असफल रहा तो आप न फँस जायँ। इस योजना का उत्तर-दायित्व मै अपने सिर पर ले लूंगा।"

इस प्रस्ताव पर सेनापति गंभीर हो गया। कुछ क्षण तक विचार कर उसने कहा, "मैं मरने से भयभीत नही हूँ। यदि हम अपने उद्देश्य मे सफल न हुए तो आगामी दस वर्ष में पूर्ण भारत देश पर यवनों का राज्य स्थापित हो जायगा। ये बौद्ध लोग, जो हिंसा करने से डरते है, स्वय हिंसा का शिकार हो जायँगे। इनके साथ दूसरे देशवासी भी पिस जावेगे।"

"तो हमको असफल नही होना। ऐसा ही यत्न किया जायगा।"

पुष्यमित्र के अपने साधन थे, जिनसे वह अपनी पूर्ण योजना के सूत्र अपने हाथ में रखे हुआ था। यह कार्य वह अर्थ समिति के द्वारा करता था। सेनापति के भवन से निकल वह सीधा सेट्ठी धनसुखराज के पास जा पहुँचा। वहाँ से उसने तीव्रगामी अश्वों पर देश के कोने-कोने में यह संदेश भिजवा दिया कि सब सैनिक आगामी पूर्णिमा के दिन पाटलीपुत्र में एकत्रित हो जावें। अर्थ समिति को उसने यह भी सूचित कर दिया कि उस दिन तक सभी सैनिकों के लिए गणवेश तथा शस्त्रादि एकत्रित हो जाने चाहिएँ।

धनसुखराज के द्वारा इसका प्रबन्ध कर वह अपने घर पर पहुँचा तो उसको पता चला कि महाप्रभु बादरायण उसके पिता से मिलने आए हुए है और दोनों में गुप्त वार्तालाप चल रहा है। महाप्रभु का रथ गृह के बाहर खडा था और कुछ श्रावक रथ के समीप खड़े थे।

पुष्यमित्र अपने आगार मे प्रवेश करने लगा तो एक हृष्ट-पुष्ट युवक उसके सामने आ, प्रणाम कर खड़ा हो गया। पुष्यमित्र उससे पूछने वाला था कि वह कौन है और किस प्रयोजन से आया है कि उसने स्वयं अपना परिचय दे दिया—"मेरा नाम शंखपाद है और आपकी सेवा के लिए उपस्थित हूँ।"

"ओह! तुम अरुन्धतिदेवी के भ्राता हो?"

"हाँ, आर्य!"

"क्या कार्य कर सकते हो?"

"अपने आगार मे चलिए। वहीं चल कर निवेदन करूँगा।"

पुष्यमित्र ऐसा अनुभव करने लगा था कि उसने आँधी उत्पन्न कर दी है, जो अब वेग से चलने लगी है और इस आँधी के बहाव में वह भी बहता चला जा रहा है।

वह उस दिन महाराज बृहद्रथ के सम्मुख उपस्थित हो, अपनी योजना रखना चाहता था। अरुन्धति ने उसको मना कर दिया था और वह अब अनुभव करता था कि महाराज से न मिलकर उसने ठीक ही किया है।

अब यह अरुन्धति का भाई आया है और कुछ और ही कहना चाहता है।

वह स्वयं आगार में गया तो शखपाद ने भी भीतर प्रवेश किया और आगार को भीतर से बंद कर कहने लगा, "मै महाप्रभु बादरायण के साथ रहने लगा हूँ। महर्षिजी की आज्ञा है कि मै इनके कार्यों की सूचना उनको भेजता रहूँ। आज महर्षिजी की आज्ञा मिली है कि मैं अपने समाचार अरुन्धति देवी अथवा आपको दिया करूँ।

"महाप्रभु तो मुझको अपने समीप रखना चाहते थे, परन्तु आपके पिताजी ने यह कह दिया कि वे उनसे पृथक् में बात करेगे और मैं बाहर खड़ा रहा।"

पुष्यमित्र महर्षि पतजलि को, अपनी योजना मे इतनी रुचि लेते देख, आश्चर्य करता था। इससे उसके उत्साह मे वृद्धि ही हुई थी। उसने शंखपाद से पूछा, "कुछ नवीन सूचना है ?"

"समाचार यह है कि महाप्रभु यवनाधिपति डेमिट्रियस से पत्र-व्यवहार कर रहे है। महाप्रभु यत्न कर रहे हैं कि डेमिट्रियस बौद्ध धर्म स्वीकार कर ले तो देश भर के बौद्ध उसके राज्य के समर्थक हो जावेगे। उनको कुछ ऐसा सदेह हो रहा है कि महाराज बृहद्रथ बौद्धो के विरोधी हो रहे है। जब से उनको यह सूचना मिली है कि महाराज के नाम पर एक नवीन सेना का निर्माण हो रहा है और महाराज इससे अनभिज्ञता प्रकट कर रहे है, वे महाराज की बातों पर विश्वास नही कर रहे।"

"तुम महाप्रभु की क्या सेवा कर रहे हो ?"

"मैं बौद्ध उपासक बना हुआ हूँ और उनको उनकी नीति मे परामर्श देता हूँ। आप मुझको उनका मत्री समझ सकते है।"

"अच्छी बात है।"

"एक व्यक्ति जिसका नाम सुमित्र है, आपके पास नित्य के समाचार लाया करेगा।"

"मैं यह जानना चाहता हूँ कि यहाँ की नवसेना का समाचार डेमिट्रियस को महाप्रभु ने दिया है अथवा वह अपने गुप्तचरों द्वारा जान गया है।"

"जहाँ तक मै समझा हूँ डेमिट्रियस को यहाँ की नवीन सेना का कोई समाचार नही है। वह पत्र, जो आज राज्य परिषद् मै उपस्थित किया गया था, झूठा है। वह महाराज को विवश कर उस सेना का विरोधी बनाने के लिए विहार मे लिखाया गया है।"

"यह बात हमारे कार्य मे बहुत सहायता देगी, यदि महाप्रभु के लिखे पत्र हमे मिल जाएँ।"

"महाप्रभु अपने हाथ से नही लिखते। वे विहार मे एक भिक्षु निर्मल से पत्र लिखवाते है।"

"इस पर भी यदि उनके पत्र हमारे पास आजाया करें तो हमे लाभ होगा। हम उन पत्रो की नकली प्रतिलिपि डेमिट्रियस के पास भेज दिया करेंगे।"

"मैं यत्न करूँगा।"

: ६ :

महाप्रभु विदा हुए तो उनके साथी श्रावक तथा शंखपाद भी उनके साथ चले गए। इस समय पुष्यमित्र को स्मरण हो आया कि अरुन्धति घर में दिखाई नही दे रही। अतः वह माँ के पास गया। उसका विचार था कि वहाँ मिल जायगी, परन्तु वह वहाँ पर भी नही थी। पुष्यमित्र ने माँ से पूछ लिया—

"माँ। अरुन्धति देवी कहाँ गयी है?"

"क्यों? क्या बात है?"

"उसका भाई शखपाद आज मुझे मिला था। उसके विषय में ही बात करनी थी।"

"आज मध्याह्नोत्तर नगर से दो सेट्ठी स्त्रियाँ आई थीं और वह उनके साथ गई है। सर्यास्त से पूर्व ही लौट आयगी।"

"ओह! तो उसके यहाँ अन्य लोग भी परिचित है?"

"बेटा! महर्षिजी का परिचय बहुत विस्तृत है। देश का कोई भी नगर ऐसा नही, जहाँ उनके एक-दो शिष्य न हों। अरुन्धति उनकी प्रिय

शिष्या है ।"

इस समय पुष्यमित्र का पिता वहाँ आ गया । वह कुछ चिन्तित प्रतीत होता था । उसने पुष्यमित्र को देखा तो पूछ लिया, "तुम महर्षि पतजलि से मिलने नही गए ?"

"मैं जा रहा था, परन्तु मार्ग मे महर्षिजी का एक सन्देश मिला कि मुझे उनके पास आने की आवश्यकता नही । उनका जो कार्य था, यही पूरा हो जायगा ।"

"महाप्रभु बादरायण मुझसे तुम्हारे विषय मे पूछ रहे थे । मैने तो यह कहा है कि तुम महर्षि पतजलि के आश्रम मे गये हो ।"

"तो उनसे कोई बहाना बनाना पड़ेगा ।"

"बेटा ! वह अत्यन्त ही चतुर है । उनसे बहाना चल नही सकेगा ।"

"उनकी चतुराई का रहस्य मुझको विदित है ।"

"क्या ?"

"यह मै दो-तीन दिन मे राज्य के महामात्य की सेना में उपस्थित करूँगा ।"

"क्या अभिप्राय है तुम्हारा ?"

"पिता जी ! महाप्रभु देश तथा समाज के साथ विश्वासघात कर रहा है । मैने इसके प्रमाण एकत्रित करने आरम्भ कर दिए है । मैं शीघ्र ही वे आपकी सेवा में उपस्थित करूँगा । परन्तु क्या आप बताएँगे कि महाप्रभु उस श्रावक को आपके पास लाये थे, जो डेमिट्रियस का पत्र लाया था ?"

अरुणदत्त इस सूचना को अपने पुत्र के मुख से सुन, विस्मय में उसको देखता रह गया । पश्चात् कुछ विचार कर पूछने लगा, "यह बात तुमको किसने बताई है ? राज्यपरिषद् की कोई भी बात कोई सदस्य बाहर नही बता सकता । इस अपराध का दण्ड प्राण-दण्ड है । यदि तुमने यह बात किसी अन्य को बताई, तो यही समझा जावेगा कि राज्यपरिषद् के रहस्य की बात मैने तुमको बताई है ।"

"पिताजी ! मैं यह जानता हूँ । प्रथम तो मैं किसी को यह बात

बताऊँगा ही नही । दूसरे मै उस व्यक्ति का नाम बता दूँगा, जिससे मुझको यह समाचार मिला है ।"

"तो सुनो ! महाप्रभु उस श्रावक को नही लाये । उनका कहना है के श्रावक कपिलवस्तु चला गया है । मैने तो उनसे निवेदन किया है कि उस श्रावक को तुरन्त बुला भेजे, जिससे महामात्य चन्द्रभानु के विषय मे जाँच हो सके । इस पर उन्होने कहा है कि वे उस श्रावक के पीछे एक अन्य श्रावक को भेज कर बुला देगे ।"

"मुझको यह पता चला है कि कोई पत्र डेमिट्रियस ने नही भेजा । जो पत्र महाप्रभु ने उपस्थित किया था, वह झूठा है और यह कहानी भी झूठी है कि डेमिट्रियस को पता है कि यहाँ कोई नवीन सेना निर्माण की जा रही है ।"

"इस पर भी यह बात तो वह सिद्ध कर गया है कि वास्तव में एक विशाल सेना का निर्माण हो रहा है और यह महाराज बृहद्रथ के नाम पर हो रही है ।"

"कैसे सिद्ध कर गया है ?"

"एक बात उसने यह बताई है कि लगभग एक सहस्र सेनानायक एक वर्ष से सेना-शिविर में से अनुपस्थित रहे है और वे गाँव-गाँव मे जाकर सैनिक-शिक्षा दे रहे है ।"

"परन्तु यह भी तो किसी को विवश करने के लिए एक महान् झूठ हो सकता है ?"

"इससे किसको विवश करने का विचार हो सकता है ?"

"महाराज को ।"

"परन्तु वह तो यह कहता है कि महाराज स्वयं इस सेना का निर्माण कर रहे है । इस-सेना-निर्माण के तुरन्त पश्चात् महाराज हम-सब को, जो उनकी त्रुटियों को जानते है, बदी बना कर सूली पर चढ़ा देगे और तदनन्तर निरकुश राज्य चलायेंगे ।"

"यह तो अति भयकर परिस्थिति है ।" पुष्यमित्र ने मुस्कराते हुए कहा ।

"तुम्हारा भी यही विचार है क्या कि महाराज इस सेना का निर्माण कर रहे है ?"

"नही पिता जी ! मुझको तो कुछ ऐसा समझ आ रहा है कि इस राज्य में महाराज बृहद्रथ तथा बौद्ध-श्रावकों और उपासको के अतिरिक्त भी कुछ लोग बसते है और वे महाराज तथा बौद्ध-श्रावको पर अपना विश्वास खो बैठे है । वे अपने जीवन को सुरक्षित करने के लिए इस सेना की योजना बना रहे है ।"

"क्या प्रमाण है इसका तुम्हारे पास ?"

"अनुमान प्रमाण है पिता जी ! महाराज बृहद्रथ के पास न तो धन है और न ही बुद्धि, जिससे वह नवीन सेना का निर्माण कर सके । बौद्ध-श्रावक तो सेनाओ मे विश्वास ही नही रखते । अतएव इन दोनो के अतिरिक्त जो राज्य में रहते हैं, वे ही हो सकते है, जिन्होंने सेना की आवश्यकता अनुभव की होगी ।"

"यह तो वे ठीक नही कर रहे ।"

"पिता जी ! उनमें से कोई यहाँ हो, तब ही तो इस कार्य के ठीक अथवा गलत होने पर विचार किया जा सकता है ।"

"तो क्या उनकी अनुपस्थिति मे उनके इस कुकर्म पर विचार नही किया जा सकता ?"

"यह न्याय के सिद्धान्तो के विपरीत है । जिस राज्य में अपराधी की अनुपस्थिति में उसके अपराध की विवेचना की जाती है, वह राज्य अन्या-याचरण का भागी होता है ।"

"और यदि वह अपराधी पकड़ा न जा सके तो ?"

"तो उस राज्य को अयोग्य मान हटा देना चाहिए ।"

पुत्र को इस प्रकार युक्ति करते देख अरुणदत्त विस्मय मे उसका मुख देखता रह गया । इससे पिता को सदेह होने लग गया कि इस नवीन सेना के निर्माण मे उसके पुत्र तथा महर्षि पतंजलि का हाथ अवश्य है । उसने चिन्तायुक्त भाव में पूछा, "बेटा मित्र ! इन अयोग्यों को हटाने का

अधिकार कौन रखता है ?"

"जो अयोग्य से अधिक बलशाली होगा।"

"तो तुम समझते हो कि मगध सम्राट् से अधिक बलशाली कोई यहाँ उत्पन्न हो गया है ?"

"अवश्य हो गया है, पिताजी ! एक को तो मै जानता हूँ। वह डेमिट्रियस है। डेमिट्रियस बृहद्रथ को राज्य-च्युत् करने का अधिकार रखता है और अपने ढग से कर भी रहा है।

"कठिनाई यह प्रतीत होती है कि डेमिट्रियस और बृहद्रथ के मध्य कोई अन्य आ उपस्थित हुआ है। वह कितना शक्तिशाली है, कहा नही जा सकता।"

"महाप्रभु बादरायण के कथन से तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह, महाराज बृहद्रथ को साथ लेकर भी, इस नवीन शक्ति के सम्मुख दुर्बल है। यही कारण है कि वह महाराज बृहद्रथ की डेमिट्रियस से सधि करा-कर, दोनो की शक्तियो को मिला देना चाहता है, जिससे वह शक्ति नष्ट की जा सके और पश्चात् डेमिट्रियस तथा बृहद्रथ परस्पर समझ ले।"

अरुणदत्त ने पुत्र के विचार जानने के लिये कह दिया—"योजना तो बहुत सुन्दर प्रतीत होती है।"

"हाँ, है तो सुन्दर, परन्तु नितान्त मूर्खतापूर्ण। प्रथम तो दोनो मे सधि असम्भव है। कारण यह कि बृहद्रथ की अपनी शक्ति शून्य के तुल्य है और कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति किसी निर्बल को अपने समान अधि-कार देने को तैयार नही होगा।" पुष्यमित्र ने गम्भीर हो कहा। उसने अपने कथन को और स्पष्ट करने के लिए कह दिया, "कही डेमिट्रियस बृहद्रथ के साथ मिलकर इस नवीन सेना को कुचलने के लिए तैयार हुआ भी, तो वह पीछे बृहद्रथ को राज्यच्युत् करने के विचार से होगा। वह बृहद्रथ जैसे अयोग्य, दुर्बल, भीरु और मूर्ख को अपने समान मान, सधि नही करेगा।"

"तो कदाचित् डेमिट्रियस उस नवीन शक्ति से सधि कर राज्य का

बँटवारा कर ले।"

"हो सकता है। परन्तु पिताजी! बिना उस व्यक्ति को सामने बुलाए, उसके मन की बात जाने बिना कैसे कोई कुछ कह सकता है?"

एकाएक अरुणदत्त के मन मे एक विचार आया। उसने कहा, "तो तुम समझते हो कि इस नवीन शक्ति से मिले बिना नीति निर्धारित नही की जा सकती?"

"किसकी नीति पिताजी?"

"मगध सम्राट् बृहद्रथ की।"

"उस नीतिहीन व्यक्ति की नीति कौन निर्धारित करेगा?"

"बेटा! इस समय इस राज्य का महामात्य मै हूं और यह मेरा कर्तव्य है कि मै राज्य की नीति निश्चित करूँ।"

"मगध राज्य की नीति और मगध सम्राट् की नीति एक ही है पिताजी! अथवा भिन्न भिन्न?"

"यह भी पूछने की बात है क्या?"

"हाँ पिता जी! आपकी सम्मति इस विषय मे कभी मानी नही गई। इस पर भी आप राज्य के महामात्य हैं। महाराज बृहद्रथ कभी भी राज्य-परिषद् के उस अग की बात नहीं मानते, जिसमे आप है, सेनापति हैं अथवा न्यायाधीश है। ऐसी अवस्था में, महाराज बृहद्रथ की नीति का निश्चय तो महाप्रभु कर रहे है। अब यह आपके विचार करने की बात है कि आप राज्य की नीति अपने हाथ मे लेंगे अथवा महाप्रभु के हाथ में देगे?"

पडित अरुणदत्त पुत्र की युक्ति सुन निरुत्तर होता जा रहा था। वह अनुभव कर रहा था कि जहाँ उसकी सुनी नही जाती, वहाँ व्यर्थ को महामात्य की पदवी को सुशोभित करने का अर्थ ही क्या है?

इस विषय मे एक बार वह न्यायाधीश से बात कर चुका था। उसने न्यायाधीश से पूछा था कि ऐसी अवस्था में, जब उनकी कोई बात सुनी ही नही जाती, उनका राज्य-परिषद् मे रहने से लाभ ही क्या है? इस

पर न्यायाधीश का कहना था कि जब तक देश मे कोई ऐसी शक्ति उत्पन्न नही हो जाती, जो इन शान्तिवादियो को परास्त कर सके, तब तक उनक मन्त्रिमण्डल मे रहना लाभदायक ही है। वे अशुद्ध नीति का कुछ तो विरोध करते ही रहते है।

न्यायाधीश के इस कथन को स्मरण कर अरुणदत यह विचार कर रहा था कि क्या अब कोई ऐसी शक्ति उत्पन्न हो गई है, जो इन शान्तिवादियो से अधिक प्रबल है।

: १० :

पुष्यमित्र दिन-भर की भागदौड के पश्चात् विश्राम कर रहा था कि किसी ने आगार के बाहर बहुत धीमा-सा खटका किया। उसने सतर्क हो पूछा, "कौन है ?"

उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी ने पुनः खटका किया है। वह अपनी शय्या से उठा और द्वार खोल, देखने लगा। बाहर और भीतर भी अधेरा था। उस अधेरे मे उसे एक साया-सा खडा दिखाई दिया। वह साया द्वार खुलते ही भीतर आने लगा। पुष्यमित्र ने उसको रोकने के स्थान भीतर आ जाने दिया और वह स्वय द्वार के समीप ही खड़ा रहा। वह साया आगार के बीच जाकर खडा हो गया। अब पुष्यमित्र ने पूछा "कौन हो तुम ?"

"श···श···।" उस साये ने चुप रहने का सकेत किया। इस पर पुष्यमित्र ने कहा, "ठहरो, दीपक जलाता हूँ।"

"नही।" यह अरुन्धति का स्वर था। "सुनिए, शीघ्र ही यहाँ से चले जाइये। राज्यप्रासाद के प्रतिहार तथा सुभट्ट राजाज्ञा लेकर आपको बंदी बनाने के लिए आ रहे है।"

"क्यो ?"

"इस बात को बताने का समय नही। मैं अभी यहाँ से जाना नहीं चाहती। इस कारण यह सब-कुछ चोरी-चोरी कर रही हूँ। आप यहा से गंगा पार कर विशालापुरी चले जाइयेगा। वहाँ निरंजन मिश्र के गृह

पर ठहर कर सदेश की प्रतीक्षा करियेगा।"

पुष्यमित्र कुछ क्षण तक विचार करता रहा। पश्चात् बिना कुछ कहे वस्त्र पहिनने लगा। कुछ ही क्षणो मे वह अपने आगार से निकल घर से बाहर चला गया।

अरुन्धति तो पुष्यमित्र से पहले ही उसके आगार से चली गई थी। वह अपने आगार मे पहुँच, भीतर से द्वार बन्द कर अपनी शय्या पर लेट गई। उसको लेटे अभी एक घडी व्यतीत नही हुई थी कि घर के बाहर बहुत हल्ला हुआ। अरुणदत्त तथा घर के अन्य प्राणी उठकर बाहर आ गये और राज्यप्रासाद के सुभट्टों को देख विस्मय करने लगे। सुभट्टो के नायक ने पडित अरुणदत्त को राजाज्ञा दिखाई। नियम से ऐसी आज्ञा पर महामात्य के हस्ताक्षर होने चाहिए थे, परन्तु इस विशेष परिस्थिति मे महाराज के हस्ताक्षर थे। अरुणदत्त ने महाराज के हस्ताक्षर पहिचाने तो नायक को कह दिया कि वह पुष्यमित्र को बन्दी बना सकता है।

नायक पाँच सुभट्टो के साथ पुष्यमित्र के आगार के बाहर जा खडा हुआ। उसने द्वार खटखटाने के लिए हाथ बढाया, परन्तु द्वार खुला देख वह विचार मे पड गया। इस समय सेवक एक दीपक ले आया और उसके प्रकाश मे उसने देखा कि आगार रिक्त पडा है।

इस पर नायक ने घर की तलाशी लेने की माँग की। अरुन्धति अपने आगार मे सो रही थी। घर के सब आगार देखे गये और अरुन्धति को जगा कर उसका आगार भी देखा गया।

जब घर-भर की तलाशी ले, नायक सुभट्टो के साथ निराश लौटने लगा तो अरुन्धति ने पूछ लिया, "भट्ट जी! किसको ढूंढ रहे है?"

"पडित पुष्यमित्र को।"

"ओह! तो आपने पहले क्यो नही बताया? वे तो सायकाल ही यहां से चले गये थे।"

नायक ने विस्मय में अरुन्धति का मुख देखा और उसको निर्भीकता से बाते करते देख चुपचाप चला गया।

उसके जाने के पश्चात् अरुणदत्त ने अरुन्धति से पूछा, "बेटी ! पुष्यमित्र कह कर नही गया ?"

"मुझको कह गये थे कि आपको सूचित कर दूँ। परन्तु आप सो रहे थे और मैने आपको जगाना उचित नही समझा।"

अरुणदत्त सायकाल पुष्यमित्र से हुई वार्त्तालाप से और अब अरुन्धति के कथन से पुष्यमित्र का इस नवीन सेना से सम्बन्ध समझने लगा था। इस कारण उसने अरुन्धति को अपनी बैठक मे बुलाकर बैठाया और पूछा, "देखो बेटी ! मै पुष्यमित्र का पिता हूँ और इस नाते यह जानने का अधिकार रखता हूँ कि यह क्या हो रहा है ?"

"पिताजी !" अरुन्धति ने उसकी आँखो मे देखते हुए कहा, "यह जो-कुछ हुआ है, वह तो राज्य के महामात्य अधिक जान सकते हैं और मैं समझती हूँ कि आपको सेनापति तथा न्यायाधीश को साथ लेकर राज्य-प्रासाद मे जाकर पता करना चाहिए कि यह क्या हुआ है ?

' मै तो केवल यह बता सकती हूँ कि इस समय राज्यप्रासाद में महाप्रभु बैठे है और पुष्यमित्र के बदी बन, वहाँ लाये जाने की प्रतीक्षा कर रहे है।"

"देखो अरुन्धति ! राज्यप्रासाद मे मै जाऊँगा ही, परन्तु मैं तुमसे जो पूछ रहा हूं, मुझको उसका उत्तर दो। मै अब पुष्यमित्र के विरुद्ध आरोपों का उत्तर देने जा रहा हूँ। इस कारण पूर्ण परिस्थिति से परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"पूछिये।"

"यह नव सेना-निर्माण में पुष्यमित्र का क्या संबन्ध है ?"

"जो निर्माता का निर्माण-कार्य से हो सकता है।"

अरुणदत्त इस बात की आशका तो कर रहा था, परन्तु जब अरुन्धति ने इतने स्पष्ट ढग से कहा तो वह अवाक् बैठा रह गया। इस पर अरुन्धति ने पुनः कहा, "पुत्र ने कार्य आरम्भ करने से पूर्व अपने पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था।"

"ठीक है, परन्तु उसने मुझे कभी भी तो यह नहीं बताया कि वह

क्या करने जा रहा है ?"

"क्या कभी पिता ने पुत्र से पूछा था कि उसने आशीर्वाद किस विषय में माँगा है ?"

"परन्तु तुम उसके विषय में इतना कुछ कैसे जानती हो ? तुम्हारा उससे क्या सम्बन्ध है ?"

"मुझको महर्षिजी ने आर्य पुष्यमित्र की संरक्षिका नियुक्त किया है। इस कार्य के निमित्त साधन भी दिये है।"

"तो अब उसकी रक्षा करो।"

"वही तो कर रही हूँ। उसी संरक्षा के अनुरूप आपसे निवेदन कर रही हूँ कि आप राज्यप्रासाद में जाकर महाराज तथा महाप्रभु से इस खोज का कारण पूछे। यदि वे आपसे अपने पुत्र को बंदी बनाने मे सहायता माँगे, तो सहायता देने से इन्कार न करे।"

"परन्तु मै तो जानता नही कि वह कहाँ है ?"

"इसके जानने की आवश्यकता भी नही। आपने तो केवल आश्वासन देना है कि उसके घर आते ही आप उसको लेकर महाराज की सेवा मे उपस्थित हो जायँगे।"

"परन्तु सेनापति तथा न्यायाधीश को साथ ले जाने की क्या आवश्यकता है ?"

"इसलिए कि वे भी राज्य-परिषद् के सदस्य है और यदि किसी प्रकार का निर्णय माँगा गया तो बहुमत आपके पक्ष में होगा।"

अरुणदत्त बहुमत के अपने पक्ष मे होने की बात सुन अरुन्धति का मुख विस्मय मे देखता रह गया। पश्चात् वह वस्त्र परिवर्तन कर, अपने रथ पर सवार हो, सेनापति तथा न्यायाधीश को साथ ले राज्यप्रासाद में जा पहुँचा। इन तीनों को वहाँ पहुँचकर, यह देख अति विस्मयहुआ कि पचास-साठ श्रावक राज्यप्रासाद के बाहर खडे है और महाप्रभु का रथ भी एक ओर खडा है।

इन्होने महाराज के पास अपने आने की सूचना भेजी तो महाराज ने

इनको भीतर बुला लिया। महाप्रभु बादरायण, श्रावक सुनन्द और सेट्ठी नीलमणि कोषाध्यक्ष महाराज के पास पहले से ही उपस्थित थे। सेनापति इत्यादि के पहुँचने पर बृहद्रथ ने पूछ लिया, "सेनापति ने इस समय यहाँ आने का कष्ट कैसे किया है ?"

"ऐसा प्रतीत होता है महाराज !" सेनापति ने कहा, "कि राज्यकार्य मे हमारी सेवाओं की आवश्यकता नही रही। अतएव हम अपने-अपने पद से त्याग पत्र देने आये हैं।"

महाराज ने पूछ लिया, "आज क्या विशेष बात हो गई है, जो त्याग-पत्र देने की स्थिति उत्पन्न हो गई है ?"

"महाराज ने महामात्य के पुत्र को बदी बनाने की आज्ञा भेजी है। ऐसी आज्ञाएँ राज्य-परिषद् मे विचार किये बिना नही दी जाती।"

"यह इस कारण कि महामात्य के सुपुत्र राज्यद्रोह कर रहे है।"

"कौन कहता है ?" न्यायाधीश का प्रश्न था।

"यह सूचना महाप्रभु लाए है।"

"सूचना और प्रमाणित दो भिन्न-भिन्न बातें नही है क्या ? महाराज ! महाप्रभु को इस सूचना के लिए धन्यवाद दिया जा सकता है, परन्तु यह सूचना कितनी सत्य है, इसका ज्ञान तो न्यायाधीश द्वारा जाँच के पश्चात् ही किया जा सकता है।

"महाराज के राज्य मे सूचना मिलते ही सत्य माने जाने लगी है। इस कारण अब राज्य मे न्यायाधीश तथा न्यायकर्ताओ की आवश्यकता नही रही प्रतीत होती।"

इस पर महाराज बृहद्रथ कहने लगे, "यह महाप्रभु का कहना है कि अपराधी को भाग जाने का अवसर नही देना चाहिये। इस कारण उसको तुरन्त बदी बनाना उचित माना गया था। न्याय-अन्याय का पीछे विचार कर लिया जायगा।"

"तो ठीक है महाराज ! एक सूचना मैं आपको देता हूँ। महाप्रभु यह समझते है कि नवसेना का निर्माण श्रीमान् स्वय कर रहे है और राज्य-

परिषद् से इसको गुप्त रखा जा रहा है। यह इस कारण कि महाराज हम सब को बंदी बनाकर सूली पर चढा देना चाहते है।

'महाराज ! मैं जानता हूँ कि यह सूचना न केवल असत्य है, प्रत्युत महाराज का विरोध करने के लिए घडी गई है। अतः महाराज का विरोध करने वाले को बदी बना लेना चाहिए, अन्यथा वह पाटलीपुत्र से भाग भी सकता है।"

"यह आपको किसने कहा है ?"

"महाप्रभु ने स्वय बताया है। उन्होने उस श्रावक को, जो डेमिट्रियस का पत्र लाया था, कही छिपा रखा है। इस प्रकार अपने अपराध को छिपाने के लिए अन्याय और अयुक्तिसगत व्यवहार अपना रहे है।"

इस पर सेनापति ने कहा, "महाराज ! यह बात स्पष्ट है कि महाप्रभु और डेमिट्रियस मे पत्र-व्यवहार चल रहा है। डेमिट्रियस ने मगध साम्राज्य पर आक्रमण कर, इसके एक भाग को अपने अधीन कर लिया है। साम्राज्य के ऐसे शत्रु से पत्र-व्यवहार करना तो क्षमा नही किया जा सकता।"

इस पर महाप्रभु ने अपनी सफाई देने के लिए कहा, "बौद्ध इस देश मे बहुसख्या मे है। वे युद्ध पसन्द नही करते। वे शान्ति चाहते है और शान्तिमय उपायों मे विश्वास रखते है। यदि इस नीति का अवलम्बन नही किया गया तो वे न केवल राज्य से पृथक् हो जायँगे, प्रत्युत इन कार्यों में राज्य का विरोध भी करेगे।"

न्यायाधीश ने कहा, "महाप्रभु के कथन को हम भ्रममूलक मानते है। प्रथम तो बौद्ध देश मे बहुसख्या मे नही है। द्वितीय, प्रत्येक अवस्था मे वे युद्ध का विरोध करेंगे, यह असत्य है। तृतीय, अल्प मत मे बौद्ध किस प्रकार विरोध करेगे, इसका न बताना भ्रम उत्पन्न करने के लिए है। मैं महाप्रभु से पूछना चाहता हूँ कि मान लो, महाराज युद्ध के लिए सेना को यवनों पर आक्रमण करने के लिए कहते है तो किस प्रकार इस आज्ञा का विरोध वे बौद्ध करेंगे ? क्या वे मार्ग तोड़ देंगे ? पुलो तथा नदियों के बाँध तोडकर सेना का मार्ग अवरुद्ध कर देंगे अथवा लाठियाँ, खड्ग आदि

शस्त्रास्त्र ले वे अपने देश की सेना से ही युद्ध करने पर उतर आयेंगे।

"मै समझता हूँ कि जो कुछ ये महाराज को न करने के लिये कह रहे है, वही कुछ वे स्वय महाराज का विरोध करने के लिए करने पर तैयार हो जायंगे। शान्ति-शान्ति का पाठ रटने वाले ये अशान्तिमय व्यवहार के अपनाने मे संकोच तक नही करेगे।"

न्यायाधीश जब अपना कथन समाप्त कर चुका तो अरुणदत्त ने कहा, "महाराज ! मैं यह प्रार्थना करने आया हूँ कि पुष्यमित्र के विरुद्ध आज्ञा पढ कर राज्य-परिषद् से सम्मति ले ले, जिससे इसके न्याययुक्त होने पर विचार हो जाय।"

महाप्रभु का विचार था कि सदा की भाँति राज्य-परिषद् के तीन सदस्य एक ओर होंगे और तीन दूसरी ओर। पश्चात् अपना निर्णयात्मक मत देकर महाराज अपनी आज्ञा को उचित सिद्ध कर देगे। इस कारण वह भी राज्य-परिषद् की सम्मति लेने के तैयार हो गया।

उसने कहा, "यदि महाराज को अपनी आज्ञा के औचित्य पर सदेह है, तो राज्य-परिषद् से परामर्श कर ले।"

महाराज भी इसके लिए तैयार हो गए। अब न्यायाधीश ने पूछा, "मेरा निवेदन है कि इस आज्ञा का आधार क्या है, स्पष्ट किया जाये।"

महाराज ने कहा, "महाप्रभु यह सूचना लाये है कि यह सेना पुष्यमित्र निर्माण कर रहा है ?"

"इस सूचना की जाँच होनी चाहिए।" सेनापति का कहना था, "इस प्रकार की सूचना मात्र पर राज्य के महामात्य के सुपुत्र को बंदी बनाने की आज्ञा अनर्थकारी हो जाएगी। यह सूचना इतनी फूहर है कि सुनते ही अमान्य की जा सकती है। मै महाप्रभु से पूछता हूँ कि कितने सैनिक भरती किए गए है इस नवीन सेना मे ?"

"लगभग दो लक्ष।" महाप्रभु ने उत्तर दिया।

"इनकी शिक्षा पर तथा इनको अस्त्र-शस्त्र देने पर कितना व्यय होना सभव है। वह सब धन पुष्यमित्र के पास है क्या ?"

"संभव है यह धन राज्य के शत्रु से प्राप्त किया गया हो ।"

"कौन हो सकता है मगध राज्य का शत्रु ?"

"डेमिट्रियस ।"

"जिसके साथ महाप्रभु का पत्र-व्यवहार चल रहा है ।"

महाप्रभु ने इसका उत्तर नही दिया । इस पर महाराज ने राज्य-परिषद् के सदस्यों की सम्मति माँगी । महाप्रभु और महाराज की आशा के विपरीत कोषाध्यक्ष नीलमणि ने इस आज्ञा के विरुद्ध अपनी सम्मति दी। परिणामस्वरूप चार सदस्य एक ओर हो गये और महाप्रभु श्रावक सुनन्द के साथ अकेले रह गये ।

महाप्रभु बादरायण यह समझते थे कि नीलमणि पुष्यमित्र के विरुद्ध सम्मति देगा, परन्तु नीलमणि ने स्पष्ट कह दिया, "पुष्यमित्र हमारे महामात्य का सुपुत्र है । उसके स्थान पर यदि कोई नीच-से-नीच प्रजा का बालक भी होता तो भी बिना पुष्ट प्रमाणों के बदी बनाना तथा उसको दड देना इस राज्य मे नही होना चाहिए ।"

यह बात तो पीछे पता चली कि जब सुभट्टो को पुष्यमित्र को बदी बनाने की आज्ञा दी गई थी तो महाप्रभु महाराज को समझा रहे थे कि पुष्यमित्र को तुरन्त मृत्युदड दे दिया जाय और महाराज इस बात के लिए लगभग तैयार हो गये थे ।

तृतीय परिच्छेद

: १ :

पाटलीपुत्र के नगर की प्राचीर के बाहर पद्मा विहार के पूजागृह में भगवान् तथागत् की कृष्ण पत्थर की मूर्ति के सम्मुख महाप्रभु बादरायण हाथों मे पुष्प, पत्र लिये मूर्ति के चरणों मे शीश झुकाए बैठे थे।

महाप्रभु अत्यन्त आर्द्र हृदय से भगवान् तथागत के चरणों मे निवेदन कर रहे थे, "प्रभु ! जब तुमने प्रकाश दिया है, तो उसका प्रमाण भी दो। तुमने कहा था पचशील का मार्ग ही सुख और शान्ति का मार्ग है, तो अब इस मार्ग पर चलते हुए सुख और शान्ति की उपलब्धि क्यों नही ? हे प्रभु ! पथभ्रष्टों का मार्ग-दर्शन करो। मानवता से विचलित मन को प्रेरणा देकर स्थिर कर दो। तुम्हारे त्याग और तपस्या की ज्योति सब मानवो के मन में जगमगा उठे और सब मानव एक-दूसरे के प्रति बन्धु-भाव रखे, हिंसा का मार्ग त्याग कर सहिष्णुता के मार्ग का अवलम्बन करे।"

जब महाप्रभु मन के उद्‌गार इस प्रकार प्रकट कर रहे थे, भवन में दो सौ श्रावक और कई सहस्र उपासक चिन्तन कर रहे थे। यह बौद्ध-उपासना थी। इसके पश्चात् चौथाई घड़ी-भर बौद्ध मत्र का जाप हुआ और महाप्रभु ने पंचशील की व्याख्या आरम्भ कर दी। उन्होने जातकों मे से एक कथा सुना दी—

"एक बार भगवान् तथागत् के परमप्रिय शिष्य सुनन्द वैशाली से तुषार शैलभू की ओर जा रहे थे। मार्ग मे एक घना वन पड़ता था।

मार्ग वन में से होकर जाता था। जब सुनन्द उस वन में प्रवेश करने लगे तो वन के तट पर रहने वाले गड़रियों ने भिक्षु सुनन्द को बताया कि वन में एक हिंसक सिंह रहता है। वह किसी भी मनुष्य को जीवित नहीं छोड़ता। उसको मनुष्य के माँस का स्वाद पड चुका है।

"भिक्षु सुनन्द एक बार तो अपने जीवन के लिए चिन्ता करने लगे। उनको संदेह हो गया कि उनमे शील का सचार अभी पूर्ण है अथवा नही। इस कारण वे रुक गये। परन्तु अगले ही क्षण उनके मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि उन्होने कभी किसी का बुरा चिन्तन नही किया। उन्होने किसी को अपना शत्रु नही माना। उन्होने मन, वचन तथा कर्म से किसी की हिसा नही की। जब वे ऐसे है, तो अब कोई उनका अकल्याण क्यों करेगा ? इस प्रकार शील से ओत-प्रोत सुनन्द वन की ओर चल पड़े। गडरियों ने पुनः उनको रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु सुनन्द ने उनसे कहा, 'मेरा हित चिन्तन करने वालो ! मै आपका अत्यत आभारी हूँ। परन्तु जब मेरे मन मे कि किसी के लिए द्वेष नही तो भला मुझसे कौन द्वेष करेगा ?' इतना कह वे अपने पथ पर आगे बढ चले।

"इस मार्ग पर कठिनाई यह थी कि वन बहुत लम्बा-चौडा था। एक दिन मे यह पार नही किया जा सकता था। रात वन मे ही व्यतीत करनी पडती थी। सुनन्द का विचार था कि किसी वृक्ष पर चढ कर रात्रि व्यतीत कर लेगे, परन्तु पुनः उनके मन मे आया कि यह दुर्बलता है। एक दुर्बल मन तो पचशील मे अविश्वास का सूचक होता है। इस प्रकार वे अपने मन में भगवान् तथागत् का चिन्तन करते हुए चलते गये।

"सायंकाल वे वन में, एक नदी के किनारे चबेना चबाकर, जल पी भूमि पर लेट गये। दिन भर की यात्रा के कारण वे बहुत थके हुए थे, और जब वे सोये तो उनको करवट लेने की सुध नही रही।

"गड़रिये, जिन्होने सुनन्द को वन मे जाने से मना किया था, अत्यन्त दुखी थे। उनको पीछे पता चला कि सुनन्द भगवान के प्रिय शिष्य है और निर्वाण-पथ पर बहुत दूर तक पहुँचे हुए हैं। वे विचार करने लगे

कि उन्होने उनको वन में जाने देकर भूल की है। जब उनको अपनी भूल का ज्ञान हुआ तो वे अपने हाथो मे जलती हुई अग्नि-शिखाएँ लेकर वन मे सुनन्द की खोज पर चल पडे। लगभग आधी रात्रि की खोज के पश्चात् वे उस नदी के तट पर पहुँचे, जहाँ सुनन्द विश्राम कर रहे थे।

"दूर से गडरियो ने सिह की चमकती आँखो को देखा तो भय से थर-थर काँपने लगे। इस समय उन को स्मरण हो आया कि अग्नि के सम्मुख वन के पशु ठहर नही सकते। इस कारण वे एक-दूसरे के समीप हो, अपनी अग्नि-शिखाओ को तीव्र कर, उस चमकने वाली आँखों की ओर बढे।

"गडरियों ने दूर से देखा कि एक मनुष्य का शव भूमि पर सपाट पडा है और सिह उस शव के समीप बैठा हुआ उनकी ओर देख रहा है। उन्होने समझा कि सुनन्द की हत्या हो चुकी है और सिह आखेट के माँस का रस-स्वादन कर रहा है। अत. सिह को शव के पास से भगाने के लिए उन्होने हल्ला करना आरम्भ कर दिया।

"उनके विस्मय का ठिकाना नही रहा, जब भिक्षु उनका नाद सुनकर उठ खडे हुए। भिक्षु को जीवित देख और सिह को शान्त हो समीप बैठा देख, वे आश्चर्यचकित रह गये।

"सुनन्द परिस्थिति को समझ गये। उनको भगवान के पचशील के सिद्धान्त पर अगाध श्रद्धा हो गई। उन्होने सिह की पीठ पर प्यार देकर कहा, 'भद्र! अब जाओ।" सिह उठा और नदी तट पर चलता हुआ दूर वन मे विलीन हो गया।

"गडरिये सुनन्द को जीवित देख और सिह के साथ कल्लोल करते देख एक स्वर मे बोल उठे, 'भिक्षु महाराज की जय हो ! जय हो !!'

"सुनन्द ने देखा कि उनको तो व्यर्थ में शोभा मिल रही है। इस कारण उन्होने सबको एकत्रित कर कहा, 'भगवान् तथागत की जय हो। पंचशील की जय हो !! बौद्ध धर्म की जय हो !!'

"पश्चात् वे उन गडरियों को लिये हुए, बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्म शरणं गच्छामि, सघं शरणं गच्छामि का गान करते हुए वन के मार्ग पर

चल पड़े।"

यह कथा सुनाकर महाप्रभु ने कहा, "उपासको तथा श्रावको ! आज मगध राज्य मे हिसा की भावना पुनः उत्पन्न हो गई है। एक भूले हुए बन्धु ने इस देश पर आक्रमण कर दिया है और इस भूल का उत्तर भूल से दिया जा रहा है। यह ससार मे महा अनर्थ होने लगा है। इस अनर्थ को रोकने की हमारे पास शक्ति नही है। हम केवल यह कर सकते है कि अपने को इस हत्या-काड से पृथक् रखे।

"आज पाटलीपुत्र के दक्षिणी प्राचीर के बाहर विशाल मैदान मे एक महान् सैनिक शिविर लगा हुआ है। उस शिविर मे बीस सहस्र पुराने तथा दो लक्ष नवीन सैनिक एकत्रित हुए है।

"यह जानकर कि इतने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सैनिक एकत्रित हुए है, मेरा हृदय दुःख से भर आया है। उसमे से रक्त चू रहा है। परन्तु मै पचशील मे बँधा हुआ, किसी के विरुद्ध कुछ कर नही सकता। जिन सेठ्ठियो ने इस सेना के निर्माण के लिए धन दिया है, सब-के-सब सहस्रो जन्म तक घोर नरक मे सतप्त रहेगे। भगवान उनको सन्मार्ग दिखाएँ। उनके मन में पचशील का प्रकाश हो और वे इस कुमार्ग को त्याग कर भगवान की शरण मे आवे।"

इस उपदेश के पश्चात् पुनः बौद्ध-मन्त्र का गायन हुआ और उपासना समाप्त हुई।

सहस्रों उपासक तथा श्रावक, जो आज की उपासना मे एकत्रित थे, नगर के बाहर सेना एकत्रित देख, अत्यन्त दुःख अनुभव कर रहे थे। उपासना के पश्चात् जब वे वहाँ से वापिस लौटे तब भी उनके हृदय भारी थे। महाप्रभु ने वास्तविक समस्या का कोई सुझाव उपस्थित नही किया था।

जब पूजा-भवन उपासकों से रिक्त हो गया तो महाप्रभु ने श्रावको को कहा, "नगर में जाओ और महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार बुलाओ। आज सायंकाल से पूर्व जनता के मन में राजा तथा राज्य मे चल रहे संघर्ष का निर्णय होने वाला है। राजा की जय का अर्थ है बौद्ध धर्म की जय।

इस कारण जाओ और नगर मे एक बार सबके मुख पर भगवान तथागत और उपासक महाराज बृहद्रथ की जयजयकार के स्वर भर दो।"

: २ :

आज पूर्णिमा थी। पुष्यमित्र के आदेश पर नवीन सेना के दो लक्ष सैनिको में से लगभग पौने दो लक्ष सैनिक बाहर शिविर में एकत्रित हो गये थे। इस शिविर का प्रबन्ध पुरानी सेना की वह टुकडी, जो पाटली-पुत्र मे स्थित थी, कर रही थी। शिविर पर व्यय सेट्ठियों की वह समिति कर रही थी, जो पुष्यमित्र ने देश की रक्षार्थ बनाई थी।

जब सैनिक एकत्रित होने लगे तो सूचना महाराज के पास भी आ-पहुँची। राजभवन के प्रतिहारो के नायक ने महाराज के पास पहुँचकर सूचना दी, "महाराज! आज नगर के बाहर बहुत बडा सैनिक-शिविर लगा हुआ है और वहाँ सैनिक भारी संख्या मे एकत्रित हो रहे है। राज्य के चारों ओर से सैनिको के झुड-के-झुड, और भी आ रहे है।"

"किस लिए एकत्रित हो रहे है ये ?"

"यह कहा जा रहा है कि महाराज अपने नवीन सैनिकों मे सैनिक प्रतियोगिता का आयोजन कर रहे है। इसी निमित्त सभी सैनिक पाटली-पुत्र के बाहर शिविर लगा रहे है।"

महाराज को समझ आया तो उनके पाँव-तले से भूमि खिसक गई। एक बात तो वे समझ गये कि उस दिन तक बौद्ध-श्रावकों का व्यवहार अयुक्तिसगत रहा है। उनके हृदय पर यह बात अकित हो चुकी थी कि आक्रमण का विरोध करना उनका कर्तव्य था और इस कर्तव्यपालन मे बौद्ध बाधा बन रहे थे। आज लक्ष-लक्ष सैनिक एकत्रित देख एक बार तो उनकी धमनियो मे सुप्त क्षत्रिय रक्त जाग उठा।

महाराज बृहद्रथ ने इस विषय मे अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सेनापति को बुला भेजा। जब सेनापति आया तो महाराज ने पूछा, "सेनापति! आपने इस नवीन सेना के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिए पन्द्रह दिन की अवधि माँगी थी ?"

"हाँ महाराज ! मेरी जाँच पूर्ण हो चुकी है। कल मै पूर्ण सूचना सेवा मे उपस्थित करने के लिए आने वाला था।"

"परन्तु सेना तो आपकी सूचना से पहिले ही यहाँ पहुंच गई है।"

"मुझको महाराज ने उस सेना को यहाँ आने से रोकने के लिए आज्ञा नही दी थी। मुझको तो यह सेना, किसने और क्यो निर्माण की है, का पता करने के लिए आज्ञा दी थी। यह कार्य मैने पूर्ण कर लिया है।"

"परन्तु सेनापति ! देश मे दूसरी सेना देख तुमने इसको तोडने का यत्न क्यो नही किया ?"

"इसलिए महाराज ! कि यह सेना दूसरी नही है। यह भी मगध-राज्य की सेना है और आपके अधीन है। इसलिए पुरानी तथा नवीन सेना मे कोई भेद नही है। जैसे शरीर का एक हाथ दूसरे को काट नही सकता, वैसे ही देश की सेना का एक भाग दूसरे को तोड़ नही सकता।"

"परन्तु यह हमारी आज्ञा से निर्माण नही हुई।"

"इसके निर्माणकर्ताओ ने महाराज की आज्ञा की आवश्यकता नही समझी। उनका विचार है कि वे महाराज की आवश्यकताओं को महाराज से अधिक समझते है।"

"महामूर्ख है वे। हम ऐसे व्यक्तियों को, जो अपने को हमसे अधिक योग्य और बुद्धिमान मानते है, देश तथा राज्य के लिए घातक समझते है। इनको इस धृष्टता का दण्ड मिलना चाहिए।"

"महाराज ! आप पुनः धर्म-व्यवस्था को अपने हाथ मे ले रहे है। आप इन लोगों के विरुद्ध आरोप लगाकर, इनको न्यायाधीन कर दीजिए। यह कार्य न्यायाधीश का है कि वह आपके आरोपो को ठीक अथवा गलत समझे।"

"परन्तु यह तो स्पष्ट है ही कि जो व्यक्ति राज्य की आवश्यकताओं को हमसे अधिक समझता है, वह हमको मूर्ख समझता है।"

"महाराज ! इससे यह तो सिद्ध नही होता। देखिए, मै आपका सेनापति हूँ। आपकी सेना के विषय में मेरा ज्ञान आपसे अधिक है, परन्तु

मैं आपको मूर्ख नही मान सकता। इसी प्रकार न्यायाधीश धर्म के विषय मे आपसे अधिक ज्ञान रखते है, परन्तु वे आपको मूर्ख नही मानते।"

"परन्तु वह है कौन, जो मुझसे अधिक जानता है कि मुझको सेना-निर्माण की आवश्यकता है।"

"महाराज ! देश भर मे नागरिकों की एक समिति बनी है। इस समिति की शाखाएँ गाँव-गाँव नगर-नगर मे खुल चुकी है। यह सेना उस समिति की शाखाओ ने निर्माण की है। उस समिति ने ही इन सैनिको को पाटलि-पुत्र मे एकत्रित किया है और वह समिति कल एकम् के दिन इस सेना को महाराज की सेवा मे भेट करना चाहती है।"

महाराज बृहद्रथ इस प्रकार की भेट का अर्थ समझने मे लीन हो गया। वह अभी विचार कर ही रहा था कि सेनापति ने आगे कहा, "प्रजा महाराज की सेवा मे भेट दिया ही करती है। नागरिको की इस समिति ने यह सेना भेट मे देने के लिए निर्माण की है।"

बृहद्रथ समस्या का सुझाव इस प्रकार होता देख प्रसन्न था। इस कारण उसने पूछा, "तो ये लोग कब मिलने आयेंगे ?"

"जब महाराज को अवकाश हो। उनकी इच्छा है कि कल मध्या-ह्नोत्तर आप उनको दर्शन दे और पश्चात् सेना के शिविर मे पूर्ण सेना का निरीक्षण करने के लिए दिन के तीसरे प्रहर पधारे।"

"ठीक है। कल समिति के प्रमुख सदस्य यहाँ उपस्थित हो और पश्चात् हम, राज्य-परिषद् तथा उस समिति के सदस्यों सहित, सेना का निरीक्षण करेगे। निरीक्षण के पश्चात् हम सेना को सबोधन भी करेगे।"

इस वार्त्तालाप से सेनापति सन्तुष्ट हो, पुष्यमित्र को समाचार देने चला गया।

महाराज के भेट स्वीकार करने को तैयार हो जाने ने सबको विस्मय मे डाल दिया। अरुन्धति योजना मे भारी हाथ ले रही थी। वह अब नागरिक समिति की सदस्या मानी जाती थी। वास्तव मे महर्षि पतजलि और उनके शिष्य-वर्ग सैनिकों की शिक्षा तथा उनमे बौद्धिक विकास के

कार्यक्रम मे बहुत भाग ले रहे थे।

इस समाचार से एक बार तो अरुन्धति स्तब्ध रह गई। पश्चात् विचार करने लगी कि महर्षि की योजना तो तब कार्यान्वित होनी थी, जब महाराज भेट स्वीकार करने से इन्कार कर देते। महाराज स्वय ही पुष्यमित्र की योजना के अनुसार कार्य करने को तैयार है तो फिर महर्षि की योजना नही चलेगी। यह विचार कर उसने भी इस सूचना पर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर दी।

उस रात पुष्यमित्र स्वयं सेना का निरीक्षण कर रहा था। महर्षि के शिष्य पुष्यमित्र को लेकर पूर्ण शिविर में घूम गये। जहाँ-जहाँ भी पुष्यमित्र गया, महर्षि के शिष्यो ने यह घोषणा की—"राज पुरोहित पडित अरुणदत्त के सुपुत्र पडित पुष्यमित्र के कहने पर ही यह सेना निर्माण की गई है। पडित पुष्यमित्र का यह कथन है कि नागरिक समिति ने यह सेना डेमिट्रियस को देश से निकालने के लिए निर्माण की है।

"विदेशियो के आक्रमण से भारत के मुख पर कालख पुत गई है। इस कालख को धोने के लिए इस सेना का निर्माण हुआ है और यह निश्चय है कि शीघ्रातिशीघ्र यवनो पर आक्रमण कर, उनको देश से बाहर निकाल दिया जायगा।"

इस प्रकार पूर्ण शिविर मे पुष्यमित्र को घुमाया गया और सैनिको को उसकी आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया जाता रहा।

जब मध्य रात्रि के समय पुष्यमित्र विश्राम करने अपने घर पहुँचा तो अरुन्धति उसके आगार मे चली आई और पूछने लगी, "आर्य ने महाराज की इच्छा के विषय मे सुना है क्या ?"

"हाँ, सेनापति तथा पिता जी मिलकर कल के समारोह का कार्यक्रम बना रहे है।"

"ठीक है, उनको बनाने दीजिये। मै तो यह जानना चाहती हूँ कि आपके कार्यक्रम मे कुछ अन्तर पडा है क्या ?"

"अवश्य पड़ेगा। नागरिकों की समिति के सदस्य यह चाहेंगे कि

मै उनका नेतृत्व करूं।"

"आर्य से मेरा निवेदन है कि ऐसा न किया जाय।"

"क्यों ?"

"यह कार्य तो बच्चो का है। जिनकी बुद्धि अभी बच्चों की भाँति अविकसित है, वे महाराज के दर्शन कर कृतकृत्य होगे। आर्य तो इस प्रकार की बुद्धि नही रखते। मेरा विचार है कि आपका कार्य सैनिक-शिविर में है।"

पुष्यमित्र इसमे कोई युक्ति नही समझ सका। इस कारण पूछने लगा, "देवी का अभिप्राय क्या है ? मैने नागरिको से लक्ष-लक्ष स्वर्ण एकत्रित कर सेना पर व्यय किये है और इस समय उनका नेतृत्व करने से पीछे हट जाना एक प्रकार का द्रोह हो जायगा।"

अरुन्धति ने कह दिया, "मै इसमे कोई युक्ति नही देना चाहती। इस पर भी मेरी आर्य से प्रार्थना है कि वे राज्य-प्रासाद मे नागरिको की समिति के साथ न जायँ। मै इतना ही कह सकती हूँ कि अभी तक तो आर्य को मेरी सम्मति मानकर हानि नही उठानी पडी। इस बार भी हानि नही होगी।"

पुष्यमित्र को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके राज्य-प्रासाद मे जाने में अरुन्धति किसी प्रकार के अनिष्ट की सभावना मान रही है।

अरुन्धति अपने आगार मे लौट गई तो पुष्यमित्र सोने की तैयारी करने लगा। अभी वह सोया नही था कि किसी ने धीरे से द्वार खट-खटाया। खटखटाने के शब्द से पुष्यमित्र समझ गया कि शंखपाद है। अतएव पुष्यमित्र ने आगार मे अन्धकार कर द्वार खोल दिया। शंखपाद भीतर आया तो भीतर से द्वार बद कर कहने लगा, "हम अभी-अभी महाराज से भेट कर लौटे है। महाप्रभु रथ पर मुझको मेरे घर पर छोड़-कर विहार को लौट गये है और मैं अवसर पा, इस ओर नवीन समाचार देने चला आया हूँ। कल कदाचित् मैं नही आ सकूँगा।"

"हाँ, क्या समाचार है शंखपाद ?"

"नागरिको की समिति जब महाराज को सेना भेट मे देने जायगी, तो सब सदस्य बदी बना लिए जायँगे। यदि सेनापति, न्यायाधीश तथा महामात्य ने इसमे आपत्ति उठाई तो उनको भी बंदी बना लिया जायगा।

"इसके लिए सब प्रबन्ध पूर्ण हो चुका है। राज्य-प्रासाद मे दो सौ सुभट्ट महाराज की आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार खडे रहेगे।"

पुष्यमित्र इस सूचना पर अवाक् बैठा रह गया। शखपाद अन्धेरे मे ही आगार का द्वार खोल बाहर निकल गया। पुष्यमित्र अरुन्धति की सूझ-बूझ पर चकित था।

रात-भर वह करवटे लेता रहा और विचार करता रहा। उसको बार-बार महर्षि के कथन का स्मरण आ रहा था कि सेना को राज्य-भक्त बनाना है, राजभक्त नही।"

पुष्यमित्र इसका अर्थ यह समझ रहा था कि राजा के विरुद्ध विप्लव खड़ा किया जाना चाहिए।

: ३ :

पुष्यमित्र ने अपने पिता तथा सेनापति को शखपाद से प्राप्त सूचना नही बताई। न ही उसने यह बताया कि वह नागरिकों की समिति का नेतृत्व क्यो नही कर रहा।

वह स्नानादि कर पूजा से निवृत्त हो, सैनिक-शिविर मे जा पहुँचा। उसे सेना मे भारी हलचल प्रतीत हुई। वह शिविर मे स्थान-स्थान पर घूम रहा था और सैनिक उसको देख महाराज बृहद्रथ के स्थान उसकी जय-जयकार कर उठते थे।

एक सैनिक, जब वह सैनिक-शिविर मे पहुँचा, तो उसका पथ-प्रदर्शक बन, उसके साथ-साथ हो गया। लगभग पचास सैनिक उसके आगे-पीछे चलने लगे थे। इस प्रकार वह समझ रहा था कि उसकी सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जा रहा हैं।

पूर्ण सेना मे घूम आने पर उसको विश्राम के लिए एक खेमे मे ले जाया गया। वहाँ पहुँच, उसके पथ-प्रदर्शक ने कहा, "भगवन् ! जलपान

का प्रबन्ध है। आज्ञा हो तो मँगवाया जाये।"

पुष्यमित्र प्रातःकाल ही घर से चला आया था। प्रातः उसने जलपान नहीं लिया था और अब इसकी आवश्यकता अनुभव कर रहा था। इस पर भी उसने अपने प्रथ-प्रदर्शक का परिचय प्राप्त करना आवश्यक समझा। उसने पूछा, "वीर ! तुम कौन हो ?"

"भगवन् ! मेरा नाम कान्तमणि है। मैं ब्राह्मण-परिवार मे उत्पन्न, महर्षि पतजलि के आश्रम मे शिक्षा पा कर इस नवीन सेना मे भरती हो गया था। अब मैं यहाँ सेना-नायक हूँ।

"हमने पूर्ण सेना को बीस भागो मे विभक्त कर दिया है। प्रत्येक भाग का एक-एक उप-सेनापति है। एक भाग मे दस-दस विभाग है, जिन पर एक-एक सेना-नायक है। प्रत्येक विभाग मे दस-दस टुकड़ियाँ है और प्रत्येक टुकडी एक-एक उपनायक के अधीन है।

"एक-एक टुकड़ी में दस-दस मण्डलियाँ है, जिन पर मण्डलेश्वर हैं। इस प्रकार यह सगठन हमने कल ही पूर्ण किया है। हमारी नवीन सेना के सेनापति आप है। जब तक यह कार्य-भार आप किसी अन्य को नही देते, यह सारी सेना आपके अधीन रहेगी। सेना ने मुझे आपका अंगरक्षक नियुक्त किया है।

"अब आप जैसा आदेश देगे, सेना उसका पालन करेगी।"

"मेरी इच्छा है," पुष्यमित्र ने कहा, "मै सब उप-सेनापतियों से मिलना चाहता हूँ।"

कान्तमणि ने ताली बजाई तो एक सैनिक भीतर आ गया। उसने उप-सेनापतियो को एकत्रित होने का आदेश भेज दिया।

जब सब आ गए तो जलपान के लिए आज्ञा हो गई। आहार लेते हुए पुष्यमित्र ने सेना को एकत्रित करने का उद्देश्य पुनः स्पष्ट करने के लिए कहा, "यह तो आपको विदित ही है कि इस सेना के निर्माण में हमारा क्या उद्देश्य है।

"भारत पर विधर्मियों तथा विदेशियों ने आक्रमण कर देश का एक

बहुत बड़ा भूभाग अपने अधिकार मे कर लिया है। हमने यह निश्चय किया है कि उन विदेशियो को देश से बाहर निकाल, वह भूभाग पुनः अपने अधिकार मे लेकर, इसको महाराज बृहद्रथ के राज्य मे मिलायेगे।

"परन्तु हमे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि महाराज बृहद्रथ यवनों से युद्ध करने मे रुचि नही रखते। महाप्रभु बादरायण उनके परामर्शदाता है और वे चाहते है कि डेमिट्रियस से सन्धि कर ली जाय अर्थात् उस भूभाग पर उसका अधिकार स्वीकार कर लिया जाय।

"ऐसी अवस्था मे हमारी यह नवीन सेना, बिना महाराज के भी, उन विदेशियो को निकाल बाहर करेगी और यदि महाराज ने इसमे बाधा डाली तो महाराज को हटाकर उनके स्थान पर किसी अन्य को महाराज घोषित कर देगी। किसी भी अवस्था मे हमारा, देश को स्वतत्र करने का प्रयास, सफल होकर रहेगा। यह यात्रा अब रुक नही सकती और तब तक नही रुकेगी, जब तक यवन सिन्धु के पार नही कर दिये जाते। कोई भी व्यक्ति अथवा प्रलोभन अब हमको अपने मार्ग से विचलित नही कर सकता।"

इसके पश्चात् कान्तमणि ने सब उप-सेनापतियो का पुष्यमित्र से परिचय कराया। सब उपसेनापतियो ने पुष्यमित्र का, अन्तिम समय तक साथ देने के लिए, वचन दिया।

मध्याह्न के समय जब पुष्यमित्र अपने घर पर पहुँचा तो उसको पता चला कि उसके पिता, सेनापति, कोषाध्यक्ष तथा न्यायाधीश नागरिक समिति के सदस्यो के साथ महाराज से भेट करने जा चुके है।

सब लोग अति प्रसन्न मुद्रा मे राज्य-प्रासाद को गये थे और आशा कर रहे थे कि आज से नया अध्याय आरम्भ होने जा रहा है। कदाचित् अब शीघ्र ही महाराज यवनो के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगे।

जब महामात्य इत्यादि राज्य-प्रासाद मे पहुँचे तो उनको महाराज के सम्मुख उपस्थित कर दिया गया। सेनापति ने देखा कि महाप्रभु बादरायण तथा श्रावक सुनन्द पहले से ही उपस्थित हैं। महाराज एक उच्च आसन

पर विराजमान थे और उनके पीछे बीस सुभट्ट खड्ग धारण किये खड़े थे।

उस आगार के बाहर, जहाँ महाराज से इनकी भेट होनी थी, लगभग दो सौ सुभट्ट खड्ग धारण किये खडे थे। सेनापति इनको देख कर यही समझा था कि महाराज की सवारी,जो राज्य-प्रासाद से चलकर सैनिक-शिविर तक जाने वाली है, का प्रबन्ध किया गया है।

आज महाराज राज्य-परिषद् के सदस्यो के आने से पहले ही वहाँ विराजमान थे। अतः जब सब लोग आगार मे प्रविष्ट हुए तो प्रणाम कर खडे हो गये। जब तक महाराज का आदेश न हो, बैठने का प्रश्न ही नही उठता था। सेनापति को यह बात अखरी।

महाराज ने बिना किसी को बैठने का सकेत किये पूछना आरम्भ कर दिया। उन्होने कहा, "मै सब का परिचय चाहता हूँ।"

इस पर सेनापति ने खड़े-खड़े ही सेट्ठियो का परिचय कराना आरम्भ कर दिया। परिचय देकर उसने कहा, "महाराज! जब राज्य ने प्रजा के सरक्षण से अपना हाथ खेच लिया तो प्रजागण के मन मे स्वरक्षा की भावना जागृत हो उठी। उस भावना के अनुरूप पहले पाटलिपुत्र और पश्चात् राज्य-भर के धनी-मानी सेट्ठियों ने एक समिति निर्माण की। उस समिति ने अपने सामने एक उद्देश्य निश्चय किया कि आपके इस राज्य को इतना सुदृढ कर दिया जाय, जिससे उनके धन, सम्पदा तथा स्त्री-वर्ग की रक्षा की जा सके।

"इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये इन्होंने धन एकत्रित किया और पश्चात् देश के युवको को सैनिक-शिक्षा देने का कार्यक्रम बनाया। देश मे दो लक्ष से अधिक युवको ने अपने धर्म तथा जाति की रक्षा के लिए अपनी सेवाएँ अवैतनिक देनी स्वीकार की। समिति के कोश मे से केवल शस्त्रास्त्रों तथा गणवेश के लिए धन व्यय किया गया है तथा आज के उत्सव-कार्य पर व्यय किया जा रहा है।

"अब समिति के सदस्य महाराज की सेवा मे उपस्थित हो, देश तथा धर्म के उद्धार के लिए, यह सेना महाराज की सेवा मे भेट स्वरूप देते है।

सैनिको का यह निश्चय है कि युद्ध-काल मे कोई कुछ भी वेतन निमित्त ग्रहण नही करेगा और इस समिति का यह निश्चय है कि इस युद्ध पर जो कुछ भी व्यय होगा, अपने कोश मे से व्यय करेगी।"

इतना कह सेनापति चुप कर गया। अभी तक राज्य-परिषद् के सभी सदस्य तथा समिति के सदस्य खड़े थे और उनको बैठने का सकेत नही किया गया था। इस कारण सभी अपमानित-सा अनुभव कर रहे थे। सेनापति को तो क्रोध आ रहा था, परन्तु वह अपने ऊपर नियंत्रण रखे हुए था।

सेनापति के चुप करने पर, सेट्ठियों मे से एक वृद्धजन ने, एक स्वर्ण थाल मे, चाँदी के पत्रे पर लिखी भेट महाराज के चरणो पर रख दी। सब आशा करते थे कि महाराज उठकर यह भेंट स्वीकार करेगे, परन्तु महाराज ने हाथ नही बढाये।

वृहद्रथ दुविधा मे फँसा हुआ था। वह समझता था कि यह अवसर है जब एक भी टका व्यय किए बिना युद्ध चलाया जा सकता है। जहाँ तक हिसा का प्रश्न था, सब सैनिक स्वेच्छा से सेना मे भरती हुए थे। अतएव उनसे की जाने वाली हिसा का वह भागी नही होगा। इस कारण उसका मन कह रहा था कि इस भेट को स्वीकार कर ले। परन्तु उसका बादरायण से वार्त्तालाप हुआ था और उनमे परस्पर यह निश्चय हो चुका था कि सेना युद्ध के लिए स्वीकार नही की जायगी। भेट मे सेना स्वीकार करने पर इसका विघटन कर दिया जायगा।

इसी दुविधा में फँसा हुआ वृहद्रथ चुप बैठा था। इस पर महाप्रभु बादरायण कहने लगे, "महाराज अपनी प्रजा के मन मे अपने प्रति इतनी श्रद्धा तथा भक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए है। वे ऐसी प्रजा को पाकर अपने को कृत-कृत्य मानते है।

"महाराज आपकी इस भेंट को सहर्ष स्वीकार करते है और यह घोषणा करते है कि इस नागरिक समिति के सब सदस्यों को पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित किया जायगा।

"एक बात महाराज अभी से स्पष्ट कर देना चाहते है कि समर की आज्ञा देनी अथवा न देनी उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। इस भेट को स्वीकार कर वे इसका क्या प्रयोग करेगे, यह महाराज सेना-शिविर में, सैनिकों के समक्ष प्रकट करेगे।"

इस पर वह सेट्ठी, जिसने स्वर्ण थाल मे भेट-पत्र महाराज के चरणों में रखा था, झुककर हाथ जोड कहने लगा, "महाराज की जय हो ! एक बात मैं अपनी समिति की ओर से निवेदन करना चाहता हूँ कि यह भेट एक विशेष कार्य-निमित्त की गई है। इस भेट मे दो लक्ष मगध राज्य के युवको ने अपना जीवन निछावर करना स्वीकार किया है। एक सौ लक्ष स्वर्ण-मुद्रा इस पर व्यय की जा चुकी है और इससे भी अधिक समर पर व्यय करने के लिए एकत्रित की गई है। इतना कुछ हम प्रजागण एक कार्य-विशेष के लिए महाराज के अर्पण कर रहे है।

"यह कार्य यवनो को देश से निकाल, अपनी प्रजा के धन, जन तथा स्त्री-वर्ग की रक्षा करना है।"

अब महाराज बृहद्रथ कहने लगे, "इसका अर्थ यह हुआ कि इस भेट के साथ यह शर्त लगाई जा रही है कि अमुक कार्य के लिये ही यह सेना हमारे अधीन की जायगी।"

"हाँ महाराज ! यह हम स्वेच्छा से, परन्तु कार्य-विशेष के लिए, दे रहे है। यह कर के रूप मे नही है। यह भेंट है।"

"हम अपने अधीनस्थों की इस प्रकार की आज्ञा से अपना अपमान समझते है।"

इस पर सेनापति, जो बृहद्रथ की इस उद्दण्डता पर क्रोध से उतावला हो रहा था, कहने लगा, "इस अवस्था मे मेरा महाराज से निवेदन है कि वे इस भेट को स्वीकार न करें।"

"परन्तु सेनापति ! एक ही राज्य मे दो सेना नही रह सकतीं। जिन्होंने यह दूसरी सेना निर्माण की है, देशद्रोह किया है। हम उनको दण्ड देने वाले है।"

"महाराज ! देश मे सेना एक है, दो नही । ये सेनाएँ परस्पर विरोधी नहीं है । इस प्रकार यह सेना का परिवर्द्धन-मात्र ही है ।"

"हम ऐसा नही समझते ।"

"तो आपको समझना होगा ।"

"तुम हमको समझाओगे ? मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम सब को बन्दी बना लिया जाय ।"

इस समय वे सुभट्ट, जो उस आगार मे खडे थे, अपने खड्ग नग्न कर सभी सदस्यो को, चारो ओर से, घेर कर खडे हो गये । आगार के बाहर से लगभग एक सौ सुभट्ट बन्दी बनाने के लिए भीतर आ गये । सब सदस्यो को रस्सी से बाँधा जाने लगा ।

इस समय महाप्रभु ने नीलमणि कोषाध्यक्ष से कहा, "आप तो इस षड्यन्त्र में सम्मिलित नहीं । आप एक ओर हो जायँ ।"

"नही महाप्रभु ! मेरा स्थान यही है । मै अपने भाई-बान्धवो के साथ ही रहना चाहता हूँ ।"

इस प्रकार सबको रस्सो से बाँध कर राज्य-प्रासाद के एक आगार मे बन्द कर दिया गया ।

इतना कुछ हो चुकने पर, महाराज ने महाप्रभु से पूछा कि अब क्या करना चाहिए । महाप्रभु ने कहा, "महाराज ! हम को भोजन कर तीसरे प्रहर सेना-शिविर मे जाना चाहिए और वहाँ जाकर सेना-विघटन की आज्ञा दे देनी चाहिए ।"

"क्या यह आज्ञा यहाँ से नही भेजी जा सकती ।"

"आज्ञा तो भेजी जा सकती है, परन्तु उसके पालन होने की सम्भावना कम है ।"

"तो हम चलेंगे ।"

: ४ :

यह सूचना कि राजपुरोहित इत्यादि सभी लोग बन्दी बना लिये गए है, पुष्यमित्र के पास महाराज से पहले जा पहुँची । पुष्यमित्र भोजन कर

शिविर मे पहुँचा ही था कि शखपाद का एक सेवक यह सूचना लेकर आ गया। पुष्यमित्र समझ गया कि कार्य आरम्भ करने का समय आ पहुँचा है। उसने उसी समय एक उप-सेनापति को बुला कर आदेश दिया कि अपने साथ एक सहस्र सैनिक ले जाकर राज्य-प्रासाद पर आक्रमण कर बन्दियो को छुड़ा लिया जावे। उनके इस कार्य मे कोई भी बाधा खड़ी करे, तो उसको मृत्यु के घाट उतार दिया जाय।

पुष्यमित्र ने एक अन्य उप-सेनापति के अधीन दस सहस्र सैनिक नगर मे शान्ति स्थापित रखने के लिए भेज दिए।

पुष्यमित्र का विचार था कि महाराज बदियो को छुड़ाए जाने का विरोध करेगे और वे, कदाचित् वही, मृत्यु के घाट उतार दिए जावेगे। परन्तु ऐसा हुआ नही।

महाराज बृहद्रथ, महाप्रभु तथा लगभग एक सौ सुभट्टों के साथ सेना-शिविर की ओर प्रस्थान कर चुके थे। सैनिक, जिस मार्ग से राज्य-प्रासाद की ओर गये थे, वह सीधा मार्ग था और महाराज नगर मे घूम-घुमाव कर, आ रहे थे, इस कारण मार्ग मे भी भेट नही हो सकी। जिस समय पुष्यमित्र के भेजे सैनिक राज्य-प्रासाद पर पहुँचे, महाराज सैनिक-शिविर में आ पहुंचे थे।

पुष्यमित्र महाराज को आया देख, उनके स्वागत के लिए आगे बढ़ा और नमस्कार कर महाराज को साथ ले मंच पर चढ़ गया। इस समय पूर्ण सेना, नवीन तथा पुरानी, मंच के सम्मुख पक्तिबद्ध खड़ी थी। यह निश्चय हुआ था कि पुष्यमित्र का अंगरक्षक कान्तमणि, महाराज के पधारने पर महाराज का जयघोष करेगा, परन्तु कान्तमणि ने महाराज के मंच पर चढ़ते ही, पुष्यमित्र की जयघोष कर दी।

इस जयघोष के होते ही सैनिकों की दो टुकड़ियाँ मंच को चारों ओर से घेर कर खड़ी हो गईं और उन सुभट्टों को, जो महाराज के साथ आये थे, धकेल कर पीछे हटा दिया गया।

पुष्यमित्र के जयघोष बुलाने का सेना को इतना अभ्यास हो चुका था

कि किसी को भी यह अस्वाभाविक प्रतीत नही हुआ। परन्तु महाराज बृहद्रथ के लिए यह एक नवीन बात थी। उन्होंने घूमकर महाप्रभु से, जो उनके पीछे एक आसन पर बैठे थे, पूछ लिया "यह किसकी जय-जयकार बुलाई जा रही है ?"

इसका उत्तर शंखपाद ने, जो महाप्रभु के साथ-साथ आरम्भ से ही रहा था, दिया, "इस सेना के सेनापति की।"

"कौन है वह ?"

पुष्यमित्र ने गर्दन सीधी कर कहा, "यह पद सेना ने मुझको प्रदान किया है।"

"हम इस सेना का विघटन करने आये हैं।"

"तो कर दीजिए महाराज ! यह सेना आपने एकत्रित नही की। अतएव इस विषय मे यह आपकी आज्ञा नही मानेगी।"

"क्या कहा ? हम आज्ञा देते है कि इस विद्रोही को पकड़ लो।"

परन्तु सुभट्ट, जो महाराज के साथ आये थे, दूर हटाये जा चुके थे। महाराज के साथ केवल महाप्रभु बादरायण, भिक्षु सुनन्द तथा शखपाद था। इनके विरोध मे पचास सैनिक खड्ग नग्न किये पुष्यमित्र की प्रत्येक प्रकार से रक्षा करने के लिए तैयार खड़े थे। अत. किसी को साहस नही हुआ कि पुष्यमित्र की ओर पग बढाये।

इस समय पुष्यमित्र ने सैनिको को सबोधन कर कहना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, "वीर सैनिको ! आज मध्याह्न पूर्व नागरिक सुरक्षा समिति के सदस्य तथा महामात्य, सेनापति विद्रुम आदि राज्य सभा के सदस्य मौर्य वशीय महाराज बृहद्रथ के पास पहुँचे थे और यह सेना भेंट-स्वरूप उनको समर्पित करना चाहते थे। वे लोग चाहते थे कि महाराज इस सेना की सहायता से देश-रक्षा का कार्य सम्पन्न कर सके। परन्तु महाराज ने यह कार्य करना न केवल अस्वीकार किया, प्रत्युत हमारे उन नेताओ को बंदी बना लिया और अब यहाँ सेना का विघटन करने उप-स्थित हुए है।

"इस सेना ने मुझको अपना सेनापति नियुक्त किया है। जब महाराज ने इस भेट का अस्वीकार कर दिया है, तो इनका इस सेना पर कोई अधिकार नही रहा। अतएव उनकी यह आज्ञा कि सेना विघटित की जावे, कुछ अर्थ नही रखती।

"यह सेना एक कार्य-विशेष के लिए एकत्रित हुई है। अतएव उस कार्य को सम्पन्न करने के विषय मे महाराज बृहद्रथ से मै पूछता हूँ कि उनको इसमे क्या आपत्ति है ?"

"हम इस सेना का विघटन चाहते है। इसी मे हम देश का कल्याण समझते है।"

"तो मै सेना का कार्य सम्पन्न करने के लिए आज्ञा देता हूँ कि महाराज तथा उनके साथ आये सभी व्यक्ति बदी बना लिए जायँ।"

मच के नीचे, सुभट्टो मे और नवीन सैनिको मे एक साधारण-सा सघर्ष हुआ, जो कुछ ही क्षणों मे समाप्त हो गया। अधिकाश सुभट्ट मार डाले गये, शेष बदी बना लिये गये।

महाराज ने जब देखा कि कोई भी सहायक वहाँ नहीं है, तो वहाँ से भाग खड़े हुए; परन्तु पुष्यमित्र के अंगरक्षक कान्तमणि ने उन्हें पकड़ लिया। इस पर दोनो ओर से खड्ग निकल आये। महाराज ने तो कभी खड्ग चलाया तक नही था, इस कारण एक ही वार में उनका सिर धड़ से पृथक् हो पुष्यमित्र के चरणो मे गिर पड़ा।

इसी समय कान्तमणि ने पुष्यमित्र का जयघोष कर दिया। यह जयघोष बार-बार किया गया, जिससे बृहद्रथ की हत्या का किसी पर प्रभाव न पड़े। पूर्ण सेना मच पर हो रहे नाटक को देख रही थी। इस नाटक का अर्थ समझाने के लिए पुष्यमित्र ने कहना आरम्भ किया, "आज मौर्य-वश का पाटलीपुत्र पर राज्य समाप्त होता है। मगध की प्रजा अब जागृत हो उठी है और देश को विदेशियो से मुक्त करने का कार्य आरम्भ करती है। हम शीघ्र ही सेना को समर के लिए ले चलेगे और हमको विश्वास है कि मगध के सैनिक मगध के राज्य की सीमा को सिन्धु नदी तक ले

जाकर साँस लेगे ।

"अब प्रभात हो चुका है । रात्रि का अन्धकार समाप्त हुआ । भारत की उज्ज्वल जगमगाती ज्योति पुनः ससार मे जगमग कर उठेगी और इसको देख दुष्ट पापियो की आँखे चुंधिया जायेंगी ।"

जब पुष्यमित्र सैनिकों को संबोधन कर रहा था, महाप्रभु वादरायण, यह देख कि किसी ने उसको पकड़ा नही, मंच से उतर सेना-क्षेत्र से बाहर की ओर चल पडा । उसके साथ भिक्षु सुनन्द भी था । जब दोनों सैनिक-क्षेत्र से बाहर निकले तो पाँच सैनिक उनके साथ-साथ हो लिये । इस पर महाप्रभु ने पूछा, "हमारे साथ किस लिये आ रहे हो ?"

"आपको सुरक्षा के साथ विहार मे पहुँचाने के लिये हम आपके साथ चल रहे है । यह इन भगवे वस्त्रो के मान-स्वरूप है ।"

इस समय पुष्यमित्र ने अपना वक्तव्य समाप्त करने के लिये कहा, "हम को शीघ्र ही नवीन मगध-सम्राट् का चुनाव करना है । अभी तो अस्थायी प्रबन्ध किया जायगा । जब तक देश को आततायियो से रिक्त नही किया जाता, तब तक सेना राज्य को अपने हाथ में रखेगी ।

"सेना राज्य का किस प्रकार संचालन करती है, यह आपको कल तक सूचित कर दिया जायगा ।"

: ५ :

सेनापति विद्रुम, पुष्यमित्र, बीसो उप-सेनापति, चार राज्य-परिषद् के सदस्य और दस नागरिक सुरक्षा समिति के सदस्य राजपुरोहित अरुणदत्त के घर पर एकत्रित हो, विचार करने लगे कि बृहद्रथ की मृत्यु के पश्चात् राज्य का कार्य कैसे चलाया जाय । अभी वार्त्तालाप चल ही रहा था कि महर्षि पतंजलि वहाँ आ पहुंचे ।

महर्षि को इस समय वहाँ पहुँचते देख, पुष्यमित्र तथा पडित अरुणदत्त को यह समझने में विलम्ब नही लगा कि पूर्ण घटना-चक्र को चलाने वाले महर्षि ही है ।

अरुन्धति महर्षि को लिये हुए सभा मे पहुँची तो सब लोग उनका

सत्कार करने के लिए उठ खडे हुए। बीस उप-सेनापतियों में से पन्द्रह तो उनके शिष्य ही थे। नागरिक समिति मे अधिकाश सदस्य उनके सक्रिय सहयोग से परिचित थे।

महर्षि जी ने बैठते हुए कहा, "मुझको आने मे कुछ विलम्ब हो गया है। परन्तु जो कुछ हुआ है, भगवदेच्छा से हुआ है। मनुष्य तो उस इच्छा के सम्मुख आँधी मे तिनके के समान ही है।

"मै समझता हूँ कि एक व्यर्थ के मुकुटधारी, अपने को सम्राट् कहने वाले भीरु, मूर्ख के भार से पृथ्वी के मुक्त होने पर शोच की आवश्यकता नही।

"मगध राज्य की सीमा पर शत्रु एक विशाल सेना लिये खड़ा है। हमको यह बात समझकर राज्य के भीतर का और पश्चात् बाहर का प्रबन्ध करना है। इस कारण कुछ अधिक वाद-विवाद किये बिना हमको अस्थायी रूप मे मगध का शासक नियुक्त कर लेना चाहिये। पश्चात् राज्य के भीतर शान्ति-व्यवस्था कर कौशाम्बी पर आक्रमण कर देना चाहिए।"

इस प्रकार कार्य की रूपरेखा बाँध महर्षि ने मगध का अस्थायी शासक पुष्यमित्र को नियुक्त करने का प्रस्ताव रख दिया। उन्होने कहा कि अभी शासक को सम्राट् की पदवी नही दी जायगी। मेरी इच्छा है कि जब तक देश की एक अगुष्ठ-भर भूमि भी विधर्मियो के अधीन है, तब तक राज्याभिषेक का उत्सव नही मनाना चाहिये।"

इस प्रस्ताव के स्वीकार होते ही मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति की गई। पण्डित अरुणदत्त महामात्य, विद्रुम सेनापति, नीलमणि कोषाध्यक्ष, महाकान्त न्यायाधीश, धनसुखराज व्यापार मन्त्री और सोमभद्र धर्माधीश के साथ मन्त्री-मण्डल पूर्ण कर लिया गया।

इसके अतिरिक्त एक राज्य-सभा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रतिनिधियों से निर्माण की गई। राज्य-सभा को देशहित मे योजनाओ पर विचार करने का अधिकार दे दिया गया।

मध्य रात्रि तक यह सगठन-योजना पर विचार-विनिमय चलता रहा। पश्चात् सब विश्रामार्थ अपने-अपने निवास स्थानों को चले गये। महर्षि

पतजलि का महामात्य अरुणदत्त के गृह पर ही ठहरने का प्रबन्ध कर दिया गया।

महर्षि सोने के लिए आगार मे गये तो अरुन्धति भी उनके आगार मे जा पहुँची। महर्षि ने उसे सम्मुख देख पूछा, "अरुन्धति ! जिस कार्य के लिए तुम यहाँ आई थी, वह कहाँ तक पहुंचा है ?"

"भगवन् ! उसकी सफलता तो आप स्वय देख चुके है। मगध मे नया प्रभात हुआ है। यहाँ एक नवीन राज्य-परिवार की नीव पड गई है और आपकी कृपा से यह कार्य बहुत ही कम रक्तपात के साथ सम्पन्न हुआ है।

"मौर्य-शिरोमणि चन्द्रगुप्त को नन्दो की हत्या करनी पडी थी और सहस्रों राज्य के भक्तो का उस यज्ञ मे होम करना पडा था।

"जब अशोक राज्यगद्दी पर बैठा था, तो अपने पूर्ण परिवार को मृत्यु के घाट उतारकर ही ऐसा कर सका था।

"आज तो भारतवर्ष मे क्रान्ति हुई है न्यूनातिन्यून रक्तपात से। सबसे बडी बात यह है कि क्रान्ति करने वाला अपने लिए कुछ नही चाहता। वह देश तथा जाति के लिए यह सब-कुछ कर रहा है। आपने उसको शासक बनाया है और वह इस समय से ही राज्य कार्य के चक्के मे पिसने लगा है।"

"परन्तु यह सब कुछ हमें विदित नही क्या ? मै तो अपनी पुत्री अरुन्धति के अपने कार्य के विषय मे जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ।"

"ओह ! तो महर्षिजी इस तुच्छ जीव के मनोद्गारों के विषय में जानना चाहते हैं ? भगवन् ! मेरे हृदय के सकल्प तो पहिले से भी अधिक दृढ़ हो चुके है। मैंने अपना सर्वस्व अपने देवता के चरणो मे अर्पित कर दिया है। इस पर भी देवता तो पत्थर के बने ही प्रतीत होते है।"

"तुमने इस विषय मे किसी से बात की है अथवा नही ?"

"माताजी से की थी। परन्तु उन्होने तो इस विषय मे मुझे कभी प्रोत्साहन नही दिया।"

"परन्तु तुम्हारे देवता ने तुम्हारे प्रति कभी अरुचि प्रकट तो नही की ?"

"भगवन् ! यह अरुचि तो मन का विषय है और इतने बडे साम्राज्य के शासक अपने मन की बात बताएँगे थोड़े ही । मैने तो निवेदन किया है न कि वे निर्मम पत्थर की मूर्त्ति के समान ही सदा बने रहते है ।"

"अच्छी बात है । हम अपनी पुत्री की इस विषय मे सहायता के उपाय पर विचार करेगे । अब जाओ, सो रहो ।"

अगले दिन अरुन्धति स्नानादि से निवृत्त हो पूजा पर बैठने लगी थी कि पुष्यमित्र ने पूजा के आगार के बाहर आकर पूछा, "देवी अरुन्धति से एक आवश्यक कार्य के लिये परामर्श लेना है । किस समय अवकाश होगा देवी को ?"

"यदि तुरन्त आवश्यकता न हो तो मै दो घड़ी-भर मे सेवा मे उपस्थित हो सकूंगी ।"

"ठीक है । अल्पाहार से पूर्व देवी के दर्शन करना चाहूँगा ।"

अरुन्धति पूजा-उपासना से अवकाश पा पुष्यमित्र के आगार मे जा पहुँची । पुष्यमित्र अपने पिता से बात कर रहा था । वह कह रहा था, "मगध के महामात्य को सबसे पहिले राज्य के शासक के योग्य भवन का प्रबन्ध करना होगा । कार्य इतना बढ़ जायगा कि इस छोटे से गृह मे कठिनाई और असुविधा होगी ।"

अरुणदत्त का कहना था, "मै राज्य-भवन को जा रहा हूँ । वहाँ जाकर बृहद्रथ की रानियो के विषय में कुछ निश्चय करना चाहता हूँ । यदि वे जीवन-भर विधवा के रूप मे रहना चाहे तो उनके लिये निर्वाह का प्रबन्ध करना होगा । इतना तो होगा ही कि उनको राज्यभवन छोडना होगा । राज्य-प्रासाद मगध के शासक के लिये ही उचित है । उस राज्य-प्रासाद मे एक सौ बीस आगार हैं । उनमें से दस आगारो में तो भवन-रक्षक रहते है । लगभग पचास आगार बौद्ध-उपासना तथा भिक्षुओं के लिए निश्चित है । उनको खाली करवा कर, वहाँ शासक का कार्यालय बना दिया जायगा । बीस आगार राज्य के शासक के लिए है । कुछ अन्य आगार है, जो मत्रीगण तथा महामात्य के प्रयोग मे लाये जायंगे ।"

"ठीक है पिताजी ! यह कार्य आज ही पूर्ण हो जाना चाहिये, जिससे एक-दो दिन मे वहाँ जाकर हम अपने कार्य मे जुट जाएँ।"

महामात्य गया तो अरुन्धति ने पूछ लिया, "आर्य ने स्मरण किया था ?"

"मुझको एक कार्य के लिये योग्य अधिकारी नही मिल रहा। पिछले पचास वर्षो से गुप्तचर विभाग की अवहेलना की जाती रही है। मेरा अनुभव है कि इस विभाग के सुधारे बिना राज्य-कार्य सुचारु रूप से चल नही सकता। अपने इस छोटे-से सघर्ष मे, जो हमने राज्य को दुर्बल हाथों से निकालने मे किया है, गुप्तचर विभाग का कार्य कितना सहायक हुआ है, वह मै ही जानता हूँ।

"देवी ! मै अपने पिछले अनुभव से यह समझा हूँ कि तुम इस कार्य मे दक्ष हो। यदि तुम मगध के शासक की प्रार्थना स्वीकार करो तो मै तुम्हे गुप्तचर विभाग की मुख्य अधिष्ठात्री नियुक्त करना चाहता हूँ। मैने इस पद पर कार्य करने वाले का वेतन पाँच सौ स्वर्ण प्रतिमास निश्चित किया है और पूर्ण कार्य के लिए एक लक्ष स्वर्ण प्रतिवर्ष व्यय करना स्वीकार किया है।

"मेरा देवी से निवेदन है कि वे राज्य के इस अत्यावश्यक विभाग को अपने अधीन ले ले।"

अरुन्धति का स्पष्ट उत्तर था, "मै यह कार्य नही करूँगी।"

"क्यो ?"

"मै राज्य की अथवा किसी की भी सेवा नही कर सकती। जो कुछ मैने अब तक किया है, वह मन की एक भावना के अधीन किया है। अब तो राज्य की सेवा और वेतन का प्रश्न आ गया है। इस कारण आर्य को अपने इस कार्य के लिए अधिकारी कही अन्यत्र ढूँढना होगा।"

पुष्यमित्र अरुन्धति के इस कथन पर उसका मुख देखता रह गया। अरुन्धति भूमि की ओर देखती हुई अपने पाँव के अँगूठे को मरोड रही थी। पुष्यमित्र समझ नही सका कि अरुन्धति ने किस भाव में यह सब कुछ कहा

है। इस समय अरुन्धति ने पुन. कहा, "मै किसी की भी सेवा करना स्वीकार नही करूँगी।"

इतना कह वह उठ खडी हुई। वह कुछ कहना चाहती थी और इसके लिए अपने मन को नियत्रण मे रखना चाहती थी। पुष्यमित्र ने उसके मुख पर देखा तो उसको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि अरुन्धति की आँखे डबडबा रही है। अरुन्धति यह प्रयत्न कर रही थी कि अपने आँसुओं को रोक कर मन के भाव उचित शब्दो मे प्रकट कर दे, परन्तु अपने हृदय की आर्द्रता पुष्यमित्र पर प्रकट होती देख, वह चुपचाप उस आगार से निकल अपने आगार मे चली गई।

पुष्यमित्र कुछ भी समझ नही सका। वह मन मे विचार कर रहा था कि यदि सेवा-कार्य नही करना तो न सही, परन्तु इस रोने का क्या अर्थ है ? पश्चात् यह विचार कर कि स्त्री हृदय के रहस्यो को वह नही जानता, वह उठ, अल्पाहार के लिए भोजनालय मे चला गया।

वहाँ महर्षि तथा उसके पिताजी पहले से ही उपस्थित थे। जब पुष्यमित्र भी वहाँ जाकर बैठा तो माँ ने तीनो के लिए अल्पाहार लगा दिया।

प्राय· अरुन्धति भी अल्पाहार के समय इनका साथ दिया करती थी, परन्तु आज वह दिखाई नही दी। इस कारण पुष्यमित्र ने माँ से पूछा, "माँ! देवी अरुन्धति कहाँ है ?"

"वह अपने आगार मे द्वार भीतर से बद कर बैठी है। मैने बुलाया तो उसने कह दिया कि उसको खाने मे रुचि नही है।"

पुष्यमित्र ने कहा, "माँ ! मैने उसको गुप्तचर विभाग की मुख्य अधिष्ठात्री बनाने का प्रस्ताव रखा था। इस पर वह रुष्ट होकर चली गई है। कदाचित् अभी भी रुष्ट है।"

महर्षि पतजलि पुष्यमित्र के इस कथन पर हँस पड़े। इससे सब उनका मुख देखने लगे। उन्होने हँसकर कहा, "तुमने उसको क्या वेतन देने के लिए कहा था ?"

"पाँच सौ स्वर्ण प्रतिमास। परन्तु यह तो बढ़ाया भी जा सकता है।"

महर्षि अब और भी अधिक हँसने लगे। पुष्यमित्र इसका अर्थ नही समझा। उसने आदरयुक्त स्वर मे कहा, "भगवन् ! अभी तक जो सेवा उसने हमारी योजना मे की है, वह अमूल्य है। उस समय हमारे पास किसी को भी वेतन देने के लिए धन नही था। सब लोग अवैतनिक कार्य कर रहे थे। अब कार्य राज्य करायेगा और सब को वेतन दिया जायगा।"

"पुष्यमित्र ! राज्य हो अथवा राजा, कुछ सेवाएँ ऐसी होती है, जिनका मूल्याकन अति कठिन है। इस लडकी की सेवाएँ भी इसी प्रकार किसी प्रकार के भी मूल्य से ऊपर है। यही कारण है कि जब तुमने उनका मूल्याकन किया तो वह रो पडी।"

"तो भगवन् ! आप ही बता दीजिए कि उसकी सेवाओ का मूल्याकन किस प्रकार किया जाय ?"

"मै कैसे बता सकता हूँ ? मैं समझता हूँ कि जब किसी वस्तु का मूल्याकन न किया जा सके तो उसे अमूल्य कहकर, कह वस्तु नि.शुल्क लेने का यत्न किया जाना चाहिये।"

"अर्थात् उसको यह कार्य अवैतनिक करने के लिए कहूँ ?"

"देखो पुष्यमित्र ! जब तुम अवैतनिक शब्द का प्रयोग करते हो तो उसका अर्थ होता है कि कार्य तो वेतन के योग्य है, परन्तु या तो राज्य वेतन दे नही सकता, अथवा लेने वाले को लेने की आवश्यकता नही, इसी कारण वह अवैतनिक कार्य करता है। इस प्रकार तो वह नही मानेगी। वह अति भावुक लड़की है। उसकी भावना को सन्तोष दोगे तो वह यह क्या, कोई नीच-से-नीच काम भी कहोगे तो करने को तैयार हो जायगी।"

: ६ :

यह पुष्यमित्र के लिये एक और पहेली थी। वह अब यह जानना चाहता था कि उसकी भावना क्या है और उसको किस प्रकार सन्तोष दिया जा सकता है।

अल्पाहार समाप्त हुआ और पुष्यमित्र बैठक मे चला गया। यही उसने अपना कार्यालय बना लिया था। एक-एक मंत्री के कार्य पर उस मत्री

से विचार-विनिमय हो रहा था। पूर्ण देश के कार्य की व्यवस्था बिगड़ी हुई थी और सब कार्यों को नये सिरे से सगठित करना था। अभी देश के व्यवसाय के विषय मे बात हुई थी तो पश्चात् सेना के विषय मे विचार होने लगा। सेनापति गया तो गृह प्रबन्ध का विषय आ उपस्थित हुआ। इस प्रकार कार्य करते-करते मध्याह्नोत्तर हो गया। पुष्यमित्र को भूख का भी ध्यान नही रहा। वह भूल गया था कि भोजन के लिए उसकी प्रतीक्षा की जा रही है।

धर्माध्यक्ष बौद्ध-विहारों के विषय मे परामर्श कर गया ही था कि बैठक के द्वार पर अरुन्धति आ खडी हुई। उसने द्वार पर से ही पुकारा, "आर्य ! भोजन का समय हो गया है।"

पुष्यमित्र को हँसी सूझी। उसने अन्यमनस्क भाव मे कह दिया, "खाने के लिए रुचि नही है।"

अरुन्धति अपने ही शब्द दुहराये जाते सुन गभीर हो बोली, "आर्य ! माँ खिलाएँगी तो भूख लग आयगी।"

"तो देवी की माँ को भी बुलाना पडेगा।"

"देवी की रुचि तो लौट आई है।"

"सत्य ? तब तो मैं भी खाऊँगा।"

दोनो हँसते हुए भोजनालय मे जा पहुँचे। वहाँ जाकर उनको पता चला कि पिताजी ने सदेश भेजा है कि वे भोजन पर नही आयँगे। पुष्यमित्र ने माँ से पूछ लिया, "तो क्या उनको भी अरुचि हो गई है ?"

'कुछ ऐसा ही प्रतीत हो रहा है।" माँ ने कहा।

"नही, यह बात नहीं माताजी !" अरुन्धति ने कहा, "मौर्य बृहद्रथ का अन्त्येष्टि सस्कार कर तीनों रानियाँ श्मशान-भूमि से अभी-अभी लौटी है और मगध शासक की आज्ञा है कि राज्यभवन शीघ्रातिशीघ्र रिक्त हो जाना चाहिये। अतः पिताजी इस प्रबन्ध के लिए वहाँ ठहरे हुए हैं।"

"ओह ! तो प्रातः देवी मेरे कारण भोजन में अरुचि अनुभव कर रही थी और अब पिता भी मेरे कारण यह अनुभव कर रहे है।"

"बेटा !" भगवती ने पूछ लिया, "इतनी उतावली किसलिए हो रही है ?"

"माँ ! शत्रु को यहाँ के विप्लव का समाचार पहुंचने से पूर्व, यहाँ का और सीमा का प्रबन्ध सुदृढ हो जाना चाहिये, अन्यथा शत्रु कभी भी आक्रमण कर सकता है।"

अभी भोजन परसा जा रहा था कि अरुन्धति ने बताया, "समाचार तो भेज दिया गया था, परन्तु मार्ग मे ही रोक लिया गया है।"

"किसने भेजा था ?"

"जो शत्रु से पहले से पत्र-व्यवहार कर रहा है। मेरा अभिप्राय महाप्रभु बादरायण से है। पत्र जो उन्होने भेजा था, इस समय सेनापति के पास पहुंच गया है और भोजनोपरान्त शासक के पास पहुँच जायगा।"

"क्या लिखा होगा उसने ?"

"यह तो पता नही। पत्र तो कल जाते ही भेज दिया गया था, परन्तु मार्ग मे एक दुर्घटना हो जाने से दूत अश्व पर से गिर पड़ा। अश्व दूत को गिरा कर वन मे भाग गया और दूत प्रात काल तक मार्ग के तट पर पड़ा रहा। प्रातः सेनापति के सैनिक वहाँ पहुंच गये और उस दूत को महाप्रभु के पास जाने से पूर्व ही बदी बना, उससे पत्र छीन, सेनापति के पास ले आये।"

"देवी ! ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने मेरी प्रातः वाली प्रार्थना स्वीकार कर ली है।"

"जी नही ! मैने कदापि स्वीकार नही की।"

भोजन चल ही रहा था कि पडित अरुणदत्त आ पहुँचे। उसने इनको भोजन लेते देख कहा, "आज इतनी देरी तक भोजन हो रहा है ?"

अरुन्धति ने मुस्कराते हुए कहा, "पिता-पुत्र दोनों कार्य मे भोजन करना भूल गये थे। वास्तव मे कार्य करने का अभ्यास न होने से ही ऐसा होता है। एक बार अभ्यास हो जाने पर सब कार्य नियमपूर्वक और समय पर होने लगेगा।"

अरुणदत्त हँसता हुआ मुख-हाथ धोने स्नानागार मे चला गया। पुष्यमित्र ने पूछ लिया, "ऐसा प्रतीत होता है कि देवी अरुन्धति को राज्य-कार्य का अभ्यास है। तभी तो कार्य सुचारु रूप से करती हुई भी भोजन नही भूलती।"

"मुझको तो कुछ भी कार्य करने के लिए नही है। इसी कारण समय पर भूख लगती है और समय पर ही खाने के लिए आ पहुंचती हूँ।"

अरुणदत्त आया तो बात समाप्त हो गई। उसने आते ही कहा, "वृह-द्रथ की तीनो रानियाँ पद्मा-विहार मे चली गई है। उनका विचार श्राविका बन जाने का है। राज्यभवन कल तक रिक्त करने की आज्ञा दे आया हूँ और उसमे आवश्यक परिवर्तन करने के लिए बता आया हूँ। आशा है कि भवन एक सप्ताह मे शासक के रहने योग्य हो जायगा।"

"और मै कहाँ रहूँगी ?" अरुन्धति ने पूछ लिया।

उत्तर भगवती ने दिया, "तुम तो मेरी अभ्यागत हो। जहाँ मै रहूँगी, वहाँ ही तुमको रहना होगा।"

"मुझको भय लग रहा है कि मेरी स्थिति भूली जा रही है।"

"कौन भूल रहा है तुमको ?"

"आज प्रातः ही आर्य पुष्यमित्र कह रहे थे कि मुझको राज्य की सेवा स्वीकार कर लेनी चाहिये। मेरा वेतन भी बता रहे थे। मै समझी थी कि मेरा बोझा सहने की शक्ति नही रही।"

"नही-नही अरुन्धति ! ऐसी कोई बात नही थी। वह तो तुम्हारी इच्छा पर ही निर्भर है।"

भोजनोपरान्त पुष्यमित्र पुनः बैठक मे जा पहुँचा। वहाँ सेनापति तथा न्यायाधीश बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पुष्यमित्र विलम्ब के लिए उनसे क्षमा माँगने लगा।

सेनापति ने कहा, "यह देखिये, यह भिक्षुओ का गुरु क्या कर रहा है ?" इतना कह उसने पुष्यमित्र के सम्मुख एक पत्र रख दिया।

पत्र में लिखा था, "यवनाधिपति डेमिट्रियस निकोलाई की सेवा मे

सादर प्रणाम ।

"इस देश मे आज सायकाल विप्लव घटित हो गया है । महाराज बृहद्रथ की हत्या हो गई है और एक अल्पायु युवक स्वयं शासक बन बैठा है ।

"इस समय मै आपसे पुनः निवेदन करना चाहता हूँ कि देश मे एक बहुत भारी सख्या मे बौद्ध रहते है । ये सब एक सगठन मे बँधे हुए एक ही विचार के पोषक है । इस सगठन को बौद्ध-सघ कहा जाता है । प्रतिदिन प्रात काल और साय ये बौद्ध-भिक्षु तथा उपासक 'सघ शरणं गच्छामि' मत्र का जाप करते है ।

"अतएव बौद्ध-सघ जिसकी सहायता करना चाहे, वह मगध का सम्राट बन जायगा । मै बौद्ध-सघ का गुरु हूँ । बताइये, आप बौद्ध-सघ की सहायता करेगे अथवा नही ? सहायता के प्रतिकार मे बौद्ध-सघ से आप क्या चाहेगे, अपनी इच्छा से अवगत करें ।"

पुष्यमित्र यह पत्र पढकर अवाक् रह गया । इस पर न्यायाधीश ने कहा, "यह पत्र महाप्रभु के हाथ का लिखा हुआ नही है । न ही नीचे हस्ताक्षर उसके अपने है । अतएव न्याय की दृष्टि मे उसको बदी बनाकर दण्ड नही दिया जा सकता ।"

"मै जानता हूँ कि यह पत्र किसके हाथ का लिखा हुआ है । उस विहार मे एक भिक्षु निर्मल के नाम से है । वह ही महाप्रभु के स्थान पर हस्ताक्षर करता है ।"

"तब तो मेरी सम्मति है कि महामात्य महाप्रभु को यहाँ बुला भेजे और मै सैनिक भेज भिक्षु निर्मल को बुलवा लेता हूँ । निर्मल को हम बदी बना लेगे तो सब बात का पता चल जायगा ।"

"नही, मेरी सम्मति यह है कि जब महाप्रभु महामात्य के पास आयें तो आप निर्मल को बुलाकर महाप्रभु के नाम एक पत्र किसी उचित व्यक्ति के नाम लिखवाइये और महाप्रभु के हस्ताक्षर करवा लीजिये। पीछे दोनों हस्ताक्षर परस्पर मिला कर देख लेगें ।"

इस प्रकार बात निश्चित ही गई ।

अरुणदत्त ने महाप्रभु को बुलाया तो उसने आने से इन्कार कर दिया। जब महाप्रभु नही आया तो भिक्षु निर्मल को बुलाया नही जा सका । महाप्रभु ने महामात्य के निमत्रण पर कहला भेजा कि वह हत्यारो के साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नही रखना चाहता, न ही उनकी आज्ञा मानना चाहता है ।

रात्रि पुन· सभी मत्री एकत्रित हुए और महाप्रभु के विषय मे चर्चा चल पडी । सेनापति ने बताया, "आज प्रात·काल मै शासक से मिलकर जा रहा था कि मेरे भवन के द्वार पर एक लडकी ने मेरा मार्ग रोक कर कहा, 'शासक महोदय चाहते है कि इसी समय पाँच अश्वारोही कौशाम्बी के मार्ग पर द्रुतगति से भेजे जायँ । पाटलिपुत्र से दस कोस के अन्तर पर एक सवार अपने अश्व से गिर कर घायल पड़ा हुआ है । उसको बदी बना लिया जाय। उसके पास महाप्रभु का लिखा एक पत्र है, जिसको अपने अधिकार मे कर शासक के पास उपस्थित किया जाय ।"

इस पर पुष्यमित्र ने सेनापति से पूछ लिया, "वह लडकी कौन थी ? मैने तो कोई ऐसी आज्ञा नही भेजी । न ही मेरे ज्ञान मे कोई ऐसा भिक्षु था, जो अश्व से गिर कर कौशाम्बी के मार्ग पर पडा हुआ था ।"

"परन्तु श्रीमान् ! एक भिक्षु तो वहाँ था और उसके पास से वह पत्र भी प्राप्त हुआ था। वह आदेश लाने वाली लडकी देवी अरुन्धति थी ।"

"ओह ! मैंने देवी को अपने गुप्तचर-विभाग के अध्यक्ष-पद के लिए नियुक्त करना चाहा था, परन्तु उसने यह कह कि वह किसी की सेवा स्वीकार नही कर सकती, अस्वीकार कर दिया था ।"

"ओह ! तो उसको बिना सेवा स्वीकार किये, यह कार्य करने के लिए कहा जाय ।"

"परन्तु वह मानेगी क्या ?"

"आप यत्न तो करिये । मुझे विश्वास है कि जब आप उससे आत्मीयता प्रकट कर सहयोग माँगेगे, तो वह इन्कार नही करेगी ।"

: ७ :

पुष्यमित्र इसका अर्थ समझने मे लीन था। वह विचार कर रहा था कि लडकी सुन्दर, सुशील, चतुर तथा मेधावी है और अच्छी पत्नी बन सकती है, परन्तु उसको तो अभी विवाह नही करना। वह मन मे निश्चय किये हुए था कि जब तक देश का उद्धार नही हो जाता, तब तक विवाह का नाम लेना भी उसके लिए पाप है।

बचपन के काल से ही वह देश की हीन अवस्था को देख, दु:ख अनुभव करता आ रहा था। वह अपने मन मे एक सकल्प बनाये हुए था कि देश तथा धर्म को प्राचीन गौरव के स्थान पर पुन. लाना है। ज्यो-ज्यों उसकी आयु बढ़ती गयी और वह विद्याध्ययन कर तत्कालीन अवस्था मे कारण और उसकी चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करता गया, वह अपने सकल्प पर दृढ होता गया।

अब वह बाईस वर्ष का युवक था और अभी तक उसके मन में विवाह करने का विचार तक नही आया था। आज पहली बार न्यायाधीश ने अरुन्धति से आत्मीयता का-सा व्यवहार करने की सम्मति दी थी। बाईस वर्ष का युवक अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की युवती से कैसी आत्मीयता उत्पन्न कर सकता है ?

इन्ही विचारो मे वह रात के भोजन के लिए भोजनालय मे पहुंचा तो सब प्राणी उपस्थित थे। महर्षिजी प्रात:काल तो उनसे पहले ही भोजन कर चुके थे और रात्रि का भोजन वे करते नही थे। रात केवल दूध लेते थे और वह ले चुके थे।

प्राय: भोजन के समय अरुन्धति भी साथ बैठती थी। भगवती का कहना था कि वह घर मे अभ्यागत है और जब तक वह भोजन नही करेगी, कोई नही करेगा। इस कारण उसको साथ बैठने के लिए विवश कर दिया जाता था। भगवती तो, जब तक अरुणदत्त भोजन नही कर लेता था, भोजन नही करती थी। आज अरुन्धति भी भोजन के लिए नही बैठी। जब पुष्यमित्र तथा अरुणदत्त के लिए आसन लगा तो उसके लिए नही

लगाया गया। इस पर पुष्यमित्र ने माँ की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि मे देखा। माँ ने कहा, "तुम लोग खाओ, वह मेरे साथ खायेगी।"

"यह आज क्या हुआ है ?" पुष्यमित्र का प्रश्न था।

अरुणदत्त खिलखिलाकर हँस पडा। उसने कहा, "मै इस बात की चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहा था।"

"पिताजी ! किस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे आप ?"

"तुम्हारे मगधाधिपति होने की।"

"सत्य ? परन्तु मुझको तो इस पदवी के पाने की अभी भी न तो आशा है और न अभिलाषा।"

"अभिलाषा की बात तो मै नही जानता, परन्तु आशा ही नही, अब तो विश्वास हो गया है कि हमारा शुग परिवार भी भारत के सम्राटो की सूची मे लिखा जायगा और यह सब तुम्हारे प्रयास से ही हुआ है।"

"पिताजी ! एक ब्राह्मण परिवार के लिए यह पदवी क्या शोभनीय है ?"

"ब्राह्मण-पद निस्सन्देह सम्राट्-पद से ऊँचा है, परन्तु जब घर मे किसी घटिया वस्तु का अभाव हो जाय तो बढिया वस्तु का प्रयोग उसके स्थान पर किया जा सकता है। देश मे शौर्यवान क्षत्रियो का अभाव हो गया था। अतः एक ब्राह्मण को क्षत्रिय-वर्ण का कार्य करना पड़ा है।

"मित्र ! तुमने एक वर्ष मे ही अपने क्षत्रिय मानस पुत्र इतनी सख्या मे निर्माण किये है कि देश मे जीवन तथा शौर्य का सागर ठाठे मारने लगा है। अब इस सागर के सामने दुष्ट और दुराचारी टिक नही सकते। सब नष्ट-भ्रष्ट होगे।"

"पिताजी ! वात्सल्यता के प्रभाव मे आप इस दुस्तर कार्य को सरल समझ रहे है। वास्तव में यदि यह कार्य जीवन-भर मे भी समाप्त हो जाय तो भी मै अपने-आपको धन्य मानूंगा।"

"कार्य को पूर्ण करने के लिए एक जीवन लगेगा अथवा कई, विचारणीय नही है। मै तो यह कह रहा हूँ कि तुम्हारा मगध का सम्राट् बनना

इस कार्यसिद्धि मे एक सोपान है ।"

"मेरे लिए कार्यसिद्धि ही जीवन का लक्ष्य है । मै स्वप्न देखता हूँ कि पूर्ण देश मे, काश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा द्वारिका से कामरूप तक देश की पूर्ण प्रजा और राजे-महाराजे एक सूत्र मे बँधे हुए, एक धर्म को मानने वाले, ससार मे एक दृढ़ चट्टान की भाँति खड़े दिखाई दें। मैं देखना चाहता हूँ कि आसुरी शक्तियाँ उस पर, सागर की लहरो के समान टकरा कर छितर जायँ । ऐसा साम्राज्य यहाँ पर बने, जो सहस्रों वर्ष तक चले और जिसकी छत्रछाया मे देश के साधु लोग निर्भय होकर जीवन व्यतीत करे ।"

"एवमस्तु !" पिता ने आशीर्वाद के भाव मे कहा, "परन्तु पुष्यमित्र, इतने दुस्तर कार्य को चलाने के लिए कोई जीवन-सगिनी भी तो चाहिये और ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी माताजी ने तुम्हारे लिये एक निर्वाचित कर ली है ।"

पुष्यमित्र को अरुन्धति का उनके साथ भोजन पर न बैठने का अर्थ समझ आया तो हाथ से उठाया ग्रास हाथ मे ही पकडा रह गया । उसका मुख खुला था, परन्तु वह माँ की ओर देखने लगा था । अरुन्धति सामने बैठी, भूमि की ओर देख रही थी ।

जब पुष्यमित्र ने अपने चचल मन पर सन्तुलन पाया तो माँ से पूछा, "माँ ! यह सत्य है क्या ?"

"हाँ बेटा ! अरुन्धति प्रत्येक प्रकार से मगध-सम्राज्ञी बनने के योग्य है । वह बृहद्रथ की रानियो की भाँति अपने अयोग्य सम्बन्धियो को राज्य पर न लाद, सम्राट् के राज्यभार को बाँटकर अपने कन्धों पर उठाने की योग्यता रखती है । बेटा ! मानव त्रुटियो को छोडकर अरुन्धति बहुत ही अच्छी लड़की है और मैंने इसको इस घर की स्वामिन् का पद दे दिया है ।"

"माँ ! जो मन में आये करो, परन्तु मेरा कार्य अभी आरम्भ ही हुआ है । मैं जब तक इसको पूर्ण नही कर लेता, तब तक न तो सम्राट् बनूंगा और न ही किसी को सम्राज्ञी बनाऊँगा ।"

"ठीक है।" अरुणदत्त ने कह दिया, "हमको अपने गुप्तचर-विभाग के लिए अधिष्ठात्री की आवश्यकता है और हम इस पद पर अरुन्धति की नियुक्ति करते है।"

"परन्तु पिताजी ! वह तो इसको अस्वीकार कर चुकी है।"

"परन्तु गुप्तचर-विभाग तो महामात्य के अधीन है। बिना उसकी सहमति के उसकी नियुक्ति हो कैसे सकती थी ?"

पुष्यमित्र यह सुन विस्मय मे अरुन्धति का मुख देखता रह गया। वह अभी भी आँखे मूंदे हुए बैठी थी।

पुष्यमित्र अब निश्चिन्त हो भोजन करने लगा। एकाएक उसके मन मे एक बात आई। उसने पूछा, "पिताजी ! गुप्तचर-विभाग की अधिष्ठात्री के लिए वेतन कितना निश्चित हुआ है ?"

"वेतन जी भर कर दिया है। इस पर भी मै समझता हूँ कि इतना हम दे सकेंगे। मै इस कार्य के प्रतिकार मे इसको जीवन-भर के लिए अपना एकलौता पुत्र सौप रहा हूँ।"

इस पर भगवती हंस पड़ी।

: ८ :

बिगड़े राज्य को सुदृढ आधारो पर खड़ा करना एक अति कठिन समस्या थी। विशेष रूप मे जब प्रजा का एक भाग उस राज्य के सुदृढ़ होने को ही गलत समझे। परन्तु पुष्यमित्र लौह-पुरुष था। उसकी पूर्ण राजनीति दृढ़ आधारो पर बनी थी। वह उन आधारभूत सिद्धान्तो को पकड़ कर दृढ़ता से कार्यसिद्धि मे लग गया।

ज्यों ही अरुन्धति ने गुप्तचर-विभाग को अपने अधिकार में लिया और इसमे महर्षि पतजलि ने अपने आश्रम के सब योग्य शिष्यों की सेवा दे दी, तो प्रजा के विरोधी अशो का धीरे-धीरे उन्मूलन होने लगा।

पहले ही दिन अरुन्धति ने अपने गुप्तचरों का एक जाल पद्मा-विहार, जिसमें महाप्रभु बादरायण छिपा हुआ था, बिछा दिया। सैनिकों ने तो विहार में आने-जाने वालों पर निरीक्षण रखना आरम्भ कर दिया, परन्तु

भीतर क्या चर्चा होती थी और विहार के अधिकारी अब क्या करना चाहते थे, यह जानना गुप्तचर-विभाग का काम था।

गुप्तचरो के दो विभाग कर दिये गए थे। एक तुरन्त विदेशो मे जाकर वहाँ के समाचार भेजने लग गया था और दूसरा देश-भर मे फैल गया था और स्थान-स्थान के समाचारो से सूचित कर रहा था।

ये सब समाचार पाटलिपुत्र मे, द्रुतगामी अश्वो पर, विभाग के कर्मचारी जाते थे। इन समाचारो को पृथक्-पृथक् कर विषयानुसार उचित अधिकारियों के पास भेज दिया जाता था। वे इनका अर्थ निकाल, विषय से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्रालय मे भेज देते थे। मन्त्री उन समाचारों को अथवा उनसे निकले निष्कर्षो को मगध-शासक के पास ले जाते थे। तत्पश्चात् उन पर मन्त्रिमडल विचार करता था और राज्य की नीति निर्धारित की जाती थी।

महामात्य मंत्रिमंडल मे, कई दिन के समाचारो के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष को सुना रहा था। उसने कहा, "यह सूचना मिली है कि षद्मा विहार मे श्रावको और उपासको मे मतभेद उत्पन्न हो गया है। उपासक यह कहने लगे है कि देश मे व्यापार चमकने लगा है, व्यवसाय वढने लगा है और कारीगरो को उचित मूल्य मिलने लगा है। ऐसी अवस्था मे राज्य का विरोध तो अपने ही पाँव पर कुल्हाडा चलाने के तुल्य होगा।

"इस विचार के विपरीत श्रावक-वर्ग कहता है कि भगवान् तथागत ने मानव-कल्याण का जो मार्ग बताया है, वह छोड़ देने से तो मनुष्य पुनः अज्ञान के गर्त मे जा गिरेगा। निर्वाण का मार्ग अति दुस्तर है। इस मार्ग को अपनाने के लिए भारी त्याग और तपस्या की आवश्यकता है। इस प्रारम्भिक कठिनाई को देखकर विचलित होना तो कुछ श्रेष्ठ बात नही।

"श्रावको का यह भी कहना है कि सबको पचशील का मार्ग अपनाना चाहिए। सबके साथ सुहृदयता, सहिष्णुता और सहचारिता का व्यवहार वनाये रखना चाहिए। युद्ध, सेना, शस्त्रास्त्र इस मार्ग मे वाधा खड़ी करेगे। अतः इनका त्याग ही भगवान से इगित मार्ग दिखाएगा।

"दुष्ट और असुर शब्दो के प्रयोग से ब्राह्मण मिथ्या भ्रम उत्पन्न करते रहते है। कौन श्रेष्ठ है, कौन दुष्ट, कहना कठिन है। भगवान तथागत का कथन है कि इसका निर्णय तुम मत करो। इसको प्रकृति अर्थात् भगवान की आत्मा के लिए छोड दो। वह उनको सन्मार्ग दिखाएगा।

"इस पर भी उपासको को इससे समाधान नही हो रहा। एक उपासक ने यह आशका प्रकट की थी कि जब दुष्ट की दुष्टता का निर्णय हम नही कर सकते तो यह हम कैसे कह सकते है कि यह ब्राह्मण-राज्य दुष्टों का राज्य है। हमको सबके साथ सहिष्णुता तथा सदाचारिता का व्यवहार अपनाना है। अत: हमको वर्तमान राज्य के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये। उसके भले-बुरे का निर्णय भगवान तथागत की आत्मा के लिए छोड दे। वे ही इनके दोषों को दूर करेगे।"

इस पर एक अन्य उपासक ने कहा कि जिसने हमारी बहू-बेटियों से बलात्कार किया है, जिसने हमारा धन-सम्पद् लूटा है, उसकी दुष्टता को तो क्षमा कर, उससे मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना आरम्भ कर दें और जो हमको धन-सम्पदा, सुख-सुविधा तथा मानयुक्त जीवन चलाने का अवसर दे रहा है, उसका हम विरोध करे और उसके विनाश के लिए षड्यत्र करे ?

"इस प्रकार विहार मे श्रावको का प्रभाव कम होता जा रहा है और उपासकों की सख्या मे भारी कमी हुई है।"

इस समाचार को सुन पुष्यमित्र ने कहा, "यह कार्य हमारे शिक्षा-विभाग का है। महर्षिजी ने इस कार्य को अपने हाथ मे ले लिया है और उनके शिष्य-मडल का सन्यासी-वर्ग नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम घूमकर भगवद्गीता का उपदेश दे रहा है। उससे दी गई युक्तियों का बौद्धो के पास कोई उत्तर नही।

"अब स्थिति ऐसी आ गई है कि हम यह घोषणा कर दे कि राज्य की ओर से किसी भी सम्प्रदाय का विरोध अथवा सहायता नही होगी। इस राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को स्वतत्रता है कि वह अपने सम्प्रदाय की वृद्धि और उसमे सुधार का यत्न करे। राज्य इसमें आपत्ति नही उठायेगा।

साथ ही जो भी व्यक्ति जन-साधारण की शिक्षा पर जितना व्यय करेगा, उतने धन पर राज्य उससे कर नही लेगा ।"

जब मत्रिमडल ने इस घोषणा की स्वीकृति दी तो इसके राज्य-भर मे प्रसार का प्रबन्ध भी कर दिया गया ।

अब पुष्यमित्र ने सेनापति से पूछ लिया, "समर की तैयारी मे क्या त्रुटि रह गई है ?"

"श्रीमान् ! जहाँ तक सेना का सम्बन्ध है, हमने इसको अपने राज्य के तीन स्थानो पर एकत्रित कर लिया है । ये तीनो स्थान कौशाम्बी से तीन दिन की पैदल यात्रा की दूरी पर है । अर्थात् यहाँ से आज्ञा पाते ही चौथे-दिन हम कौशाम्बी पर अधिकार कर, इसको यवनो से रिक्त कर देगे ।"

इस पर महामात्य ने बताया, "जहाँ तक देश की आन्तरिक स्थिति का सम्बन्ध है, श्रावको का विरोध निस्तेज हो रहा है । पडौसी राज्यो मे आन्ध्र. विदर्भ, साकेत तथा मल्ल से सन्धि की बातचीत हो रही है । इनमे केवल साकेत विपरीत दिखाई देता है । यह समाचार मिला है कि वह डेमिट्रियस से सन्धि करने का यत्न कर रहा है ।"

पुष्यमित्र ने पूछा, "क्या यह ठीक नही कि साकेत तथा डेमिट्रियस की सन्धि होने से पूर्व ही आक्रमण कर दिया जावे ?"

महामात्य का कहना था, "जब तक एक पराजय विदेशियो को नही दी जाती, तब तक देशीय राज्यो से सुदृढ़ सधि सभव नही । अभी तक कोई भी देशीय राज्य हमारे इस दावे को कि हममे यवनो को परास्त करने की सामर्थ्य है, स्वीकार नही करता । वे समझते है कि हमारा राज्य नवीन है और हमारा राज्याधिकारी ब्राह्मण है । इस कारण हम लोग बाते बहुत बनाते हैं, परन्तु युद्ध मे प्रवीणता नही रख सकते । अतएव हमारा सहयोग करना तो दूर, ये राज्य हमारे साथ मैत्री करने मे भी सकोच कर रहे है ।

"डेमिट्रियस ने हमको अपना शत्रु घोषित कर दिया है और अन्य भारतीय राज्य डेमिट्रियस के शत्रु से तब तक सधि नही करेगे, जब तक उनको इस बात का विश्वास नही हो जाता कि हम डेमिट्रियस से प्रबल है । इस

कारण यह अत्यावश्यक है कि हम एक बार तो डेमिट्रियस से मोर्चा गाड़, उसको कौशाम्बी से बाहर निकाल दे।"

सेनापति का कहना था, "श्रीमान् को यह बता देना चाहता हूँ कि साकेत एक समय मगध राज्य के अन्तर्गत था। गृहवर्मन् के काल मे इसने स्वतंत्रता घोषित की थी। उस समय इसके स्वतत्र होने मे कारण यह था कि इस राज्य को मगध साम्राज्य मे बौद्धो का हस्तक्षेप पसन्द नही था। बौद्ध साकेत मे अपने विहार बनाने लगे थे और साकेत की जनता यह पसन्द नही करती थी। अतः उस राज्य ने बौद्ध श्रावकों से बचने का सहज उपाय यह समझा कि मगध से पृथक् हो जाए।

"परन्तु अब परिस्थिति भिन्न है। साकेत को यह विश्वास ही नही आता कि मगध कभी बौद्ध के प्रभाव से स्वतत्र हो सकता है। साथ ही वह समझता है कि विदेशियो को हम कभी भी देश से बाहर निकाल नही सकेंगे। अतएव वह पहले डेमिट्रियस से सधि कर हमारा विरोध करना चाहता है। हमको परास्त कर वह उससे निपटने का विचार करेगा।

"अभी तक डेमिट्रियस से सन्धि मे मतभेद इस बात पर है कि मगध का बँटवारा साकेत और डेमिट्रियस मे कैसे हो?"

इस पर यह निश्चय हो गया कि कौशाम्बी को शीघ्रातिशीघ्र यवनो से रिक्त करवाना चाहिये।

: ६ :

इस पर भी आक्रमण की आज्ञा जाने से पूर्व ही स्थिति बदल गई। मत्रिमडल की बैठक समाप्त हुई और मंत्रीगण अपने-अपने घरो को चले गये थे। युद्ध की आज्ञा अगले दिन दी जाने वाली थी।

पुष्यमित्र, महामात्य और सेनापति राज्यभवन में रहते थे। जहाँ अरुणदत्त और सेनापति के कक्ष सब प्रकार के सुख-प्रसाधनों से युक्त थे, पुष्यमित्र का आगार बिल्कुल साधारण-सा था। इसमें उसने अपने सोने के लिए एक लकड़ी का पलंग मात्र रखा हुआ था।

अरुन्धति भी राज्यप्रासाद मे भगवती के साथ रहती थी और सादगी

में उसका कक्ष पुष्यमित्र के समान ही था।

पुष्यमित्र अपने आगार में विश्राम करने पहुँचा और वस्त्र परिवर्तन कर सोने की तैयारी करने लगा। इसी समय प्रतिहार ने आकर सूचना दी कि देवी अरुन्धति किसी आवश्यक कार्य से उससे अभी मिलना चाहती है।

पुष्यमित्र ने एक क्षण विचार किया तत्पश्चात् प्रतिहार से कहा, "उसको बैठक मे बिठाओ। मै अभी आता हूँ।"

पुष्यमित्र पुनः वस्त्र पहन, बाहर बैठक मे आ गया। वहाँ अरुन्धति हाथ मे एक पत्र लिये खडी थी। पुष्यमित्र ने उसको बैठने के लिए कह, स्वय बैठते हुए पूछा, "क्या बात है देवी! इस समय आने का कष्ट किस कारण किया है?"

"मुझको ऐसा पता चला है कि मन्त्रिमंडल ने यह निश्चय किया है कि कल सेना को कौशाम्बी पर आक्रमण की आज्ञा दे दी जाय। उस आज्ञा से पूर्व अभी-अभी कौशाम्बी से आये इस पत्र को श्रीमान् पढ ले तो ठीक रहेगा।"

पुष्यमित्र ने पत्र लिया और पढा। इसमें लिखा था, "मै अभी-अभी यवनाधिपति के भवन से आ रहा हूँ। वहाँ एक घटना घटी है। उस घटना को महत्त्वपूर्ण समझ, यह पत्र एक पत्र-वाहक के हाथ भेज रहा हूँ।

"साकेत और यवनराज्य मे सन्धि-चर्चा समाप्त हो गई है। यह समाप्ति घोर वाद-विवाद के पश्चात् हुई है। साकेत राज्य के प्रतिनिधि, मगध के चन्द्रभानु के अन्त का स्मरण कर, यहाँ से भाग गये है।

"परन्तु यवनाधिपति निर्णय करने मे बहुत सतर्क रहता है। उसने तुरन्त साकेत पर आक्रमण की आज्ञा दे दी है।

"साकेत पहुँचने के लिए मगध राज्य मे से होकर जाना पडता है। अतः आप को सेना के वहाँ से जाने का ज्ञान हो जाना चाहिये। यह सूचना इस कारण भेजी जा रही है कि सेना के मगध राज्य में प्रवेश करने से पूर्व राज्य को अपनी नीति पर विचार करने का अवसर मिल जाय। सेना के प्रस्थान करने की सूचना यथासमय भेज दूँगा।"

पुष्यमित्र गभीर विचार में पड गया। अरुन्धति शान्त उसके सम्मुख बैठी थी। जब पुष्यमित्र कुछ नही बोला तो अरुन्धति ने पूछा, "तो मुझको जाने की आज्ञा है ?"

"नही; मैं देवी से दो बाते जानना चाहता हूँ। एक तो यह कि देवी के गुप्तचर मंत्रिमडल की कार्यवाई की सूचना जानने का यत्न करते रहते है क्या ? और दूसरा यह कि कौशाम्बी से साकेत के मार्ग पर भी गुप्तचर नियुक्त है क्या ?"

"दोनों प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' मे है।"

"यह क्यों ? मंत्रिमडल को सुरक्षा से विचार-विनिमय करने क्यों नहीं दिया जाता ?"

"इस कारण कि मंत्रिमंडल अपने निर्णयों को स्वयं गुप्तचर-विभाग को नही भेजता ?"

"यह तो असम्भव है। मंत्रिमडल अपने बहुत से निर्णय गुप्त रखना चाहता है।"

"तो वह एक बात कर सकता है। गुप्तचर-विभाग के अधिष्ठाता को मत्रिमंडल के निर्णय सुनने का अधिकार दिया जाय।"

"यह भी असम्भव है। मत्रिमंडल सब विभागों से ऊपर है।"

"इसमें संदेह नही श्रीमान् ! परन्तु गुप्तचर-विभाग सब विभागों का सहायक है। अतः इसकी सहायता से मत्रिमंडल को वचित नही रहना चाहिए।"

"इस समस्या पर विचार किया जायगा। परन्तु अब देवी मंत्रिमंडल को क्या करने की सम्मति देती है ?"

"देवी मंत्रिमडल की सदस्या नही है। इस कारण सम्मति देने से धृष्टता हो जायगी।"

"देश का शासक सम्मति माँगे तो भी ?"

"शासक अपने लिये सम्मति माँग सकता है, मंत्रिमंडल के लिये नही। यदि शासक उचित समझे तो उस सम्मति को मंत्रिमडल के समक्ष उप-

स्थित कर सकता है।"

पुष्यमित्र हँस पड़ा। हँस कर उसने कहा, "देवी! बहुत बाल की खाल निकालती हो।"

"तभी तो ढेरो समाचारो मे से आवश्यक तथा अनावश्यक समाचारों का निर्णय कर सकती हूँ।"

"अच्छा बताओ। इस नवीन परिस्थिति मे क्या होना चाहिये?"

"मगध द्वारा आक्रमण का समाचार अभी किसी को विदित नही होना चाहिये। यवनाधिपति मगध की ओर से निश्चिन्तता अनुभव करे, जिससे वह साकेत पर आक्रमण करने मे सकोच न करे।

"जब यवन-सेना मगध के क्षेत्र से निकले, उसका विरोध न किया जाय। अर्थात् सुगमता से साकेत तक पहुँचने का विश्वास उसको हो। परन्तु ज्यो ही उसकी सेना मगध-राज्य पार कर साकेत मे प्रवेश करे, उसकी वापसी का मार्ग हमारे सैनिको से बद कर दिया जाय और उसी समय कौशाम्बी पर आक्रमण कर दिया जाय।

"सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि हम अपनी योजना को कितना गुप्त रख सकते है और इसको कितनी सतर्कता से चला सकते है।"

अरुन्धति गई तो पुष्यमित्र ने सेनापति को बुला भेजा और उससे परामर्श कर उसी समय, उचित स्थानो पर सदेश भेजने का प्रबन्ध कर दिया।

चतुर्थ परिच्छेद

: १ :

भारत की हरी-भरी भूमि सोना उगलती थी। सिन्धु नदी से पूर्व के खेतों मे उपजा हुआ गेहूँ, बाजरा, मकई आदि अन्न विदेशों से स्वर्ण लाता था और देश के कृषकों की स्त्रियाँ स्वर्ण तथा रजत के भूषणो से लदी रहती थी। कभी कोई विदेशी व्यापारी भारत के गाँवों मे से गुजरता, तो नि:शुल्क भोजन तथा आतिथ्य पाकर देश की समृद्धता पर चकित रह जाता था। खेतो में काम करने वाली स्त्रियों की झाँझरों तथा हथकगनों की झंकार, कसी और हल चलने के स्वर में मिल परदेशी के मुख मे लार टपकाने लगती थी। नगरो की उच्च अट्टालिकाएँ, गगनभेदी मन्दिरों के कलश तथा विशाल राजपथ इत्यादि की तुलना कापिश तथा परुषपुर के छोटे-छोटे गृहों तथा मार्गो से करने पर विदेशियों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगती थी।

यह ईर्ष्या भारत पर विदेशी आक्रमणों का बीज बन जाती थी। भारत-भ्रमण के पश्चात् यात्री जब अपने देश के राजा के समक्ष उपस्थित हो, यहाँ की धन-सम्पदा तथा प्राकृत एवं मनुष्य-निर्मित सौन्दर्य का वर्णन करते, तो राजाओं के मन अपने देश से उचाट हो जाते और वे भारत मे आकर रहने की लालसा करने लगते।

इस लोभ तथा लालसा का मर्दन करने के लिये देश के क्षत्रिय लम्बी सुदृढ़ भुजाओं में चमचमाते खड्ग लिये तैयार रहते थे। जब-जब भी सुख तथा आराम के वशीभूत, स्वार्थ तथा अज्ञानता के मोह में फँस कर अथवा मिथ्या

त्याग और दया की भावना से प्रेरित हो, क्षत्रियों के भुजदंड ढीले पड़े, देश पर लोभी, लालची अथवा ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित विदेशीय उमड़ पड़े और काली घटाओं की भाँति पूर्ण देश पर छा गये।

ऐसी ही परिस्थिति देववर्मन् के काल में उत्पन्न हुई थी।

गाधार की राजधानी परुषपुर के राजभवन में गाधार का यवन-अधिपति ऐन्सरीज अपने परामर्श-दाताओं से वार्तालाप कर रहा था। ऐन्सरीज को अपने नये विवाह के लिए दस सहस्र स्वर्णमुद्राओं की आवश्यकता थी।

दो-दिन पूर्व वह अमूर नदी के तट पर आखेट के लिये गया हुआ था कि उसकी दृष्टि एक अति सुन्दर युवती पर पड़ी। उसने उससे विवाह का प्रस्ताव कर दिया। उसने कहा, "सुन्दरी! तुम तो गान्धार के राजा के रणवास की शोभा के योग्य हो।"

सुन्दरी ने कनखियो से देखते हुए कहा, "ठीक है, परन्तु महाराज! आपके सिहासन पर कितना मूल्य लगा है?"

"पाँच सहस्र रजत।"

"और आपके पलंग पर?"

"एक सहस्र रजत।"

"तो बताइये, जब आपने अपने भवन को शोभायमान करने वाली इन वस्तुओं पर इतना कुछ व्यय किया है, तो इन सुन्दर वस्तुओं को अपनी शोभा का वरदान देने वाली के लिये क्या देने का विचार रखते है?"

"यह मूल्याकन करने की सामर्थ्य मुझमे नहीं है।"

"तो महाराज! मेरे पिता से मिलकर इसका मूल्य जान लें। यदि सामर्थ्य है तो आपको अपने रणवास की शोभा मिल जायगी।"

ऐन्सरीज़ ने उस सुन्दरी के घर का पता पूछा। उसका पिता एक समृद्ध भूमिपति था। उसने अपनी कन्या का मूल्य दस सहस्र स्वर्ण माँगा। ऐन्सरीज़ ने एक सप्ताह मे दस सहस्र स्वर्ण देने का वचन दिया और राजभवन में आकर अपने परामर्शदाताओं से परामर्श लेने लगा कि इतना धन कहाँ से उत्पन्न करे।

गान्धार मे कर प्राप्त करने की रीति नही थी। राजा को कर प्रायः वस्तुओ के रूप मे मिलता था। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भूमि की उपज का अथवा अपने परिश्रम से प्राप्त धन का दशांश राजा को देना पडता था। इस आय से बहुत ही कठिनाई से राज्य-परिवार का व्यय तथा राज्य की सेना का व्यय पूर्ण होता था।

जब परामर्शदाता दस सहस्र स्वर्ण का प्रबन्ध नही बता सके तो राजा निराश हो गया। इस समय अपोलो नाम के एक व्यक्ति ने खड़े होकर कहा, "महाराज ! स्वर्ण तो बहुत है। ढेर-के-ढेर सिन्धु नदी के उस पार पड़े है। केवल चलकर उठा लाने की बात है।"

"कहाँ है ?" ऐन्सरीज़ का प्रश्न था।

"महाराज ! मै अभी-अभी भारत-भूमि का भ्रमण कर आ रहा हूँ। उस देश मे मुझे एक भी स्त्री ऐसी दिखाई नही दी, जिसके शरीर पर सेर-आध सेर स्वर्ण न हो और वे स्त्रियाँ अरक्षित तथा स्वच्छद अपने सौन्दर्य तथा धन का प्रदर्शन कर ऐसे भ्रमण करती है, मानो पूर्ण देश एक विशाल रणवास हो।"

"ओह ! तो उस देश मे पुरुष नही बसते क्या ? मै ने तो सुना था कि उस देश के एक सम्राट् पाटलिपुत्र मे रहते है और उनकी सेना जिस ओर जाती है, टिड्डी दल की भाँति सब कुछ साफ कर जाती है।"

"महाराज ! यह बात पुरानी हो गई। आज तो उस देश मे एक नवीन प्रकार की सेना घूमती है। पीत वस्त्र धारण किए, सिर मुडा, पाँव से नग्न, हाथों मे कमंडल लिये सौ-सौ दो-दो सौ की मडलियो मे ये लोग ग्राम-ग्राम मे ऐसे भ्रमण करते है, मानो कुँवारी कन्याएँ हो, जिनको ससार के प्रलोभन का ज्ञान तक नही।"

"क्या बात कर रहे हो ? अपोलो ! हमको मूर्ख बना रहे हो क्या ?"

अपोलो खिलखिलाकर हँस पड़ा। हँस कर उसने कहा, "आपका अभिप्राय उस योद्धा से है न, जिसने महारथी अलक्षेन्द्र के सेनापति सेल्यूकस को पराजित किया था और उसकी युवा कन्या से विवाह किया था ?"

"तो वहाँ कोई और भी चन्द्रगुप्त है क्या ?"

"महाराज ! उसको मरे हुए आज तीन सौ वर्ष हो चुके है। उसका पौत्र एक अति क्रूर सम्राट् था, परन्तु उसके अत्याचारों की उसके मन पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि वह अति दयावान हो गया और अस्त्र-शस्त्रधारी सेना के स्थान उसने पीतवसनधारियो की सेना निर्माण करनी आरम्भ कर दी। ये पीतवसनधारी नपुसको की भाँति शत्रु अथवा मित्र, जिससे भी मिलते है, उसके कल्याण का ही चिन्तन करते है। इनका कोई शत्रु नही।"

"वहाँ अब कौन राज्य करता है।"

"उस चन्द्रगुप्त के पौत्र का पौत्र सम्प्रति नाम का एक दुर्बल और भीरु राजा राजगद्दी पर बैठा है। वह उन पीतवसनधारियों की सेना द्वारा प्रजा मे उत्पन्न सद्भावना के आधार पर, उससे कर प्राप्त कर, अपना कार्य चलाता है।"

"मै विश्वास नही कर सकता। सहस्रो कोस लम्बा और चौड़ा राज्य केवल सद्भावना पर चले, यह असम्भव है।"

"महाराज ! परीक्षा कर देख लीजिये। अपने साथ केवल एक सौ सैनिक लेकर एक दिन सिन्धु पार करने का साहस कीजिये और फिर दस सहस्र क्या, लक्ष-लक्ष स्वर्ण एकत्रित कर लीजिये।"

"कदाचित् जो कुछ तुमने बताया है, वह किसी पोस्ती के पीनक में कही कथा है। इस पर भी मुझको दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा चाहिएँ। मैं उस लड़की के वियोग मे पागल हुआ जाता हूँ।"

ऐन्सरीज ने चुने हुए एक सौ सैनिक लिए और एक दिन चुपचाप सिन्धु पार कर गया। केवल दो गाँव उसने लूटे और मनो स्वर्ण तथा रजत और सैकडों युवतियों को रस्सो से बाँध कर अपने देश में ले आया।

वह समझता था कि यह राजाओं का समर नही, प्रत्युत दस्युओं का छापा है और इसका प्रतिकार लेने के लिए भारत जैसे सम्पन्न देश के सैनिक उसके देश पर प्रत्याक्रमण करेगे। इस पर भी उस सुन्दरी पर मग्ध, वह अपने कार्य की जघन्यता को भूल गया और उससे विवाह के लिए

उसके पिता के पास जा पहुँचा।

विवाह हुआ और इस नवीन विवाह से एक सुन्दर बलशाली सन्तान भी उत्पन्न हो गई, परन्तु भारत से लूटा धन तथा जन वापिस लेने कोई नही आया।

ऐन्सरीज ने तीन वर्ष तक प्रतिकार की प्रतीक्षा की और जब कुछ नही हुआ तो अपोलो के कथन का विश्वास कर, वह इस समृद्ध तथा सुन्दर देश पर अधिकार बनाने की योजना बनाने लगा।

वह सीमा प्रदेशों पर छोटे-मोटे डाके डाल सेना तैयार करने के लिए स्वर्ण एकत्रित करने लगा और थोडे ही काल मे एक सेना लेकर तक्षशिला, शाकल, लवपुर पर एक ओर और श्रीनगर की सुन्दर वादी पर दूसरी ओर अधिकार जमा बैठा।

ऐन्सरीज कुछ आवश्यकता से अधिक समझदार था। इस कारण वह धीरे-धीरे अपने राज्य की वृद्धि कर रहा था। जब तक उसका अधिकार लवपुर पर हुआ, उसका देहान्त हो गया। इस समय सम्प्रति का पुत्र गृहवर्मन् मगध की राज्यगद्दी पर आरूढ हो चुका था।

ऐन्सरीज का पुत्र डेमिट्रियस गाधार का राजा बना और अपने पिता द्वारा आरम्भ किया हुआ कार्य पूरा करने लगा। उसने एक अत्यन्त बलशाली सेना निर्माण की और एक दिन स्थानेश्वर पर अधिकार कर लिया। इसके पाँच वर्ष पश्चात् इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर और फिर दस वर्ष पश्चात् कौशाम्बी पर उसका राज्य स्थापित हो गया।

: २ :

कौशाम्बी मे एक विशाल हत्याकांड के पश्चात् भी एक भारी संख्या में भारतीय बच गये थे। गाँधार से तो केवल सैनिक ही आये थे। सैनिक शासन तो कर सकते थे, परन्तु एक उन्नत समाज के व्यापार तथा व्यवसाय को समझ नहीं सकते थे।

जब कौशाम्बी के आयुक्तक सोमप्रभ की हत्या की गई और उसके पश्चात् नगर-भर में लूटमार मच गई तो कौशाम्बी के व्यापारी वहाँ से

भागने लगे। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही दिनों में कौशाम्बी के अन्न-भंडार रिक्त हो गये और डेमिट्रियस के सैनिक भूखे मरने लगे। अब डेमिट्रियस को समझ आया कि राज्य करना शासन चलाने से एक भिन्न कला है। उसने अपने सैनिकों को समझाया कि इस प्रकार एक अन्जान देश मे कार्य नहीं चल सकेगा। नागरिकों से समझौता कर मैत्रीपूर्ण व्यवहार अपनाना होगा अन्यथा सब भूखे मर जायेंगे।

परिणाम यह हुआ कि नगर-भर मे घोषणा कर दी गई कि गाधार-पति नगर मे शान्ति चाहता है; सोमप्रभ की हत्या तो इस कारण की गई थी कि उसने सन्धि की शर्तो का पालन करने से इन्कार कर दिया था और फिर नगर के बहुत से लोग उसकी सहायता के लिये यवनाधिपति के विरोध मे खडे हो गए थे। अतः उनको दड देना अनिवार्य हो गया था।

अब प्रजा को विश्वास दिलाया जाता है कि यवनाधिपति उनके धन-जन की रक्षा का भार अपने ऊपर लेता है और उनको अपना व्यवसाय पूर्ववत् आरम्भ कर देना चाहिये।

कदाचित् इस घोषणा का विशेष परिणाम न निकलता यदि अन्न-अनाज तथा वस्त्रादि के लिये व्यापारियों को दुगना, तिगुना मूल्य न दिया जाता। कुछ व्यापारियों ने साहस कर अपनी दुकाने खोली और माला-माल होने लगे।

इस प्रकार डेमिट्रियस की सेना के चारो ओर लोभी तथा लालची व्यापारी एकत्रित होने लगे और वे अन्य भारतीयो के सम्मुख विजेताओं की भलमनसाहत, सरल हृदयता, दया तथा सहिष्णुता के गुण गाने लगे।

जब मगध का महामात्य चन्द्रभानु डेमिट्रियस से सन्धि करने आया, तब तक कौशाम्बी पुन. एक सजीव नगरी दिखाई देने लगी थी। डेमिट्रियस की सेना के दो लक्ष सैनिकों मे से पचास सहस्र के लगभग कौशाम्बी मे ही बस चुके थे तथा उन्होंने वही अपने विवाह रचा लिये थे। शेष सैनिक अपने शिविरों में रहते थे। वे अपनी स्त्रियों को साथ नही लाये थे, इस कारण कौशाम्बी में वेश्या-वृत्ति प्रचलित हो गई थी।

जब चन्द्रभानु कौशाम्बी पहुँचा तो उसने अपना नाम-धाम तथा आने का प्रयोजन लिखकर डेमिट्रियस के पास भेज दिया। डेमिट्रियस ने इस पर अपने परामर्शदाताओं से, जिनमें कुछ भारतीय भी सम्मिलित कर लिये गये थे, जो उसके गुणानुवाद प्रजा मे गाते थे, सम्मति माँगी। वास्तव मे डेमिट्रियस मगध-सम्राट् के विषय मे इतनी हीन सम्मति रखता था कि वह उसके दूत से बात करना समय व्यर्थ गँवाना मानता था, परन्तु परामर्श-दाताओं ने निवेदन कर दिया, "महाराज ! मिल कर बातचीत करने में कुछ भी हानि नही होगी। लाभ ही हो सकता है। मगध के महामात्य से उनके राज्य की स्थिति का ज्ञान हो सकता है। उसकी बात माननी अथवा न माननी आपके अपने अधिकार मे है ही।"

इस पर डेमिट्रियस ने चन्द्रभानु से भेंट स्वीकार कर ली।

जब महामात्य कौशाम्बी मे आया तो उसके साथ अंगरक्षको के स्थान, पचास पीतवसन-धारी भिक्षु देख नगर के लोग, तथा डेमिट्रियस के सैनिक हँसने लगे। चन्द्रभानु उनकी हँसी का कारण जानता था, परन्तु वह वहाँ एक प्रयोजन विशेष से आया था और उस प्रयोजन में वह इस रूप को पसन्द करता था।

भिक्षुओ के आने की सूचना डेमिट्रियस के पास पहुँची तो वह भी हँसा, परन्तु उसके परामर्शदाताओं ने उससे कहा कि इन भिक्षुओं का मान करना चाहिये।

डेमिट्रियस ने पूछा, "क्यों ?"

"इसलिए महाराज ! कि वे इस भारत देश में आपके सबसे बड़े हितैषी हैं।"

"कैसे ?"

"वे सदैव युद्ध के विरोधी होते है। जब भी कही युद्ध की संभावना होती है, वे पराजय स्वीकार करके भी युद्ध से बचना चाहते हैं। ऐसे लोग सदैव शत्रु का हितचिन्तन करते है।"

डेमिट्रियस को यह मीमांसा समझ नहीं आई। इस पर उसके परा-

मर्शदाताओं ने बात को और व्याख्या से समझाने के लिए कहा, "महाराज ! भारत में एक बहुत बड़े सिद्ध पुरुष हुए है। उनका नाम गौतम बुद्ध है। उस सिद्ध पुरुष ने एक जीवन-मीमासा को चलन दिया है, जिसका नाम पंचशील है।

"इन पचशील मे एक शील अहिंसामय होना है, अर्थात् मन से, वचन से तथा कर्म से सबके कल्याण का चिन्तन करना। यहाँ तक कि शत्रु का भी कल्याण-चिन्तन किया जाता है।

"इस का अर्थ यह है कि यदि तो शत्रु विजय पा जाये तो उसको रोकने वाला कोई नही और यदि शत्रु परास्त होकर बदी बना लिया जाय, तो ये सबका कल्याण चिन्तन करने वाले उसको क्षमा कर देते है।

"महाराज ! मगध-सम्राट् इस समय इसी सिद्धान्त—पचशील के मानने वाले हैं और इसी कारण महामात्य के साथ इन भिक्षुओ को भेजा गया है, जिससे ये आपका भी कल्याण-चिन्तन करेगे।"

डेमिट्रियस ने पाँच दिन प्रतीक्षा कराने के पश्चात् चन्द्रभानु से भेट की स्वीकृति दी। जब चन्द्रभानु आया तो पहला प्रश्न उसने किया, "मगध-सम्राट् की ओर से हमारे लिये क्या भेट लाये हो ?"

एक क्षण के लिये चन्द्रभानु इस माँग से विचलित हुआ, परन्तु तुरन्त ही अपने चित्त को स्थिर कर उसने कहा, "सिन्धु नदी से लेकर कौशाम्बी तक का पूर्ण प्रदेश मगध-सम्राट् आपको भेट में देते है।"

"वह तो हमने पहले ही विजय कर लिया है।"

"श्रीमान् ! यदि मगध-सम्राट् की इच्छा इसको भेंट में देने की न होती तो वे आपसे युद्ध करते। उन्होने युद्ध न कर, यह प्रदेश आपके लिये ही छोड दिया है।"

"ओह ! तो क्या मगध-सम्राट् की इच्छा युद्ध करने की भी हो सकती थी ?"

"हाँ श्रीमान् ! मगध-सम्राट् यह जानते है कि गान्धार देश कुछ अधिक समृद्ध नही है। इसी कारण गान्धार-नरेश ने भारत के इस भाग

को अपने अधिकार मे लेने का यत्न किया था। अपने एक भाई को आर्थिक कष्ट मे देख मगध-सम्राट् ने उसके इस प्रयत्न पर कोई कारवाई न करने का ही निश्चय किया है। अब अपने महामात्य को भेज, वे यह प्रदेश वैधानिक ढग से आपके अधीन करने की घोषणा करते है।"

"और यदि हम इस भेंट को स्वीकार न करें तो ?"

"तो श्रीमान्, इस सब को छोड़कर वापस गाधार लौट जायँ।"

"और यदि हम न लौटना चाहे तो ?"

"तो मगध-सम्राट् विवश होकर आपसे युद्ध करेंगे।"

इस पर डेमिट्रियस ने हँसते हुए कहा, "हम समझते है कि यदि तुम्हारे महाराज को युद्ध करना था, तो तब करते, जब हम सिन्धु-तट के उस पार थे। अब यदि उन्होने युद्ध किया तो वे निश्चित हार जाएँगे।

"इस पर भी हम मगध-सम्राट् का धन्यवाद करते है कि उन्होने इतना बड़ा और सुन्दर देश हमे भेट में दिया है। हम इस भेट का प्रतिकार अवश्य देगे।"

उस दिन भेट समाप्त हुई। इस वार्त्तालाप से यह निश्चय हो गया कि मगध-सम्राट् डेमिट्रियस का विजित प्रदेश पर वैधानिक अधिकार मान बैठा है।

: ३ :

अगले दिन डेमिट्रियस ने मगध सम्राट् के लिये भेंट-स्वरूप गान्धार की बनी हुई दरियाँ, कम्बल, गुफ्फे इत्यादि बहुत सी वस्तुएँ भेजी। महामात्य चन्द्रभानु को विवश वे स्वीकार करनी पड़ी। अस्वीकार कर वह डेमिट्रियस का अपमान नही करना चाहता था।

कई दिन पश्चात् पुनः भेंट हुई। इस भेंट में चन्द्रभानु ने महात्मा बुद्ध तथा बौद्ध धर्म की प्रशसा करनी आरम्भ कर दी। इस पर डेमिट्रियस ने पूछ लिया, "आप मुझे यह बताएँ कि यदि मैं इस धर्म को स्वीकार कर लूँ तो मुझको क्या करना होगा ?"

"सबके कल्याण का चिन्तन करना होगा। यही इस धर्म की विशे-

षता है।"

"शत्रु के कल्याण का भी ?"

"इस धर्म को मानने वाले के लिये संसार मे कोई शत्रु नही रह जाता।"

"अर्थात् सब मित्र है।"

"हाँ श्रीमान् !"

"तब तो मै इस धर्म को स्वीकार करता हूँ "

"अब आप संसार के सब प्राणियों को मित्र समझिये।"

"समझ लिया।"

"मित्र के साथ द्वेष नही किया जाता।"

"नही करूँगा।"

"इस पर कोई आपको अपना शत्रु नही समझेगा।"

"अर्थात् कोई भी मुझको अपना शत्रु नही मानेगा।"

"नही श्रीमान्।"

"यह तो विचित्र है। आप जाकर अपने सम्राट् से कह दे कि मैं उनके धर्म को मानने से उनका मित्र हो गया हूँ। अतः मेरा सब कुछ उनका है और उनका सब कुछ मेरा है।"

"हाँ श्रीमान् ! आप धर्म के तत्त्व को भली-भाँति समझे हैं।"

"परन्तु हमको यह देख दुःख होता है कि हमारे मित्र मगध-सम्राट् बृहद्रथ को राज्य-कार्य का भार निभाने मे कष्ट हो रहा है। हम इसमे अपने मित्र की सहायता करना चाहते है।"

"इसी विषय पर विचार करने के लिये महाराज ने मुझको आपकी सेवा में भेजा है।"

"इसमें विचार करने की क्या बात है ? अब हम परस्पर मित्र है। वे मेरी सम्मति मानें और शेष मगध-साम्राज्य मेरे अधिकार में दे दे। इससे उनको कष्ट कम हो जायगा और हम यह राज्य उनके नाम पर चलायेंगे।"

"परन्तु श्रीमान् तो भारतीयों के आचार-विचार से परिचित नही।

इससे श्रीमान् को अधिक कठिनाई होगी।"

"इसकी चिन्ता मगध-सम्राट् को नही करनी चाहिये। हम राज्य करने का अभ्यास रखते है। मगध-सम्राट को अब गृहस्थ छोड वैराग्य ले लेना चाहिये।"

"नही श्रीमान् ! मगध-सम्राट् धर्म के विषय मे आपसे अधिक ज्ञान रखते है। इस कारण धर्मयुक्त राज्य वे अधिक योग्यता से कर सकते है।"

"हमारा इसमें उनसे मतभेद है। इस मतभेद का निर्णय पचशील के सिद्धान्त के अनुसार करना चाहिए।"

"क्या अभिप्राय है आपका इससे ?"

"अभिप्राय स्पष्ट है। आपके सम्राट् धर्म जानते है अथवा नही, मुझे इसका ज्ञान नही। वे राजनीति कदापि नही समझते। वे राज्य करने के अयोग्य है। उनका भला इसी में है कि वे मुझको भारत का सम्राट् मान लें।"

"देखिये महाराज ! यह आपका भ्रम है कि वे राजनीति नही समझते। हाँ, वे शिष्टाचार आपसे अधिक जानते है। शिष्टाचार पंचशील मे से एक शील है।"

"तो आप मुझको अशिष्ट समझते हैं ?"

"नहीं श्रीमान् ! मैने यह नही कहा। मेरा निवेदन केवल इतना है कि अब तक जितने प्रदेश पर आपने अधिकार किया है, वह आपको भेट मे दे दिया गया है। परन्तु मगध-सम्राट् चाहते हैं कि आप इससे एक पग भी आगे न बढें, अन्यथा युद्ध अवश्यम्भावी है।"

"हम युद्ध से नहीं डरते। हमारे हाथों में भी खड्ग है और वह मगध-सम्राट् की खड्ग से अधिक लम्बी है।"

"तो श्रीमान् का अभिप्राय यह है कि जिस प्रयोजन के लिए मै आया था, वह असफल रहा है।"

"निस्सन्देह ! परन्तु हम आपको असफल लौटने नहीं देंगे।"

"कैसे ?"

"आप हमारे बदी है। आप यहाँ से वापस नहीं जा सकते।"

"श्रीमान् ! मैं राजदूत हूँ। राजदूत बदी नही बनाया जा सकता।"

"हम राजदूत को गुप्तचर-मात्र समझते है। यहाँ की जानकारी हम शत्रु के देश मे नही जाने देगे।"

"श्रीमान् ! मेरा निवेदन है कि इतना अभिमान उचित नही। मै आपको मगध-सम्राट् की चेतावनी देना चाहता था। इस पर भी कार्य करने मे आप स्वतत्र है। यह निश्चित है कि अपने कर्मो का फल सब को मिलता है।"

"वह हम देख लेगे। अभी तो आपको आपके कर्मो का फल हम देना चाहते है।" इतना कह डेमिट्रियस ने सकेत किया तो उसके अगरक्षक ने एक ही वार मे महामात्य का सिर धड़ से पृथक् कर दिया। पश्चात् पाथागार मे, जहाँ महामात्य भिक्षुओ के साथ ठहरा हुआ था, सैनिक भेज दिये गए, जिससे उन भिक्षुओ को भी बदी बना लिया जाये। अगले दिन सब को सूली पर चढा दिया गया।

यह तो घटना-मात्र थी कि एक भिक्षु उस समय पाथागार मे नही था, जब सैनिक उनको बदी बनाने के लिए गये थे। वह भ्रमणार्थ नगर मे गया हुआ था। जब उसको सूचना मिली कि सभी भिक्षु बदी बना लिये गये है तो उसने अपने पीत वस्त्र उतार कर फेक दिये और छिप कर कौशाम्बी से भाग निकला।

डेमिट्रियस को आशा थी कि चन्द्रभानु की हत्या के समाचार को सुन कर पाटलिपुत्र की सेना कौशाम्बी पर आक्रमण कर देगी और पश्चात् उसको पाटलिपुत्र पर अधिकार करने का अवसर मिल जायगा। परन्तु लगातार प्रतीक्षा करने के पश्चात् भी जब कुछ प्रतिकार नही हुआ तो उसने सोचा कि मगध में युद्ध की सामर्थ्य नहीं है।"

इस पर भी वह स्वयं आक्रमण करने से डरता था। उसके दाहिनी ओर मल्ल देश, विदर्भ तथा आन्ध्रदेश थे। उत्तर में अवध, तुषार शैलभू इत्यादि सुदृढ़ राज्य थे। ये सब मगध से स्वतत्र हो, अपने अस्तित्व को बनाये हुए थे। उसको भय था कि यदि उसने पाटलिपुत्र पर आक्रमण

किया तो उत्तर और दक्षिण के ये राज्य आगे बढ, उसका मार्ग काट देंगे और उसका गान्धार से सम्बन्ध टूट जायगा।

इस कारण उसने पहले इन राज्यो से सन्धि करनी चाही। उसने अपने दूत इन राज्यो मे भेजे। कोई भी राज्य डेमिट्रियस से युद्ध नही चाहता था, परन्तु वे सन्धि कर मगध पर आक्रमण करना भी नही चाहते थे। इस पर भी सबने आश्वासन दिया कि वे तटस्थ रहेगे, परन्तु डेमिट्रियस को भी यह आश्वासन देना पडा कि वह उन पर आक्रमण नही करेगा।

अवध, जिसकी राजधानी साकेत थी, की स्थिति कुछ भिन्न थी। अवध एक सुदृढ़ राज्य था और अनुभव करता था कि मगध राज्य के विघटित होने पर उसकी लूटमार मे वह भी भागीदार है। अतः जब डेमिट्रियस के दूत सन्धि-वार्त्ता के लिए वहाँ पहुँचे, तो अवध-नरेश ने स्पष्ट कह दिया, "यदि मगध पर आक्रमण हुआ और डेमिट्रियस की विजय हुई तो मिथिला पर साकेत का राज्य होगा।"

डेमिट्रियस इस बात को मानने के लिए तब तैयार था, यदि अवध की सेनाएँ भी मगध पर आक्रमण मे साथ दे।

इस प्रकार परस्पर बातचीत चलते एक वर्ष का काल व्यतीत हो गया। अभी अवध के साथ सन्धि पूर्ण नही हुई थी कि डेमिट्रियस को सूचना मिली कि मगध में क्रान्ति घट गई है और महाराज बृहद्रथ की हत्या हो गई है तथा उसके स्थान पर एक ब्राह्मण युवक शासक बन गया है। राज्य के अधिकांश नागरिक ब्राह्मण के साथ है। केवल बौद्ध-भिक्षु, जिनको राज्य की ओर से सहायता मिलनी बद हो गई है, इस ब्राह्मण का विरोध कर रहे है।

अभी साकेत से बातचीत चल रही थी कि बौद्ध महाप्रभु बादरायण से मौखिक वार्त्तालाप आरम्भ हो गया। बृहद्रथ के जीवन-काल मे भी महाप्रभु से पत्र-व्यवहार हुआ था, परन्तु अब उसको सन्देश मिला था कि पत्र-व्यवहार पर राज्य की दृष्टि पड सकती है, इस कारण दूतो के द्वारा मौखिक वार्त्तालाप चला। ये सन्देश, श्रावको के वस्त्र पहिने हुए, दूत ही ले

जा सकते थे, क्योंकि पुष्यमित्र के प्रबन्ध में डेमिट्रियस के गुप्तचरों का प्रवेश मगध में रुक गया था।

बौद्ध महाप्रभु से वार्त्तालाप अभी चल रहा था कि साकेत से सन्धि की वार्त्ता भग हो गई। इससे डेमिट्रियस ने यह समझा कि मगध तथा साकेत मे सन्धि की चर्चा आरम्भ हो गई है। इसके पूर्व कि उनमे कोई सन्धि हो, डेमिट्रियस ने साकेत पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी।

कौशाम्बी से साकेत मे जाने के लिए एक-सौ कोस के लगभग यात्रा मगध राज्य मे से करनी होती थी। डेमिट्रियस का विचार था कि साकेत पर आक्रमण की सूचना पाटलिपुत्र पहुँचने से पूर्व ही वह साकेत पर अधिकार कर लेगा, इसके पश्चात् वह मगध से आसानी से निपट सकेगा।

वह जानता था कि इस समर की सफलता सेना की गति पर निर्भर करती है।

: ४ :

अरुन्धति की सम्मति से पुष्यमित्र ने सेना के तीनो दलों को तैयार रहने का आदेश भेज दिया। दो दलों को सूचना पाते ही कौशाम्बी पर आक्रमण करना था तथा तीसरे दल को यवनो की सेना के साकेत मे प्रवेश कर लेने पर, पीछे से उन पर आक्रमण करना था।

अगले दिन पुष्यमित्र पूजा-पाठ आदि से निवृत्त हुआ ही था कि अरुन्धति उससे भेट करने आ पहुँची। पुष्यमित्र ने उसको देखा तो पूछ लिया, "अब क्या सूचना मिली है देवी!"

"मै समझती हूँ कि मुझको कुछ दिन के लिए अपने विभाग का कार्यालय लक्ष्मणपुर मे ले जाना चाहिये।"

"वहाँ क्या है?"

"वहाँ से कौशाम्बी, साकेत और सेना के शिविर समीप पडते है।"

"परन्तु इस प्रकार भाग-दौड़ से देवी को बहुत कष्ट होगा।"

"यहाँ का कार्य मे अपने गुरुभाई सुमित्र को सौप रही हूँ। वह आपको पूर्ण सूचनाएँ देता रहेगा।"

"देवी ! सुमित्र को लक्ष्मणपुर का कार्य नही सौप सकती क्या ?"

"मै समझती हूँ कि मेरा वहाँ जाना ही उचित है। कुछ गुप्तचर तो रात्रि ही वहाँ के लिए प्रस्थान कर चुके है। अब मेरे लिए भी रथ तैयार है। कुछ अन्य लोग मध्याह्न तक यहाँ से प्रस्थान करेंगे। मेरे साथ पाँच अश्वारोही जा रहे है, जिससे यदि मार्ग मे कोई सूचना भेजनी आवश्यक हुई, तो भेजी जा सके।"

"अच्छी बात है। मै देवी के साथ पचास सुभट रक्षार्थ भेज रहा हूँ।"

इस पर अरुन्धति खिलखिलाकर हँस पडी। हँसकर उसने कहा, "जो मार्ग मैं एक दिन मे तय करना चाहती हूँ, उसमें पाँच दिन लग जायेंगे। बताइये, पचास सवार मेरे साथ होगे तो उनके भोजन, निवास आदि का प्रबन्ध भी करना होगा। उनके अश्वो को विश्राम का समय देना होगा। इससे पाँच-छः दिन से कम समय में लक्ष्मणपुर पहुँचना असम्भव है।

"देखिये श्रीमान् ! मैने अपने रथ के अश्वो को प्रत्येक पाँच कोस के अन्तर पर बदलने का प्रबन्ध कर लिया है। यदि पचास अश्वारोही मेरे साथ गये तो सबके अश्वों को बदलने का प्रबन्ध नही हो सकेगा और यात्रा में विलम्ब होगा।"

पुष्यमित्र इस पर अवाक् अरुन्धति का मुख देखता रह गया। वह विचार करने लगा था कि अरुन्धति कितनी चतुर, दूरदर्शी स्त्री है ! इस दूरदर्शिता का उसकी योजनाओं की सफलता मे कितना भारी हाथ है !

अब पुनः अरुन्धति ने कहा, "जो सेना कौशाम्बी पर आक्रमण करने वाली है, आपका उसके साथ रहना आवश्यक है। मुझे विश्वास है कि डेमिट्रियस आक्रमण की सूचना पाते ही कौशाम्बी से भाग खड़ा होगा और दिन निकलते-निकलते हमारा अधिकार कौशाम्बी पर हो जायगा। इस कारण आशा है कि अब वही भेंट होगी।"

इतना कह, नमस्कार कर अरुन्धति आगार से बाहर निकल गई। पुष्यमित्र अवाक् उसको जाते देखता रह गया। वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु उसके मुख से शब्द नही निकले। वह विचार कर रहा था

कि योजना उसकी है, परन्तु उसको चलाने वाले कहाँ-कहाँ है ।

पूजागृह से निकल कर, वह अल्पाहार के लिये भोजनालय मे जा पहुँचा । वहाँ भगवती तथा उसके पिता अरुणदत्त, पहले से ही उपस्थित थे । पुष्यमित्र को आया देख अरुणदत्त ने पूछा, "रात के सब निर्णय बदल दिये है क्या ?"

"सब तो नही । युद्ध तो हो ही रहा है । केवल युद्ध का स्थल बदल दिया है ।"

"अरुन्धति कहाँ गई है ?"

"लक्ष्मणपुर ! वहाँ से वह कौशाम्बी जाने का विचार रखती है ।"

"पहले ही ।"

"नही, उसकी गणना है कि परसो वह लक्ष्मणपुर पहुँचेगी । तीन दिन वहाँ ठहर कर दो दिन मे कौशाम्बी जा पहुँचेगी । उसको विश्वास है कि तब तक हमारी सेना कौशाम्बी पर अधिकार कर चुकी होगी ।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि तुम आज ही समर के लिये रवाना हो जाओगे ।"

"मै इस सूचना की प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि यवन-सेना, मगध पार कर अवध राज्य मे कब प्रवेश करती है ।"

"अर्थात् आज सूर्योदय के समय यवन-सेना अवध मे प्रवेश कर चुकी होगी ।"

"हाँ पिता जी ! अवध राज्य की सीमा से प्रातः का चला हुआ दूत शाम तक यहाँ पहुँच जाना चाहिये और मै उसी समय यहाँ से चल दूंगा। कल मध्याह्न के समय सेना शिविर मे पहुँच जाऊँगा । उस समय तक सेना कौशाम्बी के लिए प्रस्थान की तैयारी कर चुकी होगी । चौथे दिन सायंकाल हम कौशाम्बी के द्वार पर पहुँच जायंगे और रात को ही आक्रमण करने का विचार है ।

"आक्रमण दो ओर से होगा । एक पूर्व की ओर से तथा दूसरा दक्षिण की ओर से । यदि हमारी गणना में भूल नही हुई है, तो उस समय कौशाम्बी

मे केवल दस सहस्र यवन सेना शेष होगी। सम्भव यही है कि डेमिट्रियस रात्रि के अँधेरे का लाभ उठाकर पश्चिम की ओर से भाग खड़ा हो।"

पिता-पुत्र अल्पाहार ले रहे थे और भगवती कुछ चिन्तित प्रतीत होती थी। पिता ने यह देखा तो पूछ लिया, "भगवती ! मुख मलिन क्यों हो रहा है ?"

"मलिन तो नही। केवल यह विचार कर रही थी कि समर का कार्य-क्रम ऐसा नपा-तुला है कि किंचित् मात्र विघ्न से कही सारा खेल न बिगड जाय।"

"ऐसा नही होगा माँ !" पुष्यमित्र ने कहा, "प्रत्येक प्रकार की सम्भावना पर विचार कर लिया गया है और प्रत्येक प्रकार की सम्भावित बाधा को दूर करने का उपाय भी कर लिया गया है।"

सायकाल नही होने पाया। मध्याह्नोत्तर ही अवध-सीमा से समाचार आ गया कि यवन-सेना अवध-राज्य में प्रविष्ट हो चुकी है। साकेत के नागरिक सर्वथा असावधान थे और आक्रमण की सूचना पर गाँव के गाँव रिक्त होने आरम्भ हो गये है।

समाचार लाने वाले ने बताया, "हमको यह सूचना थी कि यवन-सेना का मार्ग नही रोकना है। जब उनका अन्तिम सैनिक सीमा पार कर गया तो मैं अश्व पर सवार हो इस ओर चल पड़ा। प्रातःकाल का चला हुआ अब पहुँचा हूँ।"

यह प्रबन्ध अवध-सीमा के पास के सैनिक-शिविर मे ही था कि जब दूत पाटलिपुत्र के लिये सूचना लेकर रवाना हो तो इसका समाचार अन्य दोनो शिविरों को भी भेज दिया जाय। जिस समय अवध-सीमा पर, यवन-सेना पर पीछे से आक्रमण करने की योजना बन रही थी, उसी समय अन्य दोनों शिविरों मे कौशाम्बी पर आक्रमण की तैयारी हो रही थी।

पुष्यमित्र सूचना पाते ही रवाना हो गया। पूर्व की ओर आक्रमण करने वाली सेना का नेतृत्व उसे करना था। सेनापति पिछली रात ही पश्चिम से आक्रमण करने वाली सेना का नेतृत्व करने के लिये जा चुका था।

: ५ :

डेमिट्रियस ने जब साकेत के राजदूतो को कौशाम्बी से बिना सूचना दिये भागते देखा तो वह समझा कि अवध और मगध में सन्धि हो गई है। वह नही चाहता था कि साकेत तथा मगध की सेना एकत्रित होकर उस पर आक्रमण की योजना बनाये। इस कारण उसने उसी समय अवध पर आक्रमण की आज्ञा दे दी। पचास सहस्र सैनिक उसी समय मगध-राज्य मे प्रवेश कर साकेत की ओर बढ़ चले। उसके शेष सैनिक इन्द्रप्रस्थ मे शिविर लगाये बैठे थे। उनको बुलाने मे समय व्यर्थ जाता, इस कारण उसने कौशाम्बी मे जितने सैनिक थे, उनको ही जाने की आज्ञा दे दी। केवल दस सहस्र सैनिक कौशाम्बी मे नागरिको पर नियत्रण रखने के लिए शेष बचे थे।

डेमिट्रियस उत्सुकता से साकेत-विजय के समाचार की प्रतीक्षा कर रहा था कि चौथे दिन सायकाल उसको सूचना मिली कि नगर के पूर्वी और दक्षिणी द्वार पर दो विशाल सेनाएँ आ खड़ी हुई है।

"कहाँ की सेनाएँ है ?" उसने समाचार लाने वाले से पूछा।

"मगध की प्रतीत होती है।"

"इतनी जल्दी कहाँ से आ गई ?" डेमिट्रियस कुछ समझ नही सका। उसने उसी समय नगर-द्वार बद करने का आदेश दे दिया और एक भारतीय परामर्शदाता के हाथ मे श्वेत पताका देकर भेज दिया कि वह जाकर समाचार लाये कि वे कौन है और क्या चाहते है ?

भारतीय परामर्शदाता का नाम कैवल्य था। कैवल्य जब हाथ में श्वेत पताका लिये द्वार से बाहर निकला तो मागधी सैनिकों ने उसको बंदी बनाकर पुष्यमित्र के सम्मुख उपस्थित कर दिया। उसने अपने आने का आशय बताते हुए कहा, "यवनाधिपति श्रीमान् निकोलाई डेमिट्रियस यह जानना चाहते है कि यह सेना कहाँ की है और क्या चाहती है ?"

"तुम कौन हो ?" पुष्यमित्र का प्रश्न था।

"मै कन्नौज का रहने वाला एक ब्राह्मण हूँ तथा यवनाधिपति की

सेवा मे एक परामर्शदाता हूँ। मेरा नाम कैवल्य है।"

"कब से यवनाधिपति की सेवा में हो ?"

"डेढ वर्ष से अधिक हो चुका है।"

"तब तो तुम यहाँ थे, जब मगध-महामात्य चन्द्रभानु डेमिट्रियस के पास पहुँचे थे।"

"जी हाँ।"

"महामात्य चन्द्रभानु कहाँ है ?"

"वे स्वर्ग सिधार गये है।"

"अपनी इच्छा से ?"

"नही श्रीमान् ! महाराज डेमिट्रियस से वार्तालाप करते हुए उन्होंने महाराज को कुछ अनुचित शब्द कहे, जिसके परिणामस्वरूप महाराज को क्रोध चढ आया और उनको प्राणदड की आज्ञा हो गई।"

"तुम जानते हो कि दूत को प्राणदड नही दिया जाता।"

"यह भारतवर्ष की रीति है।"

"तो क्या गान्धार की नही है।"

"ऐसा ही प्रतीत होता है।"

"तो ठीक है, हम आज गान्धार की नीति का उत्तर उन्ही की नीति से देगे। हम उनके दूत से वैसा ही व्यवहार करेगे, जैसा हमारे राजदूत से किया गया था।

कैवल्य इस बात को सुन घबरा उठा। उसके माथे पर पसीने की बूंदे चमकने लगी। उसने हाथ जोड़ते हुए कहा, "श्रीमान् ! मै तो डेमिट्रियस का महामात्य नही, एक तुच्छ सेवक मात्र हूँ। अतः मुझसे वैसा व्यवहार करना, जैसा मगध के महामात्य से किया गया था, अन्याय हो जायगा।"

"यह न्याय-अन्याय का निर्णय भगवान् के पास जाकर करना। हाँ, तुम्हारे साथ कुछ रियायत की जा सकती है। यदि तुम हमारे प्रश्नो का उत्तर सत्य-सत्य दोगे तो हम तुम्हे प्राणदंड नही देगे।"

"महाराज ! आज्ञा करें।"

"अच्छा तो बताओ, कौशाम्बी में इस समय कितने सैनिक है ?"

"दस सहस्र ।"

"उनके पास शस्त्रास्त्र कैसे है ?"

"धनुष-बाण, खड्ग, भाले तथा आग लगाने का सामान है ।"

"नगर मे प्रवेश के लिए कौन-सा मार्ग ठीक रहेगा ?"

"यहाँ से दक्षिण की ओर प्राचीर मे एक नाला है। नाला बहुत गंदा है, परन्तु विशेष रक्षित नही ।"

"अच्छी बात है । यदि यह उत्तर सत्य हुआ तो तुम्हे एक माननीय बंदी के रूप मे रखा जायगा और जब तुम्हारे स्वामी को, उसके कुकर्मों का दंड मिल जायगा, तो तुम्हे छोड़ दिया जायगा, अन्यथा तुम उस वृक्ष के साथ फाँसी पर लटका दिये जाओगे ।"

डेमिट्रियस विचार कर रहा था कि दूत घूम-घाम कर सेना का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर वापस आयगा, परन्तु रात्रि समीप थी और वह नही आया । इस पर वह समझ गया कि उसको बदी बना लिया गया है और कदाचित् उसका वही अन्त हुआ होगा, जो उसने महामात्य चन्द्रभानु का किया था । प्रत्यक्ष सेना देखकर तो वह अनुमान लगा रहा था कि इस युद्ध मे उसकी विजय अनिश्चित है ।

अब उसने अपना कार्यक्रम बनाना आरम्भ किया । वह चाहता था कि एक सप्ताह तक मागधी सेना को रोके रखा जाय, तब तक हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ से सेना लेकर वह मागधी सेना पर पीछे से आक्रमण कर देगा । अतएव अपनी योजना, अपने उपसेनापति को समझाकर, वह नगर के उत्तरी द्वार से चुपचाप निकल इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान कर गया ।

परन्तु किसी प्रकार से यह समाचार नगर भर मे फैल गया कि डेमिट्रियस भाग गया है । इसके साथ ही रात्रि के गहन अन्धकार में पाँच सौ मागधी नाले में से नगर के अन्दर प्रविष्ट हो गये । वे अकस्मात आये थे, इस कारण साधारण से युद्ध से ही उन्होंने दक्षिणी द्वार तक का मार्ग

साफ कर लिया। द्वार पर घमासान युद्ध के पश्चात् वे द्वार खोलने में समर्थ हो गये।

बस फिर क्या था ? सूर्योदय होते-होते पूर्ण नगर पर मागधियों का अधिकार हो गया। सेना ने दिन भर आराम किया और अगले दिन प्रातः-काल ही इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान कर दिया।

डेमिट्रियस हस्तिनापुर पहुँच इन्द्रप्रस्थीय सेना को वहाँ आ, हस्तिना-पुर की सेना के साथ मिलकर कौशाम्बी पर आक्रमण करने का आदेश भेज ही रहा था कि कौशाम्बी से भागकर आये सैनिकों ने सूचना दी कि कौशाम्बी मागधियो के अधीन हो चुका है। इस पर डेमिट्रियस हस्तिनापुर की सेना के साथ इन्द्रप्रस्थ पहुँच कर वहाँ संयुक्त मोर्चा लगाने के लिए चल पडा।

परन्तु उसके विस्मय का ठिकाना नही रहा, जब इन्द्रप्रस्थ के बाहर पहुँचकर उसको यह पता चला कि मागधी सेना पहले ही इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार कर चुकी है। अब उसके लिये स्थानेश्वर को लौट जाने के अति-रिक्त कोई चारा नही रहा था। यहाँ अब उसके मार्ग मे एक अन्य कठिनाई आ उपस्थित हुई। मार्ग मे जितने गाँव पडते थे, वहाँ यह सूचना पहुँच चुकी थी कि गान्धारो को भारी पराजय मिली है और अब डेमिट्रियस अपनी सेना के साथ भाग रहा है। उन्होंने सगठित होकर भागते हुए गान्धार सैनिको पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। गान्धार-सेना पहले ही हतोत्साह हो चुकी थी, अब इस विपत्ति से घबरा उठी। भागती हुई जब वह स्थानेश्वर पहुँची तो नगर का द्वार उनको बन्द मिला। स्थानेश्वर के नागरिको ने, जिनकों यवनों की पराजय का समाचार मिल चुका था, नगर के द्वार बन्द कर लिये थे और उनको भीतर प्रवेश नहीं करने दिया।

विवश डेमिट्रियस ने थकी हुई सेना को नगर के बाहर विश्राम करने की आज्ञा दे दी। इस पर भी रात्रि के समय आसपास के देहातों के लोगों ने उन पर छापे डालने आरम्भ कर दिये।

आधी रात के समय उनमें यह समाचार फैल गया कि मागधी सेना

उनका पीछा करते हुए चली आ रही है और सवेरे तक उनके पास पहुँच जायगी। इस पर तो बचे-खुचे सैनिक उसी समय भाग खडे हुए। इनमें से अधिकांश देहातियों के हाथ में पड़ कर मार डाले गये।

इससे डेमिट्रियस इतना हताश हुआ कि वह अपने शेष बचे तीन-चार सौ साथियों को साथ ले परुषपुर के मार्ग पर चल पड़ा।

: ६ :

इस समय तक साकेत पर आक्रमण करने गये पचास सहस्र यवन-सैनिक पूर्णतया विनाश को प्राप्त हो चुके थे। वे दो सेनाओं के बीच घिर गये थे। एक ओर तो अवध सेना उनके विरोध मे खडी थी और दूसरी ओर पीछे से मगध-सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया था।

जब यवन-सेना के आक्रमण की सूचना अयोध्या पहुँची तो सब भय-भीत थे। वहाँ के नरेश प्रद्युम्न कुमार ने अपनी पूर्ण सेना अयोध्या के बाहर, यवन-सेना के विरोध मे खड़ी कर दी। यद्यपि अवध-सेना में सब वीर क्षत्रिय थे, इस पर भी यवनो का आतक सब पर छाया हुआ था। सब समझ रहे थे कि उनका अन्त समय आ पहुँचा है, इस पर भी अपने नरेश प्रद्युम्न कुमार को सबसे आगे, हाथ मे खड्ग लिए युद्ध करने को तैयार देख, सब उत्साह से भर लड़-मरने को तैयार हो रहे थे।

अभी यवन-सेना एक कोस के अन्तर पर ही थी कि उनको समाचार मिला कि यवन-सेना पर पीछे से मागधी-सेना ने आक्रमण कर दिया है। इसको सुअवसर जान प्रद्युम्न कुमार ने आगे से उन पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। परिणाम यह हुआ कि सूर्यास्त तक दो सेनाओं के भीतर पिस कर पूर्ण यवन-सेना विनाश को प्राप्त हो गई।

यवन-सेना के नष्ट होने पर मागधी-सेना और अवध-सेना एक-दूसरे के सामने आ गई। इस पर मगध के सेनापति ने श्वेत-पताका देकर एक दूत प्रद्युम्न कुमार के पास भेजा। दूत ने जाकर निवेदन किया, "श्रीमान् अवध-नरेश की सेवा में मागधी सेनापति का निवेदन है कि मगध तथा अवध परस्पर मित्र राज्य है। हमें केवल यवन-सेना को नष्ट करने का आदेश

है। अतएव हम अवध-सेना से युद्ध करना नही चाहते।

"हम चाहते है कि एक रात हमारी सेना यहाँ विश्राम करे। कल प्रात कल ही हमारी सेना वापस मगध राज्य को लौट जायगी।"

अवध-नरेश मगध-सेना का बहुत ही आभार मानता था। उसी के कारण अयोध्या की रक्षा हो सकी थी अन्यथा उनकी विजय अनिश्चित ही थी। उसने सेनापति को निमंत्रण देकर उससे मिलने की इच्छा प्रकट की। दोनो मिले और परस्पर मैत्री-भाव प्रकट कर विदा हुए। मगध-सेना के पड़ाव का पूर्ण प्रबन्ध अवध-सेना ने अपने ऊपर ले लिया। इस पर भी अगले दिन प्रात. ही मगध सेना लक्ष्मणपुर को लौट गई।

पुष्यमित्र ने एक सहस्र सैनिक कौशाम्बी मे छोड़, शेष सैनिकों के साथ अगले दिन ही इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान कर दिया था। परिणाम यह हुआ था कि अभी डेमिट्रियस हस्तिनापुर में अपनी सेना एकत्रित ही कर रहा था कि इन्द्रप्रस्थ पर मागधी सेना का अधिकार हो गया।

जब डेमिट्रियस अपने बचे हुए तीन चार-सौ सैनिकों के साथ सिन्धु पार कर अपनी जान बचाने का यत्न कर रहा था, पुष्यमित्र ने कौशाम्बी मे मत्रिमंडल की बैठक बुला ली।

अरुन्धति को जब पता चला कि साकेत भेजी हुई यवन-सेना पूर्ण विनाश को प्राप्त हुई है तो वह भी लक्ष्मणपुर से कौशाम्बी जा पहुँची। उसको यह जानकर विस्मय हुआ कि पुष्यमित्र उसकी गणना से भी शीघ्र युद्ध समाप्त करने के लिए कौशाम्बी से इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान कर चुका है।

एक दिन कौशाम्बी मे विश्राम कर वह भी इन्द्रप्रस्थ की ओर चल पडी, परन्तु मार्ग में ही पुष्यमित्र वहाँ से लौटता हुआ मिल गया।

पुष्यमित्र ने इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार करने के पश्चात् सेना के दो विभाग कर दिये थे। एक विभाग को डेमिट्रियस का पीछा करते हुए स्थानेश्वर तथा वहाँ से सिन्धु नदी तक अधिकार करने के लिये भेज दिया था तथा दूसरे को उसने काश्मीर पर अधिकार करने का आदेश दे दिया

था। स्वयं वह मंत्रिमंडल की बैठक के लिये कौशाम्बी लौट रहा था।

मार्ग में अरुन्धति से भेंट हो गई और अरुन्धति भी पुष्यमित्र के साथ वापस लौट पडी। लौटते हुए इस बात पर विचार होने लगा कि पूर्ण मगध राज्य का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाय। अरुन्धति का कहना था कि इस समर-विजय में जिन-जिन का हाथ है, उनको पुरस्कार मिलना चाहिये।

पुष्यमित्र ने कहा, "यह तो होना ही चाहिये। मेरे विचार में सर्व-प्रथम पुरस्कार पर तो देवी अरुन्धति का ही अधिकार है।"

"यह कैसे ? ऐसा प्रतीत होता है कि मगध-शासक अपने कार्य मे ऐसे व्यस्त रहे है कि उनको इस बात का ज्ञान ही नही रहा कि उनका कार्य-कर कौन रहा है ?"

"इसकी जाँच के लिये हमने गुप्तचर विभाग का अधिकारी एक अति योग्य व्यक्ति नियुक्त किया है। वह जिन-जिन को पुरस्कार का भागी समझे, उनकी सूची मत्रिमडल में उपस्थित कर दे। मत्रिमडल पुरस्कार का निश्चय कर देगा।"

"यही तो मेरा निवेदन है कि जिस विभाग का यह कार्य है, उससे पूछे बिना श्रीमान् अपने ही घरवालों को पुरस्कार देने का आयोजन कर रहे है।"

"ओह ! ठीक तो है।"

"हाँ, घर के प्राणियों के अतिरिक्त ऐसे सहस्रों प्राणी है, जिनको इस समर से किसी प्रकार का राजनीतिक लाभ नही प्राप्त होने वाला। उनका विचार भी तो करना ही होगा।"

"तो क्या इस देश मे ऐसे लोग भी है, जिनको कोई राजनीतिक लाभ नही प्राप्त होने वाला ?"

"हाँ है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिन्हे राज्य में कोई पदवी अथवा अधिकार प्राप्त नही करना। सहस्रों ने दिन-रात अथक और अद्‌भुत परिश्रम किया। जिससे यह आयोजन

सफल हो सके। सोने-चाँदी के टुकड़े अथवा झूठी मान-प्रतिष्ठा देने से उनको सन्तोष नही होगा।"

कौशाम्बी में पहुँच पहला कार्य जो सम्पन्न हुआ, वह अरुन्धति को मंत्रिमंडल मे लेना था। इसके पश्चात् एक घोषणा की गई, जिसमे उन सब व्यक्तियो के प्रति, जिन्होने वैतनिक अथवा अवैतनिक रूप में इस समर-कार्य मे सहयोग दिया था, आभार प्रदर्शित किया गया। कठिनाई वहाँ उपस्थित हुई, जब चुपचाप कार्य करने वालों की सूची तैयार की जाने लगी, जिससे उनको पुरस्कार दिया जा सके।

जाँच करने पर पता चला कि महर्षि पतंजलि के आश्रम के प्रत्येक व्यक्ति—युवा अथवा वृद्ध—ने किसी-न-किसी भाँति आन्दोलन को सफल बनाने का यत्न किया था। प्रायः युवक सेना मे भरती हो गये थे। वृद्धजन गाँव-गाँव मे फैल गये थे और लोगो के मन में बौद्ध भिक्षुओं द्वारा फैलाई भ्रान्तियो का निवारण करने लग गये थे। बौद्ध भिक्षु नवीन सेना का विरोध करते थे तथा महाराज बृहद्रथ की जय-जयकार बुलाते थे, जिससे नवीन सेना महाराज बृहद्रथ के विरुद्ध न हो सके। उनका यह भी प्रयत्न रहा था कि प्रजा के मन मे यवनो और गान्धारों के प्रति मित्रता की भावना बनी रहे। यह महर्षि के आश्रम के वृद्धजनों के ही प्रयास का परिणाम था कि महाराज बृहद्रथ की हत्या होने पर भी प्रजा ने शोक नही मनाया था और हर प्रकार से पुष्यमित्र की नवीन सेना का स्वागत किया था।

महर्षि जी को उनकी सेवाओ का पुरस्कार देना तो उनका अपमान करना था, परन्तु आश्रमवासियों की बात दूसरी थी। किस प्रकार उनको पुरस्कृत किया जाये, इसका निश्चय महर्षि जी पर ही छोड़ दिया गया और पडित अरुणदत्त महामात्य को कहा गया कि वे महर्षि जी से इस विषय में परामर्श करें।

: ७ :

महर्षि पतंजलि का कहना था कि देश से विदेशियों को निकाल देने

मात्र से ही देश तथा धर्म की समस्या सुलझ नही सकती। इसके लिए कुछ अन्य बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। उनका कहना था कि देश तो भारत-खड है। इसकी सीमाएँ सिन्धु नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र तक एक ओर तथा काश्मीर और तुषार शैलभू से लेकर कन्या कुमारी तक दूसरी ओर है।

"इतने बडे देश मे एक ही राज्य हो, ऐसा नही हो सकता। इस दिशा मे यत्न करने से वैमनस्य फैलने की ही संभावना है। इस पर भी भारत-खंड की एकता तो रहनी ही चाहिये। यह इस कारण कि भारतवासी एक राष्ट्र है। एक राष्ट्र की राजनीतिक अखडता हम उसी ढग से रख सकते हैं, जैसे प्राचीन काल मे हमारे इस भारत-खंड मे रखी जाती थी।

"यहाँ पर एक चक्रवर्ती राज्य स्थापित होना चाहिये। इसके लिये मेरी सम्मति यह है कि भारत के सब मुख्य-मुख्य राजाओं की एक सभा देश के किसी केन्द्रीय स्थान पर बुलाई जाय और सब मिलकर स्वेच्छा से एक को यहाँ का चक्रवर्ती राजा चुन लें। वह राजा और उसका राज्य देश की सुरक्षा का प्रबन्ध करे। अन्य राजा लोग इसमें उसकी सहायता करे।"

महर्षि अपनी सम्मति मत्रिमडल द्वारा नियुक्त एक समिति के सम्मुख रख रहे थे। इस समिति मे अरुन्धति तथा पडित अरुणदत्त थे। जब महर्षि ने अपनी योजना रखी तो अरुणदत्त ने पूछ लिया, "भगवन्! चक्रवर्ती राज्य तथा साम्राज्य मे क्या अन्तर है?"

"साम्राज्य मे भिन्न-भिन्न स्वतत्र राज्यो के लिये स्थान नही होता। चक्रवर्ती राज्य मे सब राज्य स्वतत्र होते है। देश की रक्षा के अवसर पर सब राज्य चक्रवर्ती राज्य की पताका के नीचे एकत्रित हो जाते है। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न राज्यो के झगड़े भी चक्रवर्ती राजा न्याय और सहिष्णुता से निपटाता है।

"जहाँ साम्राज्य देश के भिन्न-भिन्न राज्यों के ऊपर एक शासक राज्य का प्रतीक है, वहाँ चक्रवर्ती राज्यान्तर्गत तो, समान राष्ट्र वाले राज्य ही समान भाव मे आ सकते है।"

अरुन्धति का प्रश्न था, "परन्तु भगवन् ! इस सबका क्या अर्थ होगा, यदि सब राज्य परस्पर एकमत न हो सकें कि कौन राजा चक्रवर्ती हो ?"

"यह मै जानता हूँ। कभी भी कोई राजा स्वेच्छा से किसी दूसरे को अपने से बडा मानने को तैयार नही होता। इस पर भी यदि अधिक संख्या मे राज्य यह स्वीकार कर ले तो अन्य राज्यो को, जो चक्रवर्ती राज्य के अन्तर्गत आने को तैयार न हों, इसके लिये विवश किया जा सकता है।

"सभा मे यह बात तो होगी ही कि पहले सब को एकमत होने का अवसर मिलेगा।"

"तो भगवन् ! इस सभा का आयोजन किया जाना चाहिये।"

"हाँ, परन्तु उससे पूर्व पहले मगध के शासक का राज्याभिषेक होना चाहिये। इससे शासक राजा की पदवी पा जायेगा। तदनन्तर और यदि हो सके तो राज्यभिषेक के समय पर ही, इस सभा का आयोजन कर दिया जाय।

"यह स्वाभाविक है कि कुछ राजा लोग मगध के चक्रवर्ती होने का विरोध करेगे, परन्तु यह भी निश्चित है कि जिस कुशलता से मगध ने यवनों को परास्त कर, उन्हे सिन्धु के पार किया है, उससे कई राजा प्रभावित हुए होंगे और वे हमारे इस आयोजन में हमारा समर्थन करेगे। अतः राज्याभिषेक पर निमत्रण भेजने के लिये सूची बनाते समय अधिकांश ऐसे राजाओं को सम्मिलित करना चाहिये, जो हमारे पक्ष के हों।

"पश्चात् अश्वमेध यज्ञ किया जाये और जो राजा मगध-सम्राट् को चक्रवर्ती न माने, उनको इसके लिये विवश कर दिया जाय।"

महामात्य और अरुन्धति महर्षि से विचार-विनिमय कर लौट आये। इस समय तक मगध सेना की टुकड़ियाँ न केवल मुख्य-मुख्य नगरों मे नियुक्त हो चुकी थी, प्रत्युत भारत की सीमा, सिन्धु नदी के तट पर दुर्ग बनाने लगी थी।

मंत्रिमडल ने उस पूर्ण क्षेत्र को, जो यवनो से रिक्त कराया था, मगध-राज्य मे सम्मिलित कर, पूर्ण राज्य को आठ विभागों मे बाँट दिया था और

प्रत्येक विभाग का एक-एक आयुक्तक नियुक्त कर दिया था। इन आयुक्तकों को अपने-अपने विभाग में सेना-निर्माण करने की स्वीकृति दे दी गई थी। इन सब आयुक्तकों के ऊपर महामात्य तथा सेनापति की नियुक्ति कर दी गई थी।

जब पुष्यमित्र का पिता तथा अरुन्धति महर्षि से बातचीत कर वापिस लौटे तो पुष्यमित्र ने एक के पश्चात् एक मन्त्रिमण्डल की बैठकें आयोजित करनी आरम्भ कर दी। इनमे राज्याभिषेक तथा उस सभा का, जिसका महर्षि जी ने प्रस्ताव रखा था, कार्यक्रम आदि बनने लगा। इसमे तो सब लोग सहमत थे कि ऐसी सभा का आयोजन होना चाहिए और भारतवर्ष में चक्रवर्ती महाराज की प्रथा पुनः चले, परन्तु इसकी सफलता पर सबको सन्देह था। इस पर भी इस विषय मे प्रयत्न करने का निश्चय हो गया।

सब से पूर्व प्रजा-परिषद् मे पुष्यमित्र के राज्याभिषेक का प्रश्न उपस्थित करने का आयोजन करने का निश्चय हुआ और प्रजा-परिषद् की अध्यक्षता के लिये महर्षि जी से प्रार्थना कर दी गई।

प्रजा-परिषद् मे जहाँ प्रत्येक नगर और गाँव के प्रतिनिधि बुलाये गये, वहाँ प्रत्येक व्यवसाय और उद्योग के प्रतिनिधि भी आमन्त्रित किये गये। मन्त्रिमण्डल का यह विचार था कि इस प्रजा-परिषद् मे अभी चक्रवर्ती राज्य का प्रश्न उपस्थित न किया जाय। सबसे पूर्व पुष्यमित्र के राज्याभिषेक का निर्णय हो।

प्रजा-परिषद् मे महर्षि जी ने पुष्यमित्र के कार्य-कलापों का विस्तार से वर्णन कर तथा उसकी देश सम्बन्धी योजनाओं पर प्रकाश डाल, उसका नाम मगध के राजा के रूप मे प्रस्तुत कर दिया। पुष्यमित्र के पक्ष मे इतना प्रबल मत था कि उसका नाम निर्विरोध स्वीकार हो गया।

इसके पश्चात् राज्याभिषेक की तिथि निश्चित की गई और प्रजा परिषद् विसर्जित कर दी गई।

परन्तु महर्षि राज्याभिषेक से पूर्व एक अन्य कार्य सम्पन्न करना चाहते थे। इस कारण प्रजा-परिषद् के विसर्जन के पश्चात् उन्होने पंडित अरुण-

दत्त से भेंट की और कहा, "पंडित अरुणदत्त ! पुष्यमित्र को बुलाओ। हम उसके राज्याभिषेक से पूर्व एक अन्य बात का निश्चय करना आवश्यक समझते है।"

अरुणदत्त महर्षि जी के इस आदेश से समझ गया कि यह पुष्यमित्र के विवाह की ही बात है, जिसका वे निश्चय करना चाहते है। उसने पुष्यमित्र को बुला भेजा। पुष्यमित्र के आने पर महर्षि ने कहा, "मगध के शासक को मगध की राजगद्दी पर बैठाने का निर्णय प्रजा परिषद् ने कर लिया है, परन्तु पत्नी के बिना कोई भी यज्ञ पूर्ण नही होता। अतएव हम चाहते है कि मगध शासक के विवाह का निर्णय भी हो जाना चाहिये।"

"भगवन् ! माँ ने मेरे लिए एक कन्या का चुनाव कर लिया है। मैं उस चुनाव को स्वीकार कर चुका हूँ। अतएव विवाह के विषय मे माता जी से ही निश्चय होना चाहिये।"

भगवती और अरुन्धति को बुलाया गया। जब अरुन्धति आई तो महर्षि ने पुष्यमित्र तथा उसको आशीर्वाद दे दिया।

: ८ :

अब पाटलिपुत्र मे उत्सवो की भरमार हो गई। सबसे पूर्व विजयोत्सव ही मनाया गया था। यह उत्सव पूर्ण राज्य में, प्रत्येक नगर मे स्थान-स्थान पर मनाया गया। दूसरा उत्सव था पुष्यमित्र के विवाह का और उसके पश्चात् राज्याभिषेक उत्सव की तैयारी होनी थी।

पुष्यमित्र के विवाह पर उत्सव केवल पाटलिपुत्र तक ही सीमित रखा गया।

यद्यपि प्रजा-परिषद् ने सर्व सम्मति से पुष्यमित्र का नाम राजा के रूप में स्वीकार कर लिया था, इस पर भी प्रजा का एक अंश इससे असन्तुष्ट था। यह अंश बौद्धों से प्रभावित होने के कारण अपना असन्तोष प्रजा में फैला रहा था।

एक बात तो निश्चित थी कि राज्य में व्यवसाय सुचारु रूप से चल रहा था। सुख-सम्पदा का विस्तार हो रहा था। अतएव राज्य की निन्दा

का प्रभाव बिल्कुल नही पड़ सकता था। हाँ, पुष्यमित्र के ऊपर लाँछन लगाने का प्रयत्न किया जाने लगा।

एक सेट्ठी की दुकान पर इसी विषय पर दो ग्राहक बातचीत कर रहे थे। एक ग्राहक ने कहा, "कलियुग आ गया है। तभी तो ब्राह्मण राजा होने लगे है।"

इस पर दूसरे ने कह दिया, "हाँ भाई! और शूद्र ब्राह्मण हो गये है।"

पहिले ने पूछ लिया, "कौन शूद्र ब्राह्मण हो गया है?"

"भिक्षु बादरायण।"

"वह शूद्र है क्या? किसका पुत्र है वह?"

"किसी अज्ञात माता-पिता का। तभी तो उसको शूद्र कहता हूँ।"

"वाह! जिसके माता-पिता का ज्ञान न हो, वह शूद्र कैसे हो गया?"

"जब माता-पिता का ज्ञान न हो और कर्म सदिग्ध हों, तब कहा ही क्या जा सकता है?"

"क्या बुरा कर्म किया है उसने?"

"एक दास प्रवृत्ति के व्यक्ति के कर्म, स्वार्थ, भय, तथा मूर्खता के आधार पर स्थिर होते है। ये सब महाप्रभु के कर्मों मे ठीक बैठते है। इसी कारण उसको शूद्र की पदवी देता हूँ।"

इस वाद-विवाद को सुन सेट्ठी, जिसकी दुकान पर वे ग्राहक खड़े थे, खिलखिलाकर हँस पडा। इस पर तो दोनो ग्राहक उसका मुख देखने लगे। उस सेट्ठी ने कहा, "यदि आप रुष्ट न हों तो एक बात पूछूँ? क्या आपके विवाह हो चुके है?"

दोनों ने बताया कि हो चुके है। इस पर सेट्ठी ने पूछ लिया, "सन्तान भी होगी?"

इसका उत्तर भी 'हाँ' मे मिला।

"कुछ काम-धधा करके आय भी होती है क्या?"

"हाँ, भगवान की कृपा है।"

"अच्छा, तो यह बताओ कि यदि यहाँ यवन आ जाते और वही

कुछ करते, जो उन्होंने कौशाम्बी में किया था, तब तो बड़े आनन्द मे रहते न ?"

इस पर महाप्रभु की निन्दा करने वाले ने कह दिया, "आनन्द में तो अब है।"

दूसरे ने कहा, "परन्तु इस बात का श्रेय क्या पंडित पुष्यमित्र को है ?"

"तो और किसको है ?" दूसरे ने कह दिया।

सेट्ठी ने पुनः वार्तालाप मे भाग लेते हुए कहा, "देखो भाई ! राज्य-कार्य बडा विकट है। इसमे सहस्रों व्यक्ति मिल कर कार्य करते है। सब अपने-अपने भाग का कार्य सुचारु रूप से करते है तो राज्य मे सुख-सम्पदा का विस्तार होता है। यदि कोई एक भी अपने कार्य मे आलस्य, प्रमाद आदि करे तो काम बिगड़ जाता है।

"पुष्यमित्र ने राज्य के हित मे कार्य करने वालों को एक सूत्र मे बाँध दिया है।"

इस प्रकार की चर्चा स्थान-स्थान पर चलती थी और प्रजा के बीच मे से ही निन्दा करने वालों का खडन करने का प्रयत्न भी होता रहता था। पुष्यमित्र पर लांछन यह भी था कि उसने राज्य की उच्च पदवियाँ अपने घर वालों मे ही वितरित कर दी हैं, वह अभी अल्पायु है, उसका सम्बन्ध अरुन्धति से है। अरुन्धति एक ब्राह्मण कन्या नहीं है—इत्यादि।

इस प्रकार की सूचनाएँ गुप्तचरों द्वारा मंत्रि-मंडल के पास पहुँचती थी और गुप्तचरों का यह भी कहना था कि इनका स्रोत पद्मा-विहार है तथा वे सेवक हैं, जो पहले बृहद्रथ के काल में राज्य-भवन मे सेवा-कार्य करते थे और अब वहाँ पर नही रहे थे।

विवाहोत्सव समीप आने पर अरुन्धति ने गुप्तचर-विभाग शंखपाद के अधीन कर दिया। अभी तक शंखपाद महाप्रभु के पास उपासक बन कर ही रहता था, परन्तु उसका इस प्रकार उनको छोड़कर गुप्तचर-विभाग में आना, सबको विस्मय मे डालने वाला सिद्ध हुआ। केवल अरुन्धति और

पुष्यमित्र ही जानते थे कि उनकी योजना की सफलता में उसका कितना हाथ है।

महाप्रभु तो शंखपाद की नियुक्ति पर अति क्रोधित हुआ। वह समझ गया कि उसी के कारण उसकी सभी योजनाएं असफल हुई हैं।

शंखपाद पद्मा-विहार तथा अन्य षड्यत्र के स्थलो एव व्यक्तियो से भली-भाँति परिचित था। इस कारण उसको सब पर दृष्टि रखने मे कठिनाई नही हुई।

यह सूचना आई थी कि विवाह और राज्याभिषेक के बीच काल मे किसी दिन पुष्यमित्र की हत्या का षड्यंत्र बनाया जा रहा है। यह वृहद्रथ की हत्या के प्रतिकार में था। शतधन्वन् का, एक दासी से, एक पुत्र महेन्द्र था। उसको कही से ढूंढ कर लाया गया और पुष्यमित्र के स्थान पर उसको राज्य पर बैठाने का विचार होने लगा।

यद्यपि इस षड्यत्र को चलाने वाले बौद्ध भिक्षु थे, परन्तु इसके समर्थन के लिये बृहद्रथ के सम्बन्धियों को एकत्रित करने का यत्न किया गया। बृहद्रथ की द्वितीय रानी सौम्या इसमे सम्मिलित हुई तो महेन्द्र का विचार छोड़ना पड़ा और सौम्या को मगध की महारानी घोषित करना स्वीकार हो गया।

जब शखपाद महाप्रभु के साथ था, तब ही षड्यंत्र का चिन्तन हो रहा था। शखपाद इसको अभी दूर से ही देख रहा था कि उसको राज्य के गुप्तचर-विभाग में कार्य करने के लिये आना पडा। इस पर भी उसको इस षड्यंत्र की सम्भावना थी। इस कारण उसने गुप्तचर-विभाग मे आते ही कुछ चुने हुए गुप्तचर उन व्यक्तियों के साथ लगा दिये, जिनकी इस षड्यत्र मे भाग लेने की सम्भावना थी।

वृहद्रथ की द्वितीय रानी सौम्या इस षड्यंत्र की धुरी बनी हुई थी। बृहद्रथ की मृत्यु के पश्चात् वह भिक्षुणी बन चुकी थी और पूर्ण रूप से बौद्ध महाप्रभु बादरायण के प्रभाव मे थी। उसने, महाप्रभु की सम्मति से कुछ सैनिक इस षड्यंत्र में सम्मिलित करने के लिये, अपने पिता वीरभद्र

को भी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित करने का विचार कर लिया।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक दिन वह अपने घर जा पहुँची और वीरभद्र के सम्मुख पुष्यमित्र की निन्दा करने लगी। उसने अपने पिता से कहा, "पिताजी! मेरे हृदय को तब ही शान्ति मिलेगी, जब पुष्यमित्र का सिर वैसे ही मेरे चरणों मे आकर गिरेगा, जैसे महाराज का उसके पाँव में गिरा था।"

वृहद्रथ की हत्या के समय वीरभद्र भी वहाँ उपस्थित था। उसने सेना मे, अपनी पंक्ति में खड़े-खड़े वह पूर्ण दृष्य देखा था। इस कारण उसने कहा, "बेटी सौम्या! तुम्हारे दुःख को मै अनुभव करता हूँ, परन्तु तुमने कभी उन स्त्रियों के दुःख का अनुमान लगाया है, जिनके पतियों को यवनों ने कौशाम्बी मे अथवा अन्य स्थानों पर मृत्यु के घाट उतारा था?"

"परन्तु पिताजी! उनका महाराज के साथ क्या सम्बन्ध था?"

"तुम्हारा पति महाराज उन यवनों को दड देने के लिये सेना भेजने मे बाधा बना हुआ था। वह उन यवन आतताइयो को दड से बचाने में सदा यत्न-शील रहा है।"

"दड तो प्रकृति देती है, मनुष्य इसमे क्यों अपना हाथ गदा करे?"

"यही तो मैं कह रहा हूँ। तुम्हारा पति प्रकृति के मार्ग मे बाधा बन रहा था। प्रकृति ने उसको मार्ग से एक ओर हटा दिया। अब तुम प्रकृति के मार्ग में बाधा बनने की इच्छा कर रही हो। स्मरण रखो, तुम्हारा भी वही परिणाम हो सकता है, जो उस भीरु बृहद्रथ का हुआ था।"

"नहीं पिताजी! आपके समझने में भूल है। देखिये, मैं आपके पास आई हूँ कि आप मेरे पति की हत्या का प्रतिकार लेंगे। यदि आप यह मेरा काम नही करेंगे तो फिर मेरे जीने का प्रयोजन ही क्या है? मै इससे तो भूखी रह कर मर जाना पसन्द करूँगी।"

वीरभद्र इसको धमकी मात्र ही समझता था, परन्तु अगले ही दिन से सौम्या ने वीरभद्र के घर पर ही, भूखे रहकर प्राण त्याग करने का निश्चय कर लिया।

: ६ :

ज्यों-ज्यों विवाहोत्सव समीप आता गया, षड्यंत्र मे गंभीरता आती गई और अनेक दिशाओ से इसकी सूचना आने लगी। इन सूचनाओं को शंखपाद एकत्रित कर, इनसे षड्यंत्र की रूपरेखा का अनुमान लगाता और तत्पश्चात् इसका परिचय मंत्रिमडल को देता।

शखपाद को यह सूचना मिल चुकी थी कि जब सौम्या भूख से मरणा-सन्न हो गई तो वीरभद्र अपनी लड़की के प्रति स्नेह के वशीभूत हो मान गया था। इस कारण वीरभद्र के ऊपर विशेष देख-रेख रखी जाने लगी।

अन्तिम समाचार इस विषय में यह आया कि हत्या का समय विवा-होत्सव के पश्चात् राज्याभिषेक के अवसर पर, ठीक उस समय निश्चित हुआ है, जब पुष्यमित्र तिलक के पश्चात् सिहासनारूढ़ होने लगे। इस सूचना के मिलने पर भी वीरभद्र को बदी बनाना उचित नही समझा गया। शखपाद का कहना था कि पहले ही बदी बना लेने पर प्रजा मे असन्तोष फैलेगा, जिसका लाभ उठाकर षड्यंत्रकारी प्रजा को भडका सकेंगे। हत्यारे को अपराध करते समय पकड़ने का निश्चय किया गया। साथ ही वीरभद्र के साथियों का भी पता किया जा रहा था।

विवाह-सस्कार सायकाल राज्य-भवन के प्रागण मे होना था। आँगन को पताका, तोरण, पुष्प-पत्र आदि से सुसज्जित किया गया था। पूर्ण प्रागण पर एक सप्त रग का कौशेय वितान लगाया गया था और उसके नीचे विवाह-वेदी रखी गई थी।

अरुन्धति अपने आगार मे इस संस्कार के लिये तैयार हो रही थी। उसकी कुछ सखियाँ, जो आश्रम में उसकी सहपाठिनी थी, उसका शृंगार कर रही थी। इसी समय एक प्रतिहारिन ने आकर सूचना दी कि एक स्त्री राज्य-भवन-द्वार पर आई है और देवी से इसी समय भेंट करने की आज्ञा माँग रही है। उसने अपना नाम-धाम नही बताया।

अरुन्धति ने कुछ क्षण तक विचार किया और उसके पश्चात् कहा, "उसको सुरक्षा से ऊपर ले आओ।"

प्रतिहारिन गई और दो सुभट्टों के साथ वह स्त्री लाकर अरुन्धति के सम्मुख उपस्थित कर दी गई। इस समय तक अरुन्धति का शृंगार पूर्ण हो चुका था और वह वेदी पर जाकर बैठने के लिये तैयार हो चुकी थी।

उस स्त्री को सामने खड़े देख अरुन्धति ने पूछा, "हाँ, बताओ क्या बात है ?"

"एकान्त में निवेदन करना चाहती हूँ।" स्त्री की आवाज़ भर्राई हुई थी। अरुन्धति को ऐसा समझ आया कि वह रो पड़ेगी। स्त्री प्रौढावस्था में थी, परन्तु बहुत ही दुर्बल प्रतीत हो रही थी। उसका मुख पीत वर्ण हो रहा था और होठ काँप रहे थे।

अरुन्धति ने देखा कि वह किसी प्रकार की भी हानि करने के अयोग्य है। अतः उसको लेकर वह भीतर के आगार में चली गई। भीतर पहुँच उस स्त्री ने आगार का द्वार बंद कर लिया और भूमि पर बैठ बिल्कुल हो रोने लगी।

अरुन्धति ने उसको चुप कराते हुए कहा, "देवी ! क्या बात है ? निःशंक हो कर स्पष्ट कहो। तुम देखती हो, यह मेरे जीवन की अत्यन्त मधुर घड़ी है। बताओ क्या चाहती हो ?"

उस स्त्री ने अभी भी रोते हुए कहा, "मैं अपने सुहाग का दान माँगती हूँ।"

अरुन्धति ने समझा कि कदाचित् इसका पति किसी अपराध में बंदी बना लिया गया है और उसके लिये यह क्षमा माँगना चाहती है। अतएव वह विचार में पड़ गई कि धर्म-व्यवस्था के अनुसार इसको कैसे वचन दे। कुछ विचार कर उसने कहा, "देवी ! न्याय तो अपना मार्ग बनायेगा। हाँ, जब महाराज से दया की प्रार्थना की जायगी, तो तुम्हारी माँग पूरी कर दी जायगी। महाराज दया कर सकते है और यह तुम पर कर दी जायगी।"

इस पर उस स्त्री ने अरुन्धति के चरण-स्पर्श करके कहा, "मैं बृहद्रथ महाराज की दूसरी पत्नी सौम्या की माँ और सेनानायक वीरभद्र की पत्नी हूँ।

"मेरे पति ने सौम्या के कहने पर महाराज की हत्या करने का निश्चय किया है। हत्या करने के लिये वे एक झूंठे प्रवेश-पत्र को लेकर आ रहे हैं और महाराज की हत्या के लिये कटिबद्ध है।

"जैसे मै स्वयं विधवा होना नही चाहती, वैसे ही मै किसी भी नारी का सुहाग लुटते नही देख सकती। इसी कारण मै सूचना देने चली आई हूँ। परन्तु इसके प्रतिकार मे मैं अपने सुहाग की भिक्षा माँगती हूँ। बेटी ! तुम नारी हो और एक नारी के भावों को समझ सकती हो।"

अरुन्धति कर्तव्य-विमूढ एक क्षण के लिये अनिश्चित सी रही। तत्पश्चात् तुरंत अपने को सम्भाल कर उसने कहा, "देवी ! जिसके लिये तुम दया की भीख माँग रही हो, वह एक अत्यन्त ही घृणित कार्य करने जा रहा है। इस कारण नही कि वह मेरे होने वाले पति की हत्या करने जा रहा है, प्रत्युत इस कारण कि वह देश को एक महापुरुष की सेवाओं से वंचित करने का प्रयत्न कर रहा है।

"परन्तु अब मै तुमको वचन दे चुकी हूँ और मैं इसका पालन करूँगी। मेरी सम्मति है कि अभी तुम यही बैठो। अब समय नही रहा और बाहर जाना भी सुगम नही। तुम्हारे जलपान का प्रबन्ध यही हो जायगा और कुछ समय पश्चात्, कदाचित, तुम्हे तुम्हारे पति के साथ ही विदा कर सकूं।"

इतना कह अरुन्धति उस आगार से बाहर आई और प्रतिहारिन को उसने उस स्त्री के विषय में उचित निर्देश दे दिया। पश्चात् उसने शंख-पाद को बुला भेजा और सारी घटना उससे कह सुनाई।

इसका परिणाम यह हुआ कि दो सहस्र अभ्यागतों में वीरभद्र की खोज होने लगी। वीरभद्र को पहचान सकने वाले कई गुप्तचर वहाँ उपस्थित थे और उन्होंने चौथाई घड़ी में उसको एक सेट्ठी के वस्त्रों में बैठे, पहिचान लिया।

विवाह का समय हो गया था। वर तथा वधू की प्रतीक्षा की जा रही थी और विवाह-संस्कार कराने के लिये आचार्य श्वेताश्वर अपने पाँच शिष्यों के साथ विराजमान थे।

इस समय एक हृष्ट-पुष्ट युवक भीड़ को चीरता हुआ वेदी के समीप आया और वहाँ सेट्ठी के वस्त्र पहने हुए वीरभद्र को बुलाकर बाहर ले गया। वह युवक वीरभद्र को भवन के गुप्तचर कार्यालय में ले गया। वहाँ शखपाद बैठा हुआ उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब वीरभद्र उसके पास पहुँचा तो उसको पहिचान कर शंखपाद ने कहा, "वीरभद्र जी ! यह क्या पहिरावा पहिना हुआ है आपने ?"

वीरभद्र ने कहा, "मै लक्ष्मीचन्द्र हूँ। आप क्या कह रहे है ?"

"ओह ! भूल हो गई। क्षमा कीजिये, आपका प्रवेश-पत्र कहाँ है ?"

वीरभद्र ने लक्ष्मीचन्द्र के नाम का प्रवेश-पत्र शंखपाद को दिखा दिया। शंखपाद ने प्रवेश-पत्र देख, एक अश्वारोही को सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र के घर, उनके घर से किसी को बुला लाने के लिये भेज दिया, जो सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र की पहिचान कर भ्रम-निवारण कर सके।

कुछ देर तक वीरभद्र वहाँ बैठा रहा। उसके पश्चात् कहने लगा, "वहाँ विवाह-सस्कार आरम्भ हो गया है और मैं उसमें सम्मिलित होने के लिये आया हूँ।"

"विवाह अभी आधा प्रहर चलेगा और हम आपको आधी घड़ी में वहाँ ले जायँगे।"

"परन्तु बात क्या है ? कुछ पता भी तो चले ?"

"बात यह है कि आप भूतपूर्व महाराज बृहद्रथ के स्वसुर वीरभद्र है, परन्तु आप कह रहे है कि आप सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र है। आपने सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र को कहाँ रोक रखा है, यह जानना आवश्यक है। हमको उनके जीवन का भय लग गया है।"

"तो मै हत्यारा हूँ ?"

"यह मै अभी नही बता सकता।"

कुछ काल पश्चात् वह अश्वारोही एक युवक को अपने साथ लाया और कहने लगा, "सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र का यह सुपुत्र है।"

उस युवक ने वीरभद्र को देख विस्मय में पूछा, "क्या बात है पिताजी !

यहाँ आप कैसे बैठे है ?"

"देखो बेटा ! ये कहते हैं कि मैं तुम्हारा पिता नहीं हूँ और वीरभद्र हूँ।"

इस बातचीत को सुन शखपाद विस्मय मे उन दोनों का मुख देखता रह गया। इस समय युवक ने कहा, "ये मेरे पिता है और इनका ही नाम लक्ष्मीचन्द्र है।"

शंखपाद ने समझा कि वीरभद्र को पहिचानने में भूल हो गई है। इस कारण उसने पिता-पुत्र दोनों से क्षमा माँगी और सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र को विवाह उत्सव मे जाने की स्वीकृति दे दी।

अब पुनः वीरभद्र की खोज होने लगी।

विवाह-सस्कार समाप्त हुआ तो सब उपस्थित अभ्यागत पुष्यमित्र और उसकी पत्नी को भेंट देने लगे। सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र भी भेट में देने के लिये एक चाँदी की संदूकची लाया था। अपने स्थान से उठकर वह उपस्थित अभ्यागतों को सबोधित कर कहने लगा, "मगध के भद्र नागरिको ! मैं महर्षि पतंजलि का शिष्य हूँ। वे स्वयं इस यज्ञ मे सम्मिलित हो, वर-वधू को आशीर्वाद देना चाहते थे, परन्तु किसी कार्य-विशेष से वे स्वयं नहीं आ सके और उन्होंने मुझको अपना प्रतिनिधि बनाकर यहाँ भेजा है। मैं महर्षि की ओर से आशीर्वाद के रूप मे मगध-शासक पडित पुष्यमित्र शुंग तथा उनकी धर्मपत्नी देवी अरुन्धति को यह भेंट देता हूँ।"

इतना कह उसने एक चाँदी की सन्दूकची दोनों हाथों से पकड़ कर पुष्यमित्र को पकड़ाने के लिये आगे की। पुष्यमित्र ने आदर-भाव से कुछ झुक कर दोनों हाथों से संदूकची पकड़ ली। इस समय सदूकची छोड़कर सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र ने संदूकची के नीचे से एक तीक्ष्ण कटार निकाली और पुष्यमित्र की पसली पर वार कर दिया। परन्तु उसका हाथ अभी पसलियों से दूर ही था कि अरुन्धति ने लपक कर पकड़ लिया।

जिस समय लक्ष्मीचन्द्र ने अपना वक्तव्य समाप्त किया था, अरुन्धति बड़े ध्यान से उसको देख रही थी। जब लक्ष्मीचन्द्र ने अपने-आपको महर्षि पतंजलि का शिष्य कहा था, अरुन्धति को उसी समय उस पर संदेह हो

गया था। उसने महर्षिजी के आश्रम में इस रूपरेखा का कोई शिष्य नहीं देखा था और न ही महर्षिजी के मुख से कभी लक्ष्मीचन्द्र का नाम सुना था। वह विचार करती थी कि कदाचित् यह उसके काल से पहिले का कोई शिष्य हो। इस पर भी उसका सन्देह बना हुआ था।

जब लक्ष्मीचन्द्र ने संदूकची पुष्यमित्र के हाथ मे पकड़ा कर संदूकची के नीचे कटार निकालने के लिये हाथ डाला, तो उसी समय अरुन्धति समझ गई कि क्या करने जा रहा है। जब लक्ष्मीचन्द्र ने वार करने के लिये हाथ उठाया तो वह आगे हो कर उसका हाथ रोकने के लिये तैयार थी।

लक्ष्मीचन्द्र, जो वास्तव मे वीरभद्र ही था, हृष्टपुष्ट था और अरुन्धति एक लड़की थी। इस कारण उसका वार तो हुआ, परन्तु अरुन्धति के हाथ पकड़ने के कारण निशाना चूक गया। कटार पुष्यमित्र को लगने के स्थान चौकी की पीठ पर लगी और उसके पतरे को चीरती हुई उसमे धँस गई। वीरभद्र ने कटार को खीचकर चौकी मे से निकाला और पुनः वार करना चाहा, परन्तु इस समय सुरक्षा-दल के लोगो ने आगे बढकर उसको पकड़ लिया।

: १० :

जब सौम्या की अवस्था अनशन से चिन्ताजनक हो गई तो वीरभद्र का मन डोल गया। उसकी पत्नी पद्मा यह तो जानती थी कि उसकी लड़की अपने पिता को किसी कार्य में सम्मिलित करने के लिये अनशन कर रही है, परन्तु उसको यह विदित नही था कि यह षड्यंत्र है और किसी के विरुद्ध है।

वीरभद्र ने पुनः सौम्या को समझाने का यत्न किया। उसने कहा, "देखो सौम्या ! बृहद्रथ महाराज की हत्या पुष्यमित्र ने नही की। वह तो अन्त तक महाराज से कहता रहा है कि वे नवीन सेना को भेट स्वरूप स्वीकार कर लें और यवनों से युद्ध की घोषणा कर दें। बृहद्रथ ने न केवल भेंट अस्वीकार की, प्रत्युत उसको बंदी बनाने की भी आज्ञा दे दी। इसी के परिणामस्वरूप एक सेना-नायक ने उसकी हत्या की थी। इसमें पुष्य-

मित्र का अपराध कैसे हो गया ?"

"नही पिताजी ! वह उन सबका नेता था । नवीन सेना का वह सेनापति था और उसी का यह षड्यंत्र था । उसको क्या अधिकार था कि महाराज को विवश करे । युद्ध करना अथवा न करना तो अपनी आत्मा और विश्वासों की बात है । कोई किसी को अपने विश्वासों के विरुद्ध कार्य करने पर विवश क्यो करे ?"

"यह कोई और किसी का प्रश्न नही है सौम्या ! यह एक राज्याधिकारी की बात थी। देश मे रहने वाले नागरिकों के जीवन तथा उनकी धन-सम्पदा की रक्षा का प्रश्न था । यदि महाराज बृहद्रथ यह समझते थे कि उनकी आत्मा युद्ध करने से सहमत नही, तो उनको राज्य-गद्दी छोड़ देनी चाहिये थी। वह राजा बने रहे । प्रजा से कर प्राप्त कर अपने परिवार का पालन-पोषण करते रहे और अपने कर्तव्य-पालन से पीछे हटते रहे । पुष्यमित्र प्रजा का प्रतिनिधि था । उसने तो बृहद्रथ को राजगद्दी से उतार कर बंदी बनाने की आज्ञा दी थी, क्योकि बृहद्रथ न तो कर्तव्य-पालन कर रहा था और न ही राजगद्दी छोडना चाहता था । यह सर्वथा अनुचित था। हत्या तो उसके भागने के प्रयत्न के पश्चात् हुई थी ।"

"नहीं, पुष्यमित्र का कोई अधिकार नही था ।"

यह कोई युक्ति नही थी, हठ था । जब वीरभद्र ने देखा कि सौम्या उसके सम्मुख मरणासन्न पड़ी है और जब तक वह इस षड्यत्र में सम्मिलित नहीं होता, वह हठ नही छोड़ेगी तो उसका स्नेह उमड़ आया । उसने षड्यंत्र में सम्मिलित होने का वचन दे दिया ।

षड्यंत्र वृद्धि पाने लगा और इसमें कई सैनिक सम्मिलित हो गये । कुछ सेट्ठियों ने भी इसमें सहयोग देने का वचन दे दिया । वीरभद्र के कन्धों पर पुष्यमित्र की हत्या का भार डाला गया । महाप्रभु का कहना था कि वह पुष्यमित्र की हत्या के पश्चात् अपने आपको मगध का शासक घोषित कर दे ।

परन्तु वीरभद्र जानता था कि यह संभव नहीं । हत्या के पश्चात् वह

बंदी बना लिया जायगा और कदाचित् उसी समय महाराज के सुरक्षा दल के लोग उसकी हत्या कर देगे। राज्य हथियाना तो कदापि सभव नही था। लक्ष-लक्षसेना सेनापति विद्रुम के अधीन है और फिर महामात्य अरुण-दत्त तथा मत्रिमडल के अन्य सदस्य, कोई भी तो उसके पक्ष में नही। वह षड्यत्र में महाराज बनने के लिए सम्मिलित नहीं हो रहा था, प्रत्युत् केवल सौम्या के प्रति स्नेह के कारण वह अपना जीवन निछावर करने को तैयार हो गया था।

हत्या का दिन ज्यों-ज्यों समीप आता गया, वीरभद्र के मन की चंचलता बढती गयी। इस कारण वीरभद्र ने यह निश्चय किया कि जो भी प्रथम अव-सर उसको मिलेगा, वह हत्या कर देगा। उसका कहना था कि विलम्ब करने के साथ-साथ षडयत्र के प्रकट होने की सभावना बढ़ती जायगी।

वीरभद्र की पत्नी पद्मा अपने पति की चचलता को अनुभव कर रही थी। उसको षड्यंत्र के विषय मे पूरा ज्ञान नही था। वह यह देखती रहती थी कि पिता तथा पुत्री गुप्त वार्त्ता करते रहते हैं। अन्तिम रात्रि, हत्या से पूर्व उसने अपने पति को बहुत ही बेचैनी से रात व्यतीत करते देखा। उस रात वीरभद्र सो नही सका और सारी रात करवटें बदलता रहा। इससे पद्मा को सदेह हो गया कि कदाचित् कोई भयंकर घटना घटने वाली है। उसने निश्चय कर लिया कि वह अपने पति की गति-विधि के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करके रहेगी।

अगले दिन सौम्या विहार से आई और अपने पिता के आगार मे उससे मिलने चली गई। वीरभद्र बाहर गया हुआ था। मध्याह्न के समय वह आया तो आगार को बद कर सौम्या से वार्तालाप करने लगा। पद्मा द्वार के साथ कान लगा कर खड़ी हो गयी।

सौम्या कह रही थी, "हमारे सब साथी यह मान गये है कि हत्या आज ही की जाय। विवाह के पश्चात् आप पुष्यमित्र को भेंट देने जायंगे। उसी समय यह कार्य आपको करना है। वहां उपस्थित अभ्यागतों में कई हमारे साथी होगे और हत्या के तुरन्त पश्चात् वे आपको सुरक्षा से उपा-

सक महावीर के गृह पर ले जायँगे और वहाँ इस बात की घोषणा कर दी जायगी कि आप मगध के शासक है। सारे राज्य मे बौद्ध उपासक आपको राजा मान विप्लव कर देंगे।"

इस पर वीरभद्र ने कहा, "देखो सौम्या ! हत्या के पश्चात् क्या होगा और कौन शासक बनेगा, यह देखना मेरा काम नही। मैं तो एक बात जानता हूँ कि तुम्हारा बृहद्रथ से विवाह मेरी बड़ी भारी भूल थी। अब मैं तुम्हारे पति के हत्यारे की हत्या कर उस भूल का प्रायश्चित करूँगा। शीघ्रातिशीघ्र इस कार्य को सम्पन्न कर मै अपने मन की शान्ति चाहता हूँ।"

"ठीक है पिता जी ! आपको राजा बनाना हमारा काम है और वह हम करेंगे। विवाह के अवसर पर राज्य-भवन के भीतर जाने का प्रवेश-पत्र मै ले आई हूँ। सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र बौद्ध उपासक तो है, परन्तु पुष्यमित्र के प्रशसको में से है। इसी कारण यह प्रवेश-पत्र उसी के नाम का है, जिससे सदेह न हो। उसको महाप्रभु ने कार्यवश विहार में बुलवा कर वहाँ बंदी बना लिया है और उसका प्रवेश-पत्र उससे छीनकर मुझे दे दिया है। आपने सेट्ठियों के से वस्त्र पहिन, सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र बनकर वहाँ जाना है।

"सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र के घर पर हमारा एक युवक कार्यकर्ता रहेगा, जिससे यदि कोई पूछताछ हुई तो वह उचित उत्तर दे सकेगा।"

वीरभद्र ने प्रवेश-पत्र ले लिया और विवाह पर जाने की तैयारी करने लगा।

पद्मा ने सारी बात सुन ली थी। इससे उसका हृदय बैठने लगा। एक तो वह भी नवीन राज्य के पक्ष में थी और नही चाहती थी कि पुष्य-मित्र की हत्या हो। दूसरा उसको विश्वास हो गया था कि हत्या के पश्चात् वीरभद्र को सूली पर चढ़ा दिया जायगा और वह विधवा हो जायगी। इससे उसका मन डोल उठा और इस सम्पूर्ण घटना में उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया।

जब वीरभद्र सेट्ठियों के से वस्त्र पहन विवाहोत्सव पर गया तो वह

अवसर पा, देवी अरुन्धति से भेंट करने के लिए चल पडी ।

: ११ :

वीरभद्र को बंदी बनाकर पुनः भवन के कार्यालय मे लाया गया । दूसरी ओर विवाह का शेष कार्यक्रम चलता रहा । विवाह के पश्चात् सब अभ्यागतों के लिये एक बृहत् भोज का प्रबन्ध था । भोज तीन घडी तक चला और उसके पश्चात् धीरे-धीरे सब अभ्यागत विदा हो गये । इस समय अरुन्धति को अपराधी का स्मरण हो आया । वह अभी तक राज्य-भवन के कार्यालय मे बदी बना कर बैठाया हुआ था । अरुन्धति तथा पुष्य-मित्र दोनों वहाँ पहुँचे । शंखपाद उनको देख अपनी असफलता पर लज्जा अनुभव कर रहा था । उसने उनको वीरभद्र के पकडे जाने तथा लक्ष्मी-चन्द्र के घर से एक युवक के आकर साक्षी देने की कि यह उसका पिता लक्ष्मीचन्द्र ही है, सारी बात बता दी । इसी कारण, उसने कहा, कि वीरभद्र को पुनः वेदी के समीप बैठने की स्वीकृति दे दी गई थी ।

अरुन्धति ने अब अपराधी से पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"लक्ष्मीचन्द्र ।"

इस पर अरुन्धति को पद्मा का ध्यान हो आया । उसने एक प्रतिहारिन को भेज उसको बुला भेजा । पद्मा आई और अपने पति को बँधे हुए देख कर समझ गई कि वह बदी बना लिया गया है । अरुन्धति ने उससे पूछा, "देवी ! पहचानती हो इसको ?"

"हाँ, यह मेरे पति है ।" पद्मावती ने आँखे नीची किये हुए कहा ।

"वीरभद्र ?"

"जी हाँ ।"

"अच्छी बात है तुम जा सकती हो ।"

"और ये ?" पद्मा ने पूछ लिया ।

"इनके साथ न्याय होगा । उसके पश्चात् तुम दया के लिए महाराज से प्रार्थना करना । तब मैं वचन पालन करने का यत्न करूँगी । परन्तु इस व्यक्ति ने एक अन्य अपराध किया है। एक सेट्ठी लक्ष्मीचन्द्र का प्रवेश-पत्र इसके पास

है और उस सेट्ठी को इसने कही छुपा रखा है। यदि उसके साथ भी कुछ किया गया है तो बात कठिन हो जायगी।"

इसके पश्चात् अरुन्धति ने शखपाद से कहा, "इसको कारावास भेज दो और कल इसको न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित कर दो। इस समय तक लक्ष्मीचन्द्र का पता करो।"

पंचम् परिच्छेद

: १ :

राज्याभिषेक का निमन्त्रण जहाँ मगध-राज्य के अन्दर विशेष अधिकारियो तथा प्रजा के प्रतिनिधियो को भेजा गया, वहाँ मगध से बाहर के राज्यो को भी भेजा गया।

जिस गति से यवनो को देश से निकाला गया था और जिस पूर्णता से यवनो को भारतीय समाज मे विलीन किया गया था, वह भारत के अन्य नरेशो के लिये चमत्कार ही था। जहाँ यवन सेना को देश से ढकेल कर निकालने का श्रेय पुष्यमित्र की नवीन सेना को मिल रहा था, वहाँ विदेशियो को समाज मे मिला लेने का श्रय महर्षि पतजलि के आश्रम-निवासियो के प्रचार को प्राप्त था।

यो तो बौद्ध-सम्प्रदाय के भिक्षु भी विदेशी और भारतीय समाज मे एकीकरण का यत्न कर रहे थे, परन्तु उनके प्रयत्न का फल एक अन्तर्राष्ट्रीय समाज की स्थापना होती थी, जो भावो और विचारो मे अभारतीय था। परन्तु इसका प्रभाव भारत से बाहर नही हो पा रहा था, अर्थात् भारत में रहने वाले तो अपने को अन्तर्राष्ट्रीय अर्थात् अभारतीय मानने लगे थे, लेकिन भारत से बाहर वाले उनको ऐसा नही मानते थे।

महर्षि पतंजलि के शिष्य वैदिक विचारधारा के अनुसार भारतीय समाज मे विदेशियों को सम्मिलित करते जाते थे। इसका एक चमत्कारिक प्रभाव यह हुआ कि जहाँ बौद्ध प्रयास का फल भारतीयता को दुर्बल कर रहा था, वहाँ वैदिक प्रचार भारतीयता को पुष्ट कर रहा था।

दो वर्षो मे ही, मौर्य राज्यकाल मे भारत मे आकर बसे विदेशी, विदेशी न रहकर भारतीय समाज मे ऐसे घुल-मिल गये थे कि उनमे भेद-भाव नही रहा था।

इन सभी प्रयत्नो का परिणाम यह हुआ कि भारत के नरेश पुष्यमित्र को और मगध मे चल रही वैदिक विचारधारा को पुनः मान की दृष्टि से देखने लगे और जब उनको पुष्यमित्र के राज्यारोहण के उत्सव पर आने का निमन्त्रण मिला तो बहुत से नरेश अथवा उनके प्रतिनिधि इस उत्सव को देखने के लिये चल पडे।

भारत के स्वतन्त्र नरेशो अथवा उनके प्रतिनिधियो के ठहरने और भोजनादि का प्रबन्ध मगध-राज्य की ओर से किया गया। एक सप्ताह भर पाटलिपुत्र मे ऐसी चहल-पहल रही, जैसी चन्द्रगुप्त के काल के पश्चात् देखने मे कभी नही आई थी।

राज्यारोहण के अवसर पर पुन वैसी दुर्घटना न हो सके, जैसी पुष्यमित्र के विवाह पर हुई थी, इस निमित्त कई सहस्र सैनिक, बौद्ध उपासक और भिक्षु तथा मौर्य वश के सम्बन्धी पकड कर राज्य मे, दूर-दूर बदीगृहो मे भेज दिये गये थे। पाटलिपुत्र को षड्यत्रकारियों से रिक्त रखने के लिए जिस पर भी किसी प्रकार का सन्देह हुआ, उसको पकड कर बंदीगृह में डाल दिया गया।

राज्याभिषेक का कार्यक्रम निर्विघ्न समाप्त हुआ। इस सब अवधि में जहाँ राज्य की ओर से प्रजागणों को पुरस्कार दिये जा रहे थे और प्रजा की ओर से महाराज और महारानी को भेट दी जा रही थी, वहाँ महर्षि भी देश-विदेश के नरेशो तथा उनके प्रतिनिधियों से, भारत मे एक सुदृढ सगठन निर्माण करने के हेतु विचार-विनिमय कर रहे थे।

इन वार्त्तालापों का एक परिणाम यह हुआ कि राज्याभिषेक के तीन दिन पश्चात् अभ्यागतो को विदा करने से पूर्व एक सार्वभौमिक सभा का आयोजन कर दिया गया। इसमें भारत के उन सब नरेशों को तथा उनके प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया गया, जो मगध के महाराजा के राज्या-

भिषेक के अवसर पर पधारे थे। इस सभा का प्रधानत्व महर्षि पतजलि ने किया। उन्होने इस सभा का प्रयोजन वर्णन करते हुए बताया, "भारत देश सुमेरु पर्वत से लेकर हिन्द महासागर तक फैला हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से यह देश एक है। यहाँ के निवासी न केवल एक ही संस्कृति के मानने वाले है, प्रत्युत उनका जीवन-दर्शन भी एक समान ही है।

"इसके अतिरिक्त विदेशी आक्रमणकारियों से बचने के लिए तथा प्रतिकूल विचारधाराओ का विरोध करने के लिए इस पूर्ण देश के निवासियो का, एक प्रकार के ऐक्य-सूत्र मे बद्ध होकर रहना अत्यावश्यक है।

"इस एक सूत्र में बँधकर रहने का अर्थ यह नही कि सब एक ही राज्य के अधीन हो जायँ, देश मे एक सम्राट् हो और उस सम्राट् के अधीन पूर्ण देश हो, सब नरेश उस सम्राट् को कर दे और प्रत्येक बात मे सम्राट् की आज्ञा का पालन करें। यह तो विधि है, जिसको साम्राज्य स्थापित करना कहते है। चन्द्रगुप्त मौर्य के पूजनीय गुरु भगवान् चाणक्य ने इस विधि को ठीक समझा और इसके अनुरूप ही अशोक तक यह चलन चलता रहा।

"इस विधि के सगठन से जहाँ दृढ़ता अधिक आई, वहाँ देश के भिन्न-भिन्न घटको की बहुत अशो मे स्वतन्त्रता छिन गई।

"इस कारण हम देश में अपनी प्राचीन विधि का सगठन अधिक पसन्द करते है, अर्थात् देश के सब नरेश अपने-अपने राज्य मे स्वतन्त्र हो, परन्तु अपने राज्य से बाहर वालो के साथ सम्बन्ध के विषय मे और देश पर साझी विपदा के समय सब एक राज्य के, जिस पर सबका विश्वास हो, अधीन हो कर रहे।

"प्रत्येक नरेश दूसरे नरेशो से सम्बन्ध के विषय मे और विदेशीयों से सम्बन्ध के विषय में यदि स्वतन्त्र रहा तो जहाँ, एक ओर परस्पर द्वेष उत्पन्न होगा, वहाँ दूसरी ओर उस द्वेष से लाभ उठा कर विदेशी तथा विधर्मी हम पर शासन करने के लिए आ जायंगे।

"अतः मेरा यह प्रस्ताव है कि इस भारतवर्ष मे पुनः चक्रवर्ती महाराजाओं की परम्परा चलाई जाय। चक्रवर्ती राजा सम्राट् नही होता।

वह बहुसख्यक राज्यों की अनुमति से एक सम्माननीय राजा होता है और कभी-कभी इस पद पर कोई छोटा सा राज्य भी आसीन हो सकता है।

"एक चक्रवर्ती राजा के गुणो मे उसकी न्याय-बुद्धि, पक्षपात रहित स्वभाव, दीर्घ दृष्टि और राष्ट्र की सस्कृति तथा धर्म पर दृढ निष्ठा, मुख्य है। साथ ही उस राजा मे इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह देश पर आई विपदा का विरोध कर सके।"

महर्षि की साम्राज्य और चक्रवर्ती राज्य मे अन्तर पर विवेचना इतनी स्पष्ट थी कि किसी को आपत्ति नही हो सकी।

इस सभा मे कुछ नरेशो ने पुनः मगध-साम्राज्य की स्थापना का प्रस्ताव रखा, परन्तु अधिकाश नरेश चक्रवर्ती राज्य की प्रथा के पक्ष मे ही रहे।

महर्षि का प्रस्ताव बहुमत से स्वीकार हुआ और यह निश्चय हुआ कि मगध-राज्य को चक्रवर्ती राज्य की उपाधि देने के लिये पुष्यमित्र अश्वमेध यज्ञ करे, जिससे यह विदित हो जाय कि सब राज्य इस उत्तरदायित्व को पुष्यमित्र के कधो पर डालने के लिये तैयार है अथवा नही।

राज्याभिषेक का उत्सव पुष्यमित्र की ओर से उपहार तथा पुरस्कार दे-दे कर, सबको विदा करने पर समाप्त हुआ।

: २ :

राज्याभिषेक उत्सव के समाप्त होते ही सब बदियो को पाटलिपुत्र मे लाकर न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया गया।

राज्य के सूचना विभाग ने उनके विरुद्ध अभियोग उपस्थित किया। अभियोग यह था कि इन बन्दियो ने षड्यत्र कर अकारण महाराज पुष्यमित्र की हत्या तथा राज्य को पलटने का यत्न किया।

इस अभियोग के प्रमाण मे वीरभद्र की पत्नी पद्मा ने साक्षी दी। उसने बताया, "एक बार मेरी लडकी, अपने पिता से, किसी विषय पर मतभेद हो जाने के कारण, हमारे घर पर अनशन कर लेट गई। उस समय मैं इस अनशन का कारण स्पष्ट रूप से नही जानती थी। आठ-दस दिन के पश्चात् लड़की की अवस्था चिन्ताजनक हो गई। मेरे और मेरे पति

के मन मे उसकी अकाल मृत्यु का भय समा गया। मैने अपने पति से कहा कि लड़की को समझा कर उसका अनशन तुडवाना चाहिए और इस प्रकार हमे उसको मरने से बचाना चाहिए।

"इस पर भी मेरे पति ने नही बताया कि लड़की क्या चाहती है। मेरे आग्रह पर और लडकी की शोचनीय दशा से प्रभावित हो, मेरे पति ने लकड़ी से कुछ बात की और उसने अन्न ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

"इसके पश्चात् लडकी और अन्य बहुत से लोग मेरे पति से मिलने के लिये आते रहे।

"महाराज के विवाहोत्सव के पूर्व मेरे पति अत्यन्त चचल दिखाई देने लगे। वे रात-भर सोते नही थे और दिन-भर कही बाहर घूमते रहते थे। उनकी इस अवस्था पर मुझको बहुत चिन्ता लग गई। मुझको कुछ सन्देह हुआ कि लडकी उनसे वह कुछ करने को कह रही थी, जिसको करने के लिए उनकी आत्मा नही मानती थी।

"विवाह के दिन मैने बाप-बेटी मे हो रहे वार्तालाप को छिपकर सुना तो मेरे रोगटे खडे हो गये। उस दिन मेरे पतिदेव पुष्यमित्र की हत्या के लिये जाने वाले थे। मै बहुत देर तक तो अपना कर्त्तव्य समझ नही सकी। मै अपने पति के विरुद्ध कुछ भी करने के लिये अपने मन को तैयार नही कर सकी। विवाह-संस्कार के कुछ ही क्षण पूर्व मेरी समझ मे आया कि किसी प्रकार इस हत्याकाण्ड को रोकने का यत्न करना चाहिए। उस समय मेरे पति घर से जा चुके थे। अतः उनको रोकने मे स्वय को असमर्थ पा, मै महारानी जी की सेवा में पहुँची और उनको पूर्ण स्थिति से अवगत कराया।"

इस वक्तव्य के पश्चात् सूचना-विभाग के अधिकारी ने पूछा, "क्या तुम पहचान सकती हो कि उस समय तुम्हारे पति से कौन-कौन व्यक्ति मिलने के लिये आते थे?"

"कुछ को तो मैने कई बार देखा था, अतः उनको मै पहचान सकती हूँ।"

उसके सम्मुख कई सौ बन्दी लाये गये, जिनमे से उसने लगभग बीस व्यक्तियो को पहचान लिया। उनमे सौम्या, महाप्रभु बादरायण तथा कई उपासक, सैनिक और भिक्षुक थे।

इसी प्रकार कई अन्य व्यक्तियो की साक्षी हुई। कुछ थे, जिन्होने वीरभद्र का, [illegible] को चाँदी की सन्दूकची देते समय, सन्दूकची के नीचे से छिपी कटार निकाल कर, महाराज पर आक्रमण करने की घटना का आँखो देखा विवरण बताया। कई साक्षियों ने पद्मा-विहार मे होने वाली षड्यन्त्रकारियों की बैठकों का वर्णन सुनाया।

इन सब साक्षियो मे मुख्य साक्षी लक्ष्मीचन्द्र की हुई। उसका कहना था, "मै बौद्ध उपासक हूँ, इस पर भी मैं नये राज्य के प्रशंसकों मे से हूँ। मैंने कई बार महाप्रभु बादरायण से कहा था कि उनको राजनीति मे हस्त-क्षेप नही करना चाहिये। अन्य कई बौद्ध उपासक और कुछ बौद्ध-भिक्षु भी इस विषय मे मुझसे सहमत थे। इस पर भी महाप्रभु कुछ न कुछ जोड़-तोड़ करते रहते थे।

"एक कारण उनके हस्तक्षेप का यह भी था कि पहले राज्य की ओर से विहारो को बहुत सहायता मिलती थी। यह सहायता महाराज पुष्य-मित्र के काल मे बन्द हो गई थी। महाप्रभु इसको अपने अधिकारों की हत्या मानते थे। वे समझते थे कि मगध-राज्य से इस प्रकार की सहायता लेना उनका अधिकार है।

"मैने कई बार समझाया भी था कि जब राज्य की ओर से शिव-मन्दिरों को अथवा जैन मन्दिरों को किसी प्रकार की सहायता नही दी जाती तो फिर बौद्ध-विहारों को ही क्यो मिले ? इस पर महाप्रभु कहा करते थे कि मगध-राज्य एक सौ वर्ष से भी अधिक काल से विहारों को धन देता आया है तो यह बौद्ध विहारो का पैतृक अधिकार हो गया है, जिसको कोई तोड़ नही सकता।

"महाप्रभु की इस अनुचित युक्ति को, अनेक उपासक और भिक्षु उचित मानते थे और वे महाराज के राज्य से असन्तुष्ट हो रहे थे।

"मुझको महाराज की हत्या के षड्यत्र का ज्ञान नही था। कदाचित् मेरे विचारो को जानकर ही मेरे साथ इस विषय मे कभी बातचीत नही की गई।

"विवाह का निमन्त्रण मुझको मिला था। मै नगर मे एक प्रसिद्ध व्यापारी हूँ और अपनी आय का दसाश कर के रूप मे राज्य को नियमित रूप से देता हूँ। मेरा वार्षिक कर लगभग पन्द्रह-बीस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा मे होता है। कदाचित् यही कारण है कि मुझको विवाह का निमन्त्रण दिया गया था। विवाह के दिन प्रातःकाल ही मुझको महाप्रभु का, उपासना मे परिवार सहित सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। उपासना मे मै सम्मिलित होने गया तो मुझको विहार के उस कक्ष मे ले जाया गया, जिधर महारानी सौम्या, स्वर्गीय महाराज बृहद्रथ की विधवा पत्नी, रहती थीं। वहाँ महारानी सौम्या ने मुझे तथा मेरी पत्नी एव बच्चो को अपने साथ भोजनादि मे सम्मिलित किया और उसके पश्चात् मुझसे विवाहोत्सव पर न जाने का आग्रह किया। मै मान गया। एक स्त्री का, इतनी-सी तुच्छ बात के लिये, आग्रह मै टाल नही सका। इस पर मुझे वही विहार मे ही रह जाने की सम्मति दी गई। मैने इसमे भी कोई हानि नही समझी। दिन-भर मै और मेरी पत्नी भगवान् तथागत के चरणो मे बैठकर मन्त्रजाप करते रहे और हमारे बच्चे वहाँ खेलते रहे। सायकाल हम घर लौट आये। घर पहुँच कर हमे पता चला कि हमारे घर का ताला तोड़ा गया है और मेरी सन्दूकची, जिसमे विवाहोत्सव मे सम्मिलित होने का निमन्त्रण-पत्र भी रखा था, खोली गई है।

"मेरी कोई अन्य वस्तु चोरी नही गई थी। अत मै नगरपालक के पास इस घटना की सूचना देने अथवा न देने के विषय पर विचार ही कर रहा था कि राज्य के सूचना-विभाग के कर्मचारी आये और मुझको राज्यभवन मे ले गये। वहाँ मैने यही वक्तव्य दिया। इस पर मुझे घर आने की स्वीकृति दी गई। यह बात तो मुझको बाद मे विदित हुई कि महाराज की हत्या का यत्न किया गया है और हत्यारे के पास मेरा प्रवेश-पत्र था।"

पूर्ण अभियोग के उत्तर में सौम्या की ओर से यही कहा गया कि पुष्यमित्र हत्यारा है और इसकी हत्या कर देना अपराध नही था।

इस पर न्यायाधीश ने सौम्या से पूछा, "यदि देश के लिये किये गये युद्ध मे कोई सैनिक शत्रुओं की हत्या करता है तो क्या वह भी हत्यारा है और उसकी हत्या करना क्या पाप माना जायगा ?"

"नही, देश के राजा की आज्ञा के अधीन शत्रु से लडते हुए जो हत्या करता है, उसका पाप उसको नही लगता।"

"तो क्या यह सिद्ध नही हो गया कि हत्या करना सदैव ही पाप नही होता। कभी यह पुण्य भी हो सकता है।"

"हाँ, श्रीमान् ! मै यही कह रही हूँ। मेरे पिता जब हत्या करने गये थे, तो वे किसी प्रकार का पाप करने नही गये थे।"

"वह सैनिक, जो युद्ध मे शत्रु से लडने के लिये जाता है, उस युद्ध से कुछ प्रयोजन सिद्ध करने जाता है। क्या मै जान सकता हूँ कि वीरभद्र कौन सा प्रयोजन सिद्ध करने गया था ?"

"प्रयोजन तो स्पष्ट ही था कि वह पुष्यमित्र को समाप्त कर, पाटलिपुत्र मे पुनः मौर्य अधिकारी को राज्य देना चाहता था।"

"मौर्यवशीय ही राजा हो, यह कहाँ का पुण्य कार्य हो गया ? पुष्यमित्र ने हत्या की थी अथवा नही, यह आज का विचारणीय विषय नही है। यह प्रश्न उस समय उत्पन्न हो सकता था, जब प्रजा-परिषद् की बैठक में पुष्यमित्र के राजगद्दी पर बैठने का निश्चय हुआ था। प्रजा-परिषद् मे पुष्यमित्र को हत्यारा नही माना गया। उसको वैसा ही वीर पुरुष माना गया था, जैसे शत्रु से लडकर शत्रु की हत्या करने वाले सैनिक को समझा जाता है।

"अतः वीरभद्र का उस प्रजा-परिषद् के निर्णय के पश्चात् भी पुष्यमित्र को हत्यारा मानना, कैसे ठीक हो गया ? साथ ही विचारणीय बात यह है कि पुष्यमित्र की हत्या से कैसे मौर्यवशीय को राज्य मिल जाता ? कौन मौर्यवशीय है, जो राज्य का अधिकारी है ? क्या केवलमात्र मौर्यवश

मे उत्पन्न होना ही किसी को राज्य पाने का अधिकारी बना देता है ?

"हत्या करने मे समाज-कल्याण का विचार भी तो होना चाहिये। यदि किसी देश का राजा अपने सैनिको को आज्ञा देता है कि वे किसी सुन्दर स्त्री के पति को मार कर उसकी पत्नी को उठा लाएँ तो क्या उस राजाज्ञा को मानने वाला भी पुण्यकार्य करने वाला कहा जायगा ? किसी हत्या मे समाज का कौनसा हित निहित है, यह भी विचारणीय है। इस कारण हम यह जानना चाहते हैं कि किसी अज्ञात मौर्यवंशीय को गद्दी पर बैठाने मात्र के लिए उस राजा की हत्या से, जिसको प्रजा-परिषद् ने राजा स्वीकार किया है, कौन सा समाज का कल्याण होने वाला था ?"

"श्रीमान् ! मै तो यह कह रही हूँ कि मेरे पति बृहद्रथ की हत्या में ही कौन-सा समाज का कल्याण निहित था ?"

"तो श्रीमती यवनों का देश से निकाल देना समाज-कल्याण की बात नही मानती ? क्या इस कार्य को करने से बृहद्रथ ने इन्कार नही किया था और क्या यह कार्य पुष्यमित्र ने राज्य-भार सम्हालने के पश्चात् नही किया ?"

सौम्या निरुत्तर हो गई। उसे चुप देख न्यायाधीश ने अपना निर्णय सुना दिया। उसने अपने निर्णय मे लिखा, "पुष्यमित्र की हत्या का यत्न वीरभद्र ने किया। इस हत्या के लिए महाप्रभु बादरायण, सौम्या तथा अन्य एक सौ बीस व्यक्तियों ने, जिनके नाम नीचे दिये जा रहे है, षड्यन्त्र किया। इस हत्या मे किसी प्रकार की लोक-कल्याण की भावना निहित नही थी। ईर्ष्या-द्वेष तथा प्रतिकार के विचार से यह षड्यन्त्र रचा गया था। अतः इन सब व्यक्तियो को अपराधी माना जाता है और सभी को मृत्यु-दण्ड दिया जाता है।

"शेष बन्दियों के विषय मे निश्चित रूपेण नही कहा जा सकता कि उनका कुछ भाग इस षड्यन्त्र मे था अथवा नही। इस कारण उनको मुक्त किया जाता है।"

इसके पश्चात् पद्मा ने अपनी और अपनी लड़की सौम्या पर दया

करने की प्रार्थना कर दी। इस प्रार्थना मे युक्ति यह थी कि एक का पति और दूसरे का दामाद मारा गया था। अपनी लड़की से स्नेह होने के कारण वीरभद्र को लडकी के विधवा हो जाने का दुःख इतना हुआ कि वह ठीक ढग पर विचार नही कर सकता था। अत. उनको क्षमा कर दिया जाय और अब वे यह स्वीकार करते है कि उन्होने भूल की थी।

पुष्यमित्र ने अरुन्धति के कहने पर दोनो को मृत्यु-दण्ड से तो मुक्त कर दिया और दो मे से एक विकल्प स्वीकार करने का प्रस्ताव कर दिया। प्रस्ताव यह था कि या तो वे मगध-राज्य छोडकर चले जावे अथवा वे जीवन भर राज्य के बन्दी रहना स्वीकार कर ले।

दोनो ने प्रथम विकल्प स्वीकार किया और दोनो बन्दीगृह से छूटते ही मगध-राज्य छोड कर विदर्भ मे चले गये।

: ३ :

जब से पुष्यमित्र मगध का शासक बना था, विदर्भ का राजा यज्ञसेन बहुत परेशानी अनुभव कर रहा था। यज्ञसेन बृहद्रथ के पिता शतधन्वन् का सम्बन्धी था। शतधन्वन् के जीवन-काल मे ही वह विदर्भ का आयुक्तक नियुक्त होकर विदर्भ की राजधानी नीरा मे चला गया था। वह एक योग्य शासक था और उसने विदर्भ-राज्य की बहुत उन्नति की। उसके छः वर्ष के राज्य-काल में विदर्भ धन-धान्य से भरपूर हो गया था। यज्ञसेन के शासन मे जनता सुखी और सम्पन्न हुई थी।

यज्ञसेन शतधन्वन् के जीवन-काल तक तो पाटलिपुत्र को कर देता रहा, परन्तु शतधन्वन् की मृत्यु के पश्चात् उसने कर देना बन्द कर दिया।

एक बार बृहद्रथ ने यज्ञसेन से कर माँगा था और उसके उत्तर मे यज्ञसेन ने कहा था, "मै आपकी अपेक्षा अधिक चतुर और योग्य शासक हूँ, इस कारण मेरी आपको अधिक आवश्यकता है और आपकी मुझे किसी प्रकार की आवश्यकता नही। यदि आज विदर्भ पर दक्षिण के आन्ध्र राज्य वाले आक्रमण करे तो आप मेरी कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। परन्तु आप पर आक्रमण होने पर, मै आपकी सहायता कर सकता हूँ। अतः

यदि कर देने की ही बात हो, तो पाटलिपुत्र विदर्भ को कर दे। यही युक्तियुक्त होगा।"

यह उत्तर प्राप्त करने के पश्चात् पाटलिपुत्र फिर इस विषय मे मौन रहा। वास्तव में यज्ञसेन ने जो कुछ कहा था, वह ठीक ही था। पाटलिपुत्र अब कर प्राप्त करने का अधिकारी नही रहा था।

जब पुष्यमित्र मगध का शासक बना तो यज्ञसेन चिन्ता अनुभव करने लग गया था। वह विचार कर रहा था कि अब पुष्यमित्र के साथ वह किस प्रकार का व्यवहार करे।

पुष्यमित्र का पत्र आया था कि वह विदर्भ से मैत्री चाहता है। इस मैत्री का अर्थ यज्ञसेन नही समझा। उस समय यवनों ने भारत मे कुछ इस प्रकार का आतक जमा रखा था कि यवनो से युद्ध करने मे सभी झिझकते थे। इस आतंक का कारण यह था कि मगध यवनों का विरोध करने के लिये समर्थ होता हुआ भी, पग-पग पीछे हटता जा रहा था। दूर से देखने वाले यह समझते थे कि यवनों को युद्ध-विद्या का ज्ञान बहुत अधिक है। इस कारण पुष्यमित्र के मित्रता के निमन्त्रण से यज्ञसेन को यह समझ आया कि वह यवनों के विरुद्ध लड़ने के लिये विदर्भ की सेना से सहायता चाहता है। व्यर्थ मे ही अपनी सेना को जलती आग मे झोकने का विचार न रखने के कारण, उसने पुष्यमित्र के मित्रता के निमन्त्रण का उत्तर ही नही दिया।

परन्तु जब पुष्यमित्र ने एक ही युद्ध में यवन-सेना को पूर्ण रूप से परास्त कर सिन्धु पार कर दिया तो यवनो का आतक मिट गया और पुष्यमित्र की धाक जम गई।

इसके पश्चात् भी यज्ञसेन की चिन्ता मिटी नही। वह समझता था कि अब पुष्यमित्र पहले की अपेक्षा अधिक बलशाली हो गया है। अत अब वह मित्रता पर सन्तोष न कर विदर्भ का स्वामी बनने का यत्न करेगा। इस कारण उसने अपनी सेना और रक्षा केन्द्रो को सुदृढ करने में धन, पानी की भाँति बहाना आरम्भ कर दिया।

इस समय पुष्यमित्र के राज्याभिषेक-उत्सव पर उपस्थित होने का निमन्त्रण आया। अब केवल भय के कारण यज्ञसेन ने राज्य के महामात्य राक्षस को राज्य का प्रतिनिधि बना कर पाटलिपुत्र भेज दिया।

राक्षस से पुष्यमित्र मिला और सहृदयतापूर्ण वार्तालाप हुआ। महर्षि पतजलि से मिला तो देश मे एक सगठन बनाने की बात होने लगी। राज्यारोहण के अवसर पर विदर्भ-प्रतिनिधि को बैठने के लिए मानयुक्त स्थान दिया गया और अन्त मे जब महर्षि के सभापतित्व मे भारत के नरेशो तथा उनके प्रतिनिधियो का सम्मेलन हुआ तो साम्राज्य और चक्रवर्ती राज्य के अन्तर पर विवेचना सुनने को मिली।

इस सभा के पश्चात् तो राक्षस स्वय महर्षि जी से मिलने के लिए गया। उसने अपने मन के सशय व्यक्त कर दिये। उसने कहा, "भगवन्! चक्रवर्ती ढाँचा तो इतना ढीला होगा कि देश पर विपत्ति के समय वह टूट जायगा।"

"वह तो साम्राज्य मे भी हो सकता है। साम्राज्य देश के विभिन्न भागो के लिए दासता का प्रतीक है और चक्रवर्ती ढाँचा सबके लिये मान तथा प्रतिष्ठा का प्रतीक है। स्वेच्छा से बनाये मानयुक्त स्थान मे अधिक स्थिरता की सम्भावना होती है और एक के स्वामित्व और दूसरे के दासत्व का सम्बन्ध कभी भी विश्वास योग्य नही होता।

"मै तो यह समझता हूँ कि राजनीतिक बन्धन कृत्रिम होते है। उनका कठिनाई के समय कुछ भी मूल्य नही होता। सम्बन्ध, जिनका आधार, विचार, धर्म और सस्कृति हो, वे अधिक स्थिर और स्थायी होते है।

"चक्रवर्ती ढाँचे मे देश के सब नरेश धर्म और विचार-सामान्य में आस्था रखने से परस्पर अधिक समीप होते है और साम्राज्य मे केवल राजनीतिक बंधन होने से वे स्वार्थ और लाभ-हानि पर निर्भर होते है। उनमें दृढता कम होती है।"

राक्षस जब लौटकर आया तो यज्ञसेन के साथ वहाँ के प्रस्ताव पर विचार होने लगा। यज्ञसेन समझता था कि यह भी मगध वालों की चाल है और

अन्त मे वे पुनः अपना साम्राज्य बनाना चाहेगे।

राक्षस इससे भिन्न मत रखता था। उसका कहना था कि साम्राज्य हो अथवा चक्रवर्ती राज्य, उद्देश्य देश को एक सूत्र मे बाँधना है। देश से बाहर बडे-बड़े राज्य निर्मित हो रहे है। वे भारत की उर्वरा-भूमि पर कुदृष्टि रखते है। अतएव भारत को उनकी कुदृष्टि से सुरक्षित रखने के लिए यहाँ के सब नरेशो मे ऐक्य होना आवश्यक है। किस प्रकार का ऐक्य अधिक मानयुक्त होगा, यह विचारणीय बात है।"

"तो क्या ऐसा संगठन अत्यावश्यक है ?"

"निस्सन्देह महाराज !"

"जब विदेशी आक्रमण हो, तब सीमा के समीप के राज्यो को सग ठित होना आवश्यक होता है। हम तो देश के मध्यभाग मे हैं। हम अपनी भौगोलिक स्थिति से स्वय ही सुरक्षित है।"

राक्षस हँस पडा। उसने कहा, "जो लोग हिमालय लाँघ कर सहस्रों कोस की यात्राकर कौशाम्बी मे आ सकते है, क्या वे एक सौ कोस और यात्रा कर नीरा मे नही पहुँच सकते ? हमारा लाभ तो इसी मे है कि विदेशियो को सीमा पार ही रोक दिया जाय और इसके लिये सीमावर्ती राज्यों को धन तथा जन की सहायता यहाँ से जानी ही चाहिये। हमारा स्वार्थ भी इस बात मे है कि युद्ध हमारे देश से दूर रहे। ऐसा तब ही हो सकता है, जब देश के प्रत्येक भाग से देश की सीमाओं की रक्षा हो।

"परन्तु महाराज ! महर्षि जी ने एक अन्य प्रकार के समर का उल्लेख किया है। वह समर है सस्कृति का। विदेशों से लोग राज्य-प्रसार के लिये नही, प्रत्युत विचार-प्रसार के लिये भी आ सकते है। इन विचारों को हम, बिना उनकी उपयोगिता का विचार किये अपनी प्रजा में प्रचलित नही होने देगे। एतदर्थ देश के विद्वान् धर्मशास्त्रियों को एकसूत्र बद्ध होना अत्यावश्यक है।

"महर्षि जी का कथन है कि राजनीतिक समर से सांस्कृतिक पराजय सम्भव है और सास्कृतिक पराजय से राजनीतिक समर भी सम्भव है

अतः उनका कहना था कि दोनों प्रकार के विदेशी समर से रक्षा की आवश्यकता है। इस कारण वे चक्रवर्ती राज्य का समर्थन करते थे।"

देश के नरेशो मे अभी महर्षि पतजलि के प्रस्ताव की चर्चा चल ही रही थी कि पुष्यमित्र की हत्या करने वालों पर अभियोग चल पड़ा।

न्यायाधीश का निर्णय हुआ और पश्चात् दया भी हो गई। इस पर सौम्या और वीरभद्र तथा उसकी पत्नी पद्मा विदर्भ की राजधानी नीरा मे आ पहुँचे।

: ४ :

विदर्भ की राजधानी मे पहुँच एक साधारण-सा गृह बना, वीरभद्र रहने लगा। वीरभद्र यज्ञसेन से मिल, कुछ भूमि लेकर उस पर कृषि करने लगा और इस प्रकार निर्वाह होने लगा। सौम्या को कुछ काम नहीं था और वह पर्याप्त अवकाश रहने के कारण अपनी वर्तमान अवस्था से सदा असन्तुष्ट रहती थी। इस असन्तोष की अवस्था मे वह मन-ही-मन कुढा करती थी और मन के असन्तोष को दूर करने के उपाय सोचा करती थी।

एक दिन वीरभद्र खेत मे बीजारोपण कर घर आया, तो हताश सा खाट पर लेट गया। पद्मा ने उसको इस प्रकार निस्तेज देखकर पूछा, "क्यों! स्वास्थ्य तो ठीक है न?"

"मैं भीतर ही भीतर मन मे अपने जीवन पर ग्लानि अनुभव कर रहा हूँ। मै क्षत्रिय-सन्तान होकर, वैश्य का कर्म करने लगा हूँ। इस पतन से तो मैं समझता हूँ, मर जाना ही उचित था।"

"आप सेना में तो थे। उसको छोड़ने के लिए अपने ही कर्मों को धन्यवाद दे सकते है।"

"मैने सेना को छोड़ा नहीं, प्रत्युत छोड़ने पर विवश हो गया था।"

"विवशता थी लड़की से अत्यधिक स्नेह की।"

"मैने एक भूल की थी। सौम्या का विवाह बृहद्रथ से एक भूल थी और सौम्या का कहा मान एक हत्यारा बन मैं अपनी भूल का प्रायश्चित कर

रहा था।"

"बहुत खूब ! एक भूल का प्रायश्चित करने के लिये एक महान् पाप करने पर उतारु हो गये थे। देखिये देवता ! क्षत्रिय का यह अर्थ नही कि वह अपनी बुद्धि ही खो बैठे।"

सौम्या अभी तक चुपचाप बैठी माता पिता में चल रहे विवाद को सुन रही थी। माँ को पिता की भर्त्सना करते देख, उससे चुप नही रहा गया। उसने कहा, "माँ ! एक हत्यारे की हत्या करना अनुचित अथवा मूर्खता कैसे हो गई ?"

"न्यायाधीश ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया था। उस समय तुम निरुत्तर हो गई थी। अब मेरे साथ यह व्यर्थ की युक्ति क्यो कर रही हो ?"

"माँ ! मै जब अपनी दुर्दशा देखती हूँ तो पागल हो जाती हूँ। मै जब पुष्यमित्र की देश मे मान-प्रतिष्ठा बढ़ते देखती हूँ तो ईर्ष्या से जल-भुन जाती हूँ।"

"यह ईर्ष्या और द्वेष महा पतनकारक है। इसे किसी प्रकार श्लाघनीय नही कह सकते।"

"पर माँ ! मै मानव हूँ। मानव होने के नाते ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि भावों से रहित नही हो सकती।"

"देखो सौम्या ! तुमने जो कुछ किया, वह तो मृत्युदण्ड के योग्य ही था। तुम बच गई तो केवल इसलिये कि अरुन्धति ने हम पर दया की। परन्तु तुम सदा उसकी दया की पात्र नही बन सकोगी। यदि तुम यह सरल सी बात, कि हत्या केवल तभी क्षम्य होती है जब वह लोक-हित मे हो, नही समझ सकती, तो भगवान् ही तुम्हारा रक्षक है।"

वीरभद्र अपनी भूल को समझ गया था। उसने कहा, "पद्मा ठीक कहती है। ईर्ष्या, द्वेष कुछ अच्छी भावनाएँ नही है। मैने जो कुछ किया, अब पुनः वैसा ही करने का साहस नही कर सकता।

"इस पर भी मैं यह समझता हूँ कि यदि वहाँ मृत्यु-दण्ड पा जाता तो इस पतन के कार्य को करने पर विवश तो नही होता।"

"यह तो एक सरल सी बात है आर्य ! यदि आप अपनी धमनियो में अभी भी क्षत्रिय रक्त का प्रवाह मानते है, तो आप यहाँ के महाराज के पास जाकर अपने वर्ग के अनुकूल कोई सेवा क्यो नहीं माँगते ? आपने भूमि माँगी, वह मिल गई। आप कुछ और माँगते, तो कदाचित् वह भी पा जाते।"

वीरभद्र अगले दिन विदर्भ के महामात्य राक्षस के सम्मुख जा उपस्थित हुआ। उसने अपनी पूर्ण कथा बताकर किसी क्षत्रियोचित सेवा-कार्य के लिये याचना की।

"तो तुम बृहद्रथ के श्वशुर हो ?"

"जी हाँ; उसकी तीन रानियाँ थी, जिनमे से मँझली रानी सौम्या मेरी कन्या थी।"

"और तुमने पुष्यमित्र की हत्या करने का षड्यन्त्र किया था ?"

"हाँ श्रीमान् ! मुझे अपनी कन्या के विधवा हो जाने का बहुत दु ख था और उस दु ख मे यह घृणित कार्य करने पर उद्यत हो गया था।"

"अब तुम पर दया कर तुम्हे देश निश्कासन की आज्ञा हो गई है ?"

"यह मुझ पर दया तो नही कही जा सकती। मेरी पत्नी पर महारानी अरुन्धती ने उसके सौभाग्य को अटूट रखने के लिये दया कर मेरे प्राण बचाये है।"

"तुम क्या कर सकते हो ?"

"मुझे बीस-वर्ष का सेना-कार्य का अनुभव है।"

राक्षस ने कुछ विचार कर कहा, "तुम एक सप्ताह के पश्चात् मिलना। तब तुमको कोई कार्य दिया जायेगा।"

राक्षस एक अति चतुर और सूझ-बूझ वाला व्यक्ति था। उसने वीरभद्र जैसे व्यक्ति को नौकर रखने का निश्चय तो उसकी कथा सुनकर ही कर लिया था। इस पर भी वह विचार करना चाहता था कि उसको किस कार्य पर नियुक्त किया जाय।

एक सप्ताह पश्चात् जब वीरभद्र पुनः राक्षस के सम्मुख उपस्थित हुआ

तो उसको बिना किसी प्रकार का कार्य-भार सौंपे राज्य का सेवक नियुक्त कर दिया गया और एक सौ स्वर्ण मुद्रा उसका वार्षिक वेतन निर्धारित कर दिया गया ?

वीरभद्र ने पूछा, "मुझे क्या कार्य करना होगा ?"

"जहाँ रहते हो, वहाँ का पता लिखा दो। हमें जब किसी कार्य के लिए आवश्यकता होगी, तब बुला लेंगे। वेतन यदि चाहो तो अग्रिम ले सकते हो।"

इस आज्ञा को सुन, प्रसन्नवदन वीरभद्र घर चला आया। पद्मा और सौम्या का विचार था कि केवलमात्र उसके बृहद्रथ से सम्बन्ध के कारण ही उसको कार्य के बिना यह वेतन मिला है, जो किसी प्रकार भी अच्छी बात नहीं है।

वीरभद्र का प्रश्न था, "कैसे ?"

"देखिये, आपको पुष्यमित्र का विरोधी मान यह सेवा-कार्य मिला है। और आपसे आशा की जायगी कि उसके विरोध के लिये आप तत्पर रहें। यह तो एक प्रकार से आपको शूद्र का कार्य दिया गया है।"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा। एक क्षत्रिय से क्षत्रिय के योग्य ही कार्य लिया जायेगा।"

वह अवसर भी बहुत शीघ्र आ गया, जबकि वीरभद्र से कार्य लिया गया।

: ५ :

भारत के सभी नरेशों को यह सूचना मिली कि मगधराज पुष्यमित्र अश्वमेध-यज्ञ करने जा रहे हैं। इस सूचना से वह विचार, जो महर्षि पतंजलि ने पुष्यमित्र के राज्याभिषेक के समय नरेशों को दिया था, विचार का विषय बन गया। भिन्न-भिन्न राज्यों में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार होने लगा।

चिरकाल से भारतवर्ष में किसी ने अश्वमेध-यज्ञ नहीं किया था। जब से बौद्धों का प्राबल्य हुआ था, यज्ञ प्रायः बन्द कर दिये गये थे। अब

पुन एक वेदानुरागी राजा का राज्य हुआ तो यज्ञ का प्रश्न उपस्थित हो गया।

महर्षि पतजलि अश्वमेध-यज्ञ करने के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि यज्ञ तो एक विशेष प्रकार की विचारधारा का प्रतीक है, परन्तु यज्ञ का उद्देश्य तो तभी सिद्ध होगा, जब पुष्यमित्र चक्रवर्ती महाराज बन जायेगा। अत: अश्वमेध-यज्ञ ही शुभ समझा गया।

बौद्धो ने इस यज्ञ के होने का समाचार सुना तो वे इसका प्रबल विरोध करने के लिये कटिबद्ध हो गये। महाप्रभु बादरायण तो मृत्युदण्ड के ग्रास हो चुके थे। पद्मा-विहार गिरा कर सर्वथा मिटा दिया गया था। बहुत से भिक्षु वहाँ से अन्यत्र विहारो मे चले गये थे।

अश्वमेध-यज्ञ की बात का पता चलते ही सब भिक्षु इसका विरोध करने के लिये देश भर मे फैल गये। उनका कहना था कि घोडे की बलि होगी और उसका माँस पका कर खाया जायगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पूर्ण देश मे हिसा और अहिसा पर विवाद चल पड़ा।

मगध के मन्त्रिमण्डल ने यज्ञ के विषय मे यह घोषणा कर दी—"मगध-राज्य ने यवनो की सेना को देश से निकालकर और लाखो यवनो को वैदिक धर्म मे सम्मिलित कर यह सिद्ध कर दिया है कि यह राज्य देश, राष्ट्र और धर्म का नेता है। इस अश्वमेध-यज्ञ से हम इसी बात की प्रतिष्ठा करना चाहते है।

"जो लोग यह समझते है कि मगध-राज्य ने देश, राष्ट्र तथा धर्म की सेवा की है, उनको इस यज्ञ मे हमारा समर्थन करने के लिये तैयार रहना चाहिये।"

इस विज्ञप्ति ने बौद्धो का मुख बन्द कर दिया। जिनको वे यह कहने जाते थे कि यज्ञ मे हिसा होगी, उनको लोग कहते थे कि उनकी अहिसा का वे क्या करें, जो दुष्ट, विधर्मी, विदेशियो को देश मे अनाचार फैलाने से रोक नही सकती।

बौद्धो के सिद्धान्त को स्वीकार न करते हुए भी कुछ शुग-परिवार के

विरोधी नरेश बौद्धो की बात को मान, इस यज्ञ का बहिष्कार करने पर उद्यत हो गये ।

इन विरोधियो मे आन्ध्र, विदर्भ और कलिग मुख्य थे । प्राय: सब स्थानों से पुष्यमित्र को यज्ञ करने के निश्चय पर बधाई-पत्र आये, परन्तु उपरोक्त राज्यो से कुछ उत्तर नही आया ।

इस पर मगध के मन्त्रिमण्डल ने दूसरी विज्ञप्ति निकाल दी । उसमें उन्होने स्पष्ट लिख दिया, "मगध राज्य के अश्वमेध-यज्ञ करने मे भारत देश के प्राय: सभी राज्यों का समर्थन प्राप्त है । दो चार राज्यों ने इस विषय मे रुचि नही दिखाई । इस पर भी बहुसख्यक राज्यों ने प्रस्ताव का समर्थन किया है । अत: यज्ञ होगा ही ।

"इस अश्वमेध-यज्ञ का प्रारम्भ चैत्र-शुक्ला त्रयोदशी को होगा और पूर्णिमा को अश्व छोड दिया जायेगा । मगध के दस अनुभवी सैनिक अश्व-रक्षा के लिए साथ रहेगे । हम आशा करते है कि जो नरेश हमारी योजना मे सम्मिलित होना चाहते है, वे अश्व को निर्विरोध अपने राज्य मे से निकल जाने देगे और जिनको हमारा चक्रवर्ती होना स्वीकार नही, वे चाहे तो अश्व को पकड ले । इस पर हम यहाँ से उस अश्व को छुडाने के लिये सेना भेजेगे ।

"यदि हम इसमे सफल न हुए तो हम स्वय को चक्रवर्ती पद पर आसीन नही मानेगे और उस राज्य को, जिसने हमारा अश्व पकड़ रखा होगा, चक्रवर्ती बनने मे सहयोग देगे ।"

इस विज्ञप्ति के उत्तर मे भारत भर के नरेश तथा उनके प्रतिनिधि यज्ञ मे सहयोग देने के लिये उद्यत हो गये ।

पाटलिपुत्र मे गगा के किनारे, एक विशाल मण्डप बनाया गया । उस मण्डप मे, दस सहस्र प्रजा के प्रतिनिधियों के लिए बैठकर यज्ञ देखने को स्थान रखा गया । इसी मण्डप मे भारत के नरेशों अथवा उनके प्रतिनि-धियों के बैठने के लिये पृथक् आसन बनाये गये । मण्डप के बीचों-बीच यज्ञ-वेदी बनी थी ।

त्रयोदशी के दिन ब्रह्म-मुहूर्त्त मे पुष्यमित्र उस मण्डप मे पहुँच, यजमान के आसन पर विराजमान हो गया। उसके बाई ओर उसकी धर्मपत्नी, मगध की साम्राज्ञी, अरुन्धति बैठ गई। ब्रह्मा के स्थान पर महर्षि पतजलि विराजमान हो गये। आचार्य विश्वेश्वर, आचार्य आत्रेय, आचार्य कण्व और अनेक अन्य देशो के वेदवेत्ता-विद्वान यज्ञ कराने के लिये आ बैठे।

दो-दिन तक हवन होता रहा। मनो घी, सामग्री, समिधा तथा अन्य सुगन्धित द्रव्य होम किये गये। तीसरे दिन पूर्णिमा थी। उस दिन एक श्वेत निष्कलक अश्व का, यज्ञ-वेदी मे खडा कर, पूजन किया गया। तत्पश्चात् अश्व को स्वर्ण, रजत तथा मणि-माणिक्यादि रत्नो से सुशोभित कर मध्याह्न के समय छोड दिया गया। अश्व के साथ दस वीर सैनिक अश्वो पर सवार, साथ-साथ चल पडे।

अश्व उत्तर दिशा को भेजा गया। भारत देश के प्रायः सब राज्यो के प्रतिनिधि यज्ञ मे उपस्थित थे। केवल विदर्भ, आन्ध्र और कलिग राज्यों ने अपने प्रतिनिधि नही भेजे थे।

नीरा मे जब सूचना मिली कि अश्व उत्तर की ओर गया है, तब यज्ञसेन ने राक्षस को बुलाकर इस परिस्थिति मे अपना व्यवहार निश्चित करने का यत्न किया।

"महामात्य !" यज्ञसेन का प्रश्न था, "हमको क्या करना चाहिये ?"

"देखिये महाराज ! अश्व को पकडना और उसको अपने राज्य में रोकने का अर्थ होगा कि हम, मगध से स्वय को अधिक बलशाली मान, चक्रवर्ती पद पाने के अधिकारी है। इस चुनौती को स्वीकार कर मगध प्रबल सेना यहाँ भेज देगा। तदनन्तर युद्ध होगा। यदि मगध की विजय हुई तो मगध आपको राजगद्दी से उतार कर किसी अपने अनुकूल व्यक्ति को राज्य पर बैठा देगा और यदि हमारी विजय हुई तो मगध का राजा चक्रवर्ती महाराज नही होगा। इस पर भी हम चक्रवर्ती पद तभी प्राप्त कर सकेंगे, जब हम अश्वमेध-यज्ञ कर भारत के अन्य राज्यों का समर्थन प्राप्त

कर लेगे।"

"तुम क्या समझते हो कि हम मगध को परास्त नही कर सकते ?"

"महाराज ! हमारे पास कितनी सेना है ?"

"साठ सहस्र के लगभग है।"

"मगध के पास इस समय पाँच लक्ष चतुरंगिणी सेना है।"

"हमने सुना है कि आन्ध्र और कलिग भी मगध की श्रेष्ठता को नहीं मान रहे।"

"यह बात सत्य है।"

"तो क्या हम तीनो राज्य मिलकर मगध का विरोध नही कर सकते ?"

"कर सकते हैं, परन्तु मगध के साथ पच्चीस राज्य है। इस अवस्था मे मगध भी अपने साथियो को लेकर युद्ध मे उतर आयगा।"

"और यदि हम अश्व को न रोकें तो क्या होगा ?"

"इसका अभिप्राय यह होगा कि मगधराज का चक्रवर्ती होना हमें स्वीकार है। उस अवस्था मे हम धर्म से तीन बातों मे मगध से बँध जायँगे। एक तो यह कि हमें अपनी सेना किसी भी समय-कुसमय मगध की सहायता के लिये भेजनी पडेगी। दूसरे विदेशी आक्रमण के समय हमारी सेना मगध की सेना के साथ मिल कर शत्रु से लडेगी और तीसरे हम स्वयं को भारतवर्ष के राष्ट्र का अग मानेगे, जिसके नेता होगे मगध-राज पुष्यमित्र।"

"देखो महामात्य ! कुछ ऐसी बात करो, जिससे साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।"

राक्षस यह बालकों की सी ईर्ष्या और द्वेष-भाव देखकर विस्मय मे डूब गया।

: ६ :

विदर्भ के महामात्य राक्षस इस बात को समझ चुके थे कि देश मे एक राष्ट्र का होना अत्यावश्यक है। एक राष्ट्र स्थिर रखने के लिये दो उपाय थे। एक था भारत मे साम्राज्य स्थापित करना। इस अवस्था मे सम्राट्

की न केवल राष्ट्रसम्बन्धी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता, प्रत्युत राज्य-सम्बन्धी आज्ञाओं का भी पालन करना पडता। दूसरा उपाय महर्षि पतंजलि ने सम्मुख रखा था। चक्रवर्ती राज्य मे राज्यान्तर्गत विषयों में चक्रवर्ती महाराज हस्तक्षेप नही करता। देश की सुरक्षा, राज्य की सुरक्षा और राष्ट्र की सुरक्षा ही चक्रवर्ती राज्य के अधीन होती है। यह ढग राक्षस को पसन्द था।

परन्तु यज्ञसेन हठी राजा था। वह मनोद्गारों से प्रभावित होकर ही अपने विचारो और कार्य का निश्चय करता था। जब से वह मगध-राज्य से स्वतन्त्र हुआ था, वह अपने राज्य-कार्य मे बहुत सीमा तक सफल हो चुका था। उसके राज्य पर किसी पडोसी राज्य से आक्रमण नही हुआ था और न विदेशी यवन ही उसके राज्य तक पहुँच सके थे। इससे वह यह समझने लगा था कि उसके राज्य की भौगोलिक स्थिति और उसके अपने प्रबन्ध की कुशलता ही इसका कारण है। इससे उसके मस्तिष्क मे कुछ सीमा तक अभिमान की मात्रा भी बढ गई थी।

एक दिन उसने राक्षस को बुला कर कहा, "कोई ऐसा व्यक्ति बताओ जो पुष्यमित्र के यज्ञ के अश्व को पकडकर छिपा सके और यह विदित न हो कि हमने उसे छिपा रखा है।"

"इससे क्या होगा ?"

"इससे यह होगा कि यदि हमारी सेना दुर्बल सिद्ध हुई, तो हम कह देगे कि हमारी जानकारी के बिना किसी अज्ञात व्यक्ति ने अश्व पकड़ लिया है और यदि हम मगध-सेना को अपने से दुर्बल पायेगे तो उसको परास्त कर स्वय चक्रवर्ती महाराज बनने का यत्न करेगे।"

राक्षस इस महत्वाकाक्षा को सुन और उसकी पूर्ति का उपाय जान हँस पड़ा। उसने कहा, "ऐसा प्रबन्ध हो सकता है। आपको एक विकट युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिये। कदाचित् वर्तमान मगध-सम्राट् गृह-वर्मन और बृहद्रथ की भाँति सरलचित्त नही है। वह अश्व के आपके राज्य मे रुक जाने का उत्तरदायित्व आप पर डालेगा।"

"यह तो बाद में देखा जायगा।"

छः मास इधर-उधर भ्रमण के पश्चात् उस अश्व ने विदर्भ मे प्रवेश किया। विदर्भ से उसे आन्ध्र और तत्पश्चात् कलिग जाना था।

कावेरी के दक्षिण राज्यों को अभी छोड दिया गया था। महर्षि पतजलि का विचार था कि उत्तरी भारत मे सगठन की आवश्यकता दक्षिण के राज्यो से अधिक है। अतः कावेरी के दक्षिण राज्यों की ओर ध्यान नही दिया गया।

उत्तरी भारत के अन्य सब राज्यो ने अश्व को सुरक्षित अपने-अपने राज्य मे से निकल जाने दिया था। विदर्भ मे भी यह कई दिन तक भ्रमण करता रहा। प्रत्येक गाँव मे अश्व की रक्षा का प्रबन्ध होता था, परन्तु जब वह नीरा से पचास कोस के अन्तर पर रह गया तो एक रात वह लापता हो गया। प्रातःकाल अश्व के दस सरक्षको ने ढूँढना आरम्भ कर दिया। चार-पाँच दिन की खोज के पश्चात् भी जब अश्व नही मिला, तो इसकी सूचना पाटलिपुत्र भेज दी गई।

पाटलिपुत्र मे अश्व के लापता हो जाने की सूचना मिलते ही विदर्भ के राजा यज्ञसेन के पास चेतावनी भेज दी गई। इसमे लिखा गया, "यदि इस चेतावनी के मिलने के दस दिन के भीतर यज्ञ का अश्व उपस्थित नही किया गया तो विदर्भ राज्य की ईट से ईट बजा दी जायेगी।"

विदर्भ नरेश यज्ञसेन ने इस चुनौती का उत्तर इस प्रकार दिया—"यज्ञ के अश्व के विषय में विदर्भ-राज्य कुछ नही जानता। वह अश्व हमारी सरक्षता मे नही था, अतः उसको ढूंढने का कार्य हमारा नही है।

"इस अवस्था मे यदि एक भी मागधी सैनिक हमारे राज्य में आया तो हम इसको युद्ध की घोषणा समझेगे और उसका उचित उत्तर देगे।"

इस उत्तर के पहुँचने पर, विदर्भ पर आक्रमण की तैयारी कर दी गई। तीन ओर से आक्रमण कर दिया गया। प्रत्येक सेना मे पचास-पचास सहस्र सैनिक थे।

सेना के विदर्भ राज्य मे प्रवेश करने से पूर्व विदर्भ के राजा यज्ञसेन

के पास सूचना भेजी गई कि यह सर्वविदित है कि अश्व विदर्भ के एक ग्राम मे पहुँचने के पश्चात् लुप्त हुआ है। इस कारण विदर्भ को उसके विषय मे जाँच करनी चाहिये थी। विदर्भ ने ऐसा करना स्वीकार नही किया। अतः हमारी सेना उस अश्व की खोज के लिये विदर्भ में प्रवेश कर रही है। यदि किसी भी व्यक्ति ने उस खोज मे बाधा उपस्थित की तो हमारी सेना उसे मृत्यु के घाट उतार देगी।"

राज्याधिकारी को इस सूचना के मिलने के दूसरे दिन तीन ओर से आक्रमण आरम्भ कर दिया। गाँव-गाँव और नगर-नगर मे खोज की गई।

आक्रमण से पूर्व सूचना आने पर यज्ञसेन ने अपने सेनाध्यक्ष और महामात्य को बुलाकर उक्त सूचना उनके सम्मुख रख दी। सेनाध्यक्ष का कहना था. "महाराज ! वह यज्ञ का अश्व वापस कर दिया जाय और युद्ध होने से रोका जाय।"

"क्यो, युद्ध से भय लगता है सेनापति !"

"यह बात नही महाराज ! युद्ध की भयङ्करता को जानकर यह अश्व की चोरी एक अति तुच्छ वस्तु है।"

"तो सेनापति यह समझते है कि हमने अश्व की चोरी केवल एक घोडा प्राप्त करने के लिये की थी ?"

"तो किस लिए की है महाराज ?"

"यह प्रकट करने के लिये कि हम मगध वालो से छोटे नही है।"

"छोटे तो हम है ही। विदर्भ, मगध राज्य का, जो आज पुनः अग-देश से लेकर सिन्धु नदी तक विस्तार पा गया है, बीसवाँ भाग भी नही है। मगध की जन-सख्या, जो राज्य की शक्ति होती है, विदर्भ की जन-संख्या से चालीस गुना अधिक है। दो वर्ष के राज्य मे पुष्यमित्र ने मगध की प्रजा मे एक नव-जीवन का संचार कर दिया है। ऐसे महापुरुषों से ईर्ष्या करने से हानि होने की ही सम्भावना है।"

"हम समझते है कि सेनापति को विदर्भ की सेवा छोड़, मगध की सेवा स्वीकार कर लेनी चाहिये।"

"यह बात नही है महाराज ! आप युद्ध की घोषणा कर दें और फिर देखें कि आपकी सेना और सेनापति क्या करते है ।"

"आप बताइये महामात्य ?"

"मगध की एक लक्ष पचास सहस्र सेना कल विदर्भ मे प्रवेश करने जा रही है । विदर्भराज आज विचार कर रहे हैं कि क्या करना चाहिये ! आपको तो आज से कई दिन पूर्व अपनी नीति का निर्धारण कर लेना चाहिये था ।"

"तो क्या यह महामात्य का कार्य नही है कि वह हमें समय पर सुझाव दे कि वर्तमान परिस्थिति मे हमे क्या करना चाहिये ?"

"मैने तो महाराज ! समय पर अपना सुझाव दे दिया था । घोडे को लुप्त करने से पूर्व ही मैने निवेदन कर दिया था कि मगध के पास पाँच लक्ष चतुरगिणी सेना है । उसने अभी तो उस सेना का एक अशमात्र ही भेजा है । अब तो मगध मे यह मानापमान का प्रश्न बन गया है और यदि आवश्यकता पडी तो उनकी सम्पूर्ण सेना विदर्भ पर चढ आयेगी ।"

"तो हमारे महामात्य का यह विचार है कि हम विदर्भ पर आक्रमण करने वालो को घोडा वापस देकर, उनसे क्षमा-याचना कर लें ।"

"मैने इस प्रकार की कोई बात नहीं कही । मेरा तो कहना यह है कि श्रीमान् यह देखना चाहते थे कि मागधी-सेना हमारी सेना से अधिक है अथवा नही ? सो श्रीमान् जान गये है। अतः अब जो आज्ञा प्रसारित करना चाहें वह शीघ्र ही करवा दी जाय, जिससे हम लोग तदनुसार कार्य मे अग्रसर हो सके ।"

इस पर यज्ञसेन ने कहा, "मै चाहता हूँ कि सेना का विरोध न किया जाय । उसको भीतर प्रविष्ट होने दिया जाय । जब तीनों सेनाये नीरा के चारो ओर एकत्रित हो जाये तो अपनी सेना लेकर, पीछे से आक्रमण कर दिया जाय । इधर नगर के द्वार बन्द कर दिये जायँ ।

"यह चाल कितनी युक्ति-युक्त है इस विषय में सेनापति ही बता सकते हैं । जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मुझको आज्ञा दे दी जाय । मै तदनुसार ही

उसका पालन करूँगा।" राक्षस का कथन था।

"तो हमारी आज्ञा है कि अपनी सेना को तीन ऐसे स्थानों पर छिपा कर रख दो, जहाँ उसके होने की आशका ही न हो। जब मागधी सेना सीमा से चल कर राजधानी के चारो ओर एकत्रित हो जाय, तब राजधानी के द्वार बन्द कर दिये जायें और तीनो ओर से अपनी सेना मागधी सैनिकों पर आक्रमण कर दे।"

सेनापति गम्भीर विचारो मे निमग्न था। महामात्य ने प्रश्नभरी दृष्टि से उसकी ओर देखा तो उसने एक दीर्घ निःश्वास छोडा और उठ कर चलते हुए बोला, "महाराज की आज्ञा का यथावत् पालन किया जायेगा।"

: ६ :

मागधी सैनिक पग-पग पर विदर्भ की सेना की ओर से विरोध की आशा करते थे। परन्तु उनके विस्मय का ठिकाना नही रहा, जब उनको किसी स्थान पर भी विरोध होता दिखाई नही दिया।

सेनापति विद्रुम इस समर का सचालन कर रहा था। वह स्वयं उत्तर की ओर से आने वाली सेना के साथ था। इस पर भी वह तीनो ओर की सेना के समाचार प्राप्त कर, उनकी गतिविधि पर नियन्त्रण रख रहा था।

तीन दिन की यात्रा मे तीनों सेनाएँ पचास कोस के लगभग राज्य में घुस आई थी। अभी तक एक भी सैनिक उनके विरोध के लिये सम्मुख नही आया था। मागधी सैनिक भी उस गति से नही चल रहे थे, जिस गति से किसी समर के लिये सेनाएँ चला करती है। इसमे कारण यह था कि मगध की सेना विदर्भ को विजय करने नही, प्रत्युत यज्ञ के अश्व को ढूंढने आई थी। इसमे समय लग रहा था।

विद्रुम दिन भर की खोज के पश्चात् सैनिक शिविर मे विश्राम कर रहा था। अन्य दो दिशाओं से सेना के बढ़ने के समाचार आ रहे थे। इस समय एक सैनिक ने उसके सम्मुख उपस्थित हो कर कहा, "श्रीमान्! एक युवक भेट करना चाहता है।"

"उसकी तलाशी ले कर, उसको भीतर आने दो।"

एक स्वस्थ, सुन्दर युवक विद्रुम के सम्मुख खड़ा हो बोला, "मै सेनापति महोदय से एकान्त में बात करना चाहता हूँ।"

"ठीक है, बैठ जाओ।"

इसके पश्चात् सुरक्षा मे नियुक्त सैनिक खेमे से बाहर हो गये। एकान्त पा युवक ने कहा, "मैं महाराज यज्ञसेन के भाई का लड़का हूँ। मेरा नाम माधवसेन है। मुझे विदर्भराज की नीति पसन्द नही। अतः मै मगध की सहायता करना चाहता हूँ।"

"क्या सहायता कर सकते हो युवक!"

"मुझे यह विदित है कि अश्व का यज्ञ कहाँ पर छिपा कर रखा गया है। अत यदि मुझे अश्व को दिलाने का पुरस्कार मिले तो मै बिना युद्ध के अश्व दिला सकता हूँ।"

"अश्व तो हम ढूँढ लेगे। हम राज्य की पूर्ण प्रजा की नाक मे दम कर देगे और अश्व को कही न कही से खोज लेगे।"

"प्रजा को तग करने की क्या आवश्यकता है? वह तो निर्दोष है। इसमे आज्ञा तो महाराज यज्ञसेन की है और छिपा कर रखने वाला एक विशेष व्यक्ति है।"

"तुम इसके प्रतिकार में क्या पुरस्कार चाहते हो?"

"अपने चाचा के पश्चात् यहाँ का राज्य।"

"परन्तु यज्ञसेन ने अभी तक हमसे युद्ध की घोषणा नही की। उसके सैनिकों ने अभी तक हमारे सैनिकों का विरोध नही किया। अतः धर्म के नियमो से वह हमारा शत्रु नही कहा जा सकता और इस कारण हम उसे पदच्युत् भी नही कर सकते।"

"परन्तु यह सब कुछ तो होने वाला है ही। कुछ ही दिनों में दोनों सेनाओ में घोर युद्ध होगा और कदाचित् उस युद्ध मे स्वय यज्ञसेन सेनाध्यक्ष का पद अपने हाथ में ले ले।"

"जब ऐसा होगा, तभी तो हम तुम्हें, तुम्हारी सेवाओं के लिये पुरस्कृत कर सकेगे।"

"तो आप वचन देते है कि यदि चाचा यज्ञसेन आपका शत्रु घोषित हो गया तथा आपकी सेना और उसकी सेना मे युद्ध हो गया, तो आप मुझको पुरस्कार देगे ?"

"हाँ, तुम्हारी इस सूचना के लिये हम प्रसन्न है और हम तुम्हारी प्रत्येक सेवा के लिये तुमको पुरस्कृत करेगे। परन्तु पुरस्कार की मात्रा तो कार्य देखकर ही निश्चित की जा सकती है।"

"ठीक है, मैं आपकी बहुत सहायता कर सकता हूँ। अभी तक भी जो आपका विरोध नहीं हुआ, वह भी योजनाबद्ध ही है। मै इसमे आपकी वह सहायता करूँगा, जो विभीषण ने राम की भी नही की थी।

"सुनिये, यज्ञसेन की योजना है कि जब आपकी तीनो सेनाएँ राजधानी पर आकर एकत्रित हो, तब विदर्भ की सेना पीछे से आप पर आक्रमण कर देगी। इस प्रकार आपको पराजित कर दिया जायेगा।"

विद्रुम कुछ इसी प्रकार की योजना की सम्भावना करता था और इसका उपाय उसने अपने मन मे विचार भी कर लिया था। माधवसेन ने इसके पश्चात् कहा, "अपने चाचा के इस जाल को छिन्न-भिन्न करने का उपाय मैने सोचा है। यदि आप मेरा विश्वास करे तो मै आपको राजधानी पर, पीछे से आने वाली सेना के आक्रमण से पूर्व ही, अधिकार करा दूँगा। तब आपके लिये सेना को परास्त करना अति सुगम होगा।"

"क्या उपाय सोचा है इसका तुमने ?"

"मैं चाहता हूँ कि अन्तिम दो पडाव आप एक ही दिन मे पूरे करे। इस प्रकार आप चाचा के अनुमान से एक दिन पूर्व राजधानी मे पहुँच जायेगे। पीछे आने वाली सेना का, एक दिन की यात्रा का मार्ग पीछे रह जायेगा। मै आपको राजधानी का पूर्वी द्वार, एक नियत समय पर खुलवा दूँगा। उस समय आप अपनी सेना का एक सुदृढ़ भाग द्वार के समीप तैयार रखे और द्वार खुलते ही भीतर घुस आये। इससे द्वार आपके अधिकार में आ जायगा और प्रातःकाल तक आप पूर्ण नगर पर अधिकार कर सकेगे। वही आपको यज्ञ का अश्व भी मिल जायगा।"

"अच्छी बात है, यदि तुम ऐसा कर सको तो मगध राज्य तुम्हारा राज्यारोहण स्वीकार कर लेगा।"

विद्रुम शत्रु के किसी भी व्यक्ति पर विश्वास नही कर सकता था। इस पर भी माधवसेन की बात की परीक्षा आवश्यक थी।

विद्रुम ने पूर्ण सेना मार्ग में ही छोड दी। सेना के दो विभाग, जिसमे दो सहस्र सैनिक थे, साथ लेकर उसने राजधानी को पूर्व और पश्चिम से घेर लिया। माधवसेन के कथनानुसार अन्तिम दिवस दुगुना मार्ग चल, सेना के साथ, यज्ञसेन की आशा से एक दिन पूर्व ही, वह राजधानी मे पहुँच गया। इससे वहाँ घबराहट फैल गई।

रात के समय जैसा कि माधवसेन से निश्चय हुआ था, पाँचसौ योद्धाओ को नगर के पूर्वी द्वार के पास छिपा कर रखा गया। एक अन्य पाँच सौ सैनिको की टुकडी, कुछ अन्तर पर पेड़ो के झुरमुट मे छिपा कर खडी कर दी गई और शेष सैनिको को ठीक समय पर आक्रमण करने के लिए तैयार रखा गया।

विद्रुम स्वय द्वार के समीप खडा द्वार खुलने की प्रतीक्षा कर रहा था। यह निश्चय था कि मध्यरात्रि के समय नगर का पूर्वी द्वार खुलेगा और खुलते ही मागधी सेना को द्वार मे घुस कर अधिकार कर लेना चाहिए।

योजनानुसार ठीक मध्यरात्रि के समय द्वार खुला और मगध के पाँच सौ सैनिक द्वार में घुस गये और उन्होंने द्वार पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् उस द्वार में से शेष सैनिक नगर में प्रविष्ट हो गये और पूर्ण नगर पर अधिकार कर लिया गया। विदर्भ की पूर्ण सेना तो, योजनानुसार मगध पर पीछे से आक्रमण करने के लिये, नगर से बीस कोस के अन्तर पर पडाव डाले पडी थी।

तत्पश्चात् राज्यप्रासाद पर आक्रमण कर दिया गया। यज्ञसेन और विदर्भ का सेनापति, दोनों राज्य-प्रासाद के सम्मुख लड़ते-लड़ते मारे गये। महामात्य राक्षस को बन्दी बना लिया गया और तदनन्तर युद्ध में

यज्ञसेन की मृत्यु की घोषणा कर दी गई। इस घोषणा का परिणाम यह हुआ कि विदर्भ की सेना ने शस्त्र डाल दिये।

माधवसेन रात्रि के समय, पूर्वी द्वार पर राजाज्ञा से द्वार खोल बाहर जाने लगा था कि मागधी सेना ने आक्रमण कर दिया। इस घमासान युद्ध मे वह भी बन्दी बना लिया गया था।

: ७ :

यज्ञ के अश्व को वीरभद्र ने चुराया था और महामात्य की आज्ञा से राज्यप्रासाद के नीचे, एक गुफा मे छिपा कर रखा हुआ था। साथ ही वह उस अश्व की देखभाल भी कर रहा था।

राक्षस की आज्ञा थी कि वीरभद्र अश्व को मगध सेना के हाथ मे तब तक न दे, जब तक कि उसको इसके लिये स्वीकृति न दी जाय।

यदि वीरभद्र को, मागधी सेनाओ के नीरा पहुँचने से पूर्व, अश्व को नीरा से निकाल ले जाने की स्वीकृति दे दी जाती, तो मगधवालों को उसका ढूंढ निकालना कठिन हो जाता। कदाचित् राक्षस के मन मे यह विचार भी था, परन्तु मगध-सेना के निर्धारित समय से पूर्व वहाँ पहुँच जाने पर, इस योजना में बाधा खडी हो गई और फिर उसी रात एक रहस्य-मय ढग से पश्चिमी द्वार खुल जाने और मागधी सेना के नगर के भीतर घुस आने से राक्षस की योजना कार्यान्वित नही हो सकी।

नगर पर अधिकार होते ही नगर के द्वार बन्द कर दिये गये और माधवसेन तथा यज्ञ के अश्व की खोज होने लगी।

पूरे एक दिन तक बहुत ही गडबड़ रही। माधवसेन, जो नगर के पूर्वी द्वार पर बदी बना लिया गया था, अपना नाम बताये बिना बदीगृह के सरक्षकों से कहता रहा कि उसको सेनापति विद्रुम से कार्य है और संर-क्षक उसकी बात का विश्वास न कर उसे बन्दी बनाये रहे।

जब विदर्भ की सेना ने शस्त्र डाल दिये और सेना को विघटित कर दिया गया तो राज्य-भर में घोषणा कर दी गई कि यज्ञ के अश्व का पता देने वाले का दस सहस्र स्वर्ण पुरस्कार में दिया जायेगा।

पूर्ण राज्य में अश्व की खोज आरम्भ हो गई। दूसरे दिन माधवसेन ने बदीगृह के सरक्षक से कहा, "मुझको सेनापति विद्रुम से मिला दो। मै उनको एक विशेष सूचना देना चाहता हूँ।"

संरक्षक एक साधारण सैनिक था और उसकी बुद्धि बहुत ही मोटी थी। उसने कहा, "तुम पर विश्वास नही किया जा सकता।"

"क्यो ?"

"तुम सन्देहात्मक परिस्थिति मे पकडे गये हो। तुमको न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया जायेगा।"

"तो कर दो, किसी के पास तो ले चलो। मै एक अत्यावश्यक समाचार देना चाहता हूँ।"

"मेरी निन्दा करोगे न ? और क्या समाचार हो सकता है तुम्हारे पास ?"

"सेनापति विद्रुम से पता तो करो कि वे मुझसे मिलना चाहते है अथवा नही ? तुम स्वय ही न्यायाधीश क्यो बन रहे हो ?"

"तो तुम अपना नाम क्यों नही बताते ?"

"यदि मै बता दूँ तो वह नाम तुम सेनापति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को तो नही बताओगे ?"

"तुम क्या यज्ञसेन के पुत्र हो, जो अपना नाम इतना छिपाकर रख रहे हो ?"

माधवसेन को उस पर क्रोध आ रहा था। उसने कहा, "यज्ञसेन के पुत्र से भी अधिक।"

"ओह !" सरक्षक ने हँसते हुए कहा, "तो यज्ञसेन स्वयं हो। ठीक है न ?"

"हाँ, अब तुम ठीक समझ गये हो।"

"पर मै तो यह जानता हूँ कि यज्ञसेन की, पहली रातही लड़ते-लड़ते, मृत्यु हो गई थी। उसका तो कल दाह-सस्कार भी हो चुका है। दाह-संस्कार के समय उसकी रानियाँ भी उपस्थित थी।"

"यही तो भूल हो रही है। देखो, तुम अपने सेनापति तक एक सूचना भेज दो कि एक बन्दी कहता है कि विदर्भ के राजा की अभी मृत्यु नही हुई है। वह बन्दी-गृह मे है और तुरन्त उनसे मिलना चाहता है।"

वह सरक्षक यह सुन कर खिलखिला कर हँस पडा और बोला, "मै तुमको पागलखाने भिजवाने का प्रबन्ध किये देता हूँ।" इतना कह वह हँसता हुआ बन्दीगृह से बाहर चला गया। उसके मन मे यह विश्वास बैठ गया था कि यह बन्दी पागल हो गया है।

वह बन्दीगृह से बाहर निकला ही था कि सेनापति विद्रुम सेना-शिविर मे आ पहुँचा। बन्दीगृह के सरक्षक ने विचार किया कि वह सेनापति को सूचना दे दे कि एक बदी का मस्तिष्क खराब हो गया है, जो अपने को विदर्भ का राजा कहता है। आते ही सेनापति के पास पहुँचा, और नमस्कार करके बोला, "श्रीमान्! मेरे बन्दीगृह मे आक्रमण की रात्रि मे एक युवक को पकडकर लाया गया था। वह कहता है कि विदर्भ का महाराज यज्ञसेन वह ही है। श्रीमान् मेरा अनुमान है कि वह पागल हो गया है।"

विद्रुम भी उस बदी के स्वय को यज्ञसेन घोषित करने पर मुस्कराया और बोला, "उसके हाथ-पाँव बाँधकर मेरे पास ले आओ। भला हम भी तो देखे कि यह नया यज्ञसेन कौन उत्पन्न हो गया है।"

जब माधवसेन को विद्रुम के सम्मुख उपस्थित किया गया तो वह खिल-खिला कर हँस पड़ा। उसने कहा, "हम दो दिन से तुम्हारी खोज कर रहे है। तुम्हे यहाँ कौन ले आया है?"

"मैने उस रात द्वार खोलने के लिये एक षड्यन्त्र किया था। महाराज के हस्ताक्षरो से एक आज्ञा-पत्र तैयार कर मै द्वारपाल के पास लाया। उस आज्ञा-पत्र मे लिखा था, पत्र-वाहक विश्वस्त गुप्तचर है। इसको हम मागधी-सेना का समाचार जानने के लिये भेज रहे है। इसको जाने दिया जाय।

"यह आज्ञा पा द्वारपाल ने खिड़की खोल दी, परन्तु मै अपने साथ अश्व लाया था। वह अश्व खिड़की मे से नही निकल सका। अतः पूर्ण

द्वार खोलना पड़ा। ज्योही द्वार खुला मागधी सेना भीतर घुस आई। मै बाहर नही निकल सका। आपकी सेना द्वारा ढकेला हुआ मै पुनः नगर मे पहुँच गया। तत्पश्चात् मुझे विदर्भ का सैनिक समझ बन्दी बना लिया गया। मै तभी से यत्न कर रहा हूँ कि आपसे मिलने का अवसर मिले, परन्तु यह सरक्षक तो न्यायाधीश ही बन बैठा। मै सत्य बोलता हूँ अथवा झूँठ, मुझको आपसे कोई कार्य है अथवा नही, मै यज्ञसेन हूँ अथवा कोई अन्य, यह स्वयं ही निर्णय कर उस पर दण्ड भी घोषित कर देता है।

"आज मैने इसको कहा कि मै विदर्भ का राजा हूँ, तो इसने निर्णय सुना दिया कि मै पागल हो गया हूँ।"

विद्रुम माधवसेन की बात पर बहुत हँसा। उसने सैनिक को आज्ञा दी कि वह माधवसेन के हाथ खोल दे। जब माधवसेन स्वतन्त्र हो गया तो सेनापति ने कहा, "हमें अभी तक यज्ञ का अश्व नही मिला।"

"इसीलिए तो मै आपसे मिलना चाहता था। परन्तु आपके मूर्ख बन्दी-गृह सरक्षक ने मुझको आपसे दूर रखने के कारण दो मूल्यवान दिवस गँवा दिये है। मै जानता हूँ कि अश्व कहाँ था। यदि वह अब तक मार नही डाला गया, तो आपको वहाँ पर मिल जायेगा।"

"उसके मारे जाने की भी सम्भावना है क्या ?"

"हाँ, वह अश्व एक ऐसे व्यक्ति के संरक्षण मे रखा गया है, जिसकी लडकी मगधराज से अत्यन्त द्वेष रखती है।"

"कौन है वह ?"

"वीरभद्र और उसकी लडकी सौम्या।"

इस समाचार से तो विद्रुम घबरा उठा। उसने तुरन्त पचास सैनिक माधवसेन के साथ कर कहा, "इनके साथ जाओ और अश्व को छुड़ा कर ले आओ। यदि कोई बाधा उपस्थित करे तो उसको मृत्यु के घाट उतार देना।"

: ८ :

वीरभद्र ने जब अपनी पत्नी को बताया कि उसको बिना किसी कार्य

के विदर्भ राज्य मे एक सौ स्वर्ण वार्षिक पर नौकर रख लिया गया है तो उसकी पत्नी पद्मा ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछ लिया, "यह तो बात कुछ समझ मे नही आई।"

"मैने तो कुछ कार्य माँगा था, परन्तु महामात्य मेरा परिचय प्राप्त कर बोले एक सप्ताह बाद आना। मैं एक सप्ताह के पश्चात् गया तो उसने कहा तुम बूढे हो गये हो, सेना मे कार्य नही कर सकोगे। इस पर भी राज्य तुमसे कुछ न कुछ कार्य लेगा और अभी तुमको एक सौ स्वर्ण वार्षिक वेतन मिलेगा। जब कोई कार्य करने के लिए दिया जायगा तो उसके लिये विशेष पुरस्कार भी मिलेगा।"

"देखिये आर्य ! आप एक क्षत्रिय का कार्य माँगने के लिये गये थे, किन्तु यह तो एक प्रतिहार का कार्य मिल गया है ?"

"कैसे ?"

"अब आप विदर्भ राज्य के सेवक है। कार्य कुछ निश्चित नही। जब भी, जो कुछ भी महाराज के मन मे आयेगा, वह करने के लिए आप से कह दिया जायगा। कार्य होने पर पुरस्कार मिल जाया करेगा।"

"तो क्या यह प्रतिहारो का कार्य है ? खैर, जो कुछ भी है, थोड़े ही दिनों मे सब ठीक हो जायेगा।"

परन्तु ठीक नही हुआ। एक दिन महामात्य राक्षस ने वीरभद्र को बुलाकर कहा, "वीर सैनिक ! महाराज तुमसे एक कार्य कराना चाहते है ?"

"आज्ञा कीजिये श्रीमान् !"

"पुष्यमित्र ने अश्वमेध-यज्ञ रचाया है। यज्ञ का अश्व देश-देशान्तर का भ्रमण करता हुआ हमारे राज्य में आ पहुँचा है। महाराज का विचार है कि अश्व को चुरा कर छिपा लिया जाय।

"इस कारण हमारा विचार है कि तुम पचास सैनिकों को साथ लेकर यह कार्य करो। अश्व को छिपाने के लिए स्थान हम बता देंगे। उन पचास सैनिकों की सहायता से तुम उस स्थान की रक्षा करना। इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए तुम्हे भारी पुरस्कार दिया जायेगा।"

वीरभद्र इसको राजनीति समझता था और अपने स्वामी के कार्य का उद्देश्य जाने बिना, वह कार्य करने के लिए तैयार हो गया।

एक बात उसके मन में संशय उत्पन्न कर रही थी। वह थी अश्व का चोरी करना और उसको छिपा कर रखना। यज्ञ के अश्व को रोकने की सामर्थ्य हो तो फिर लुकाव-छिपाव की आवश्यकता नही और यदि सामर्थ्य न हो तो फिर यज्ञ के अश्व को चुराना अधर्म हो जायेगा।

परन्तु यह विचार कर कि एक सैनिक को अपने अधिकारी की आज्ञा का पालन करना चाहिये, उसमें मीन-मेख निकालना उसका कर्तव्य नही है, धर्माधर्म का उत्तरदायित्व आज्ञा देने वाले पर है, वह एक सैनिक पर नही हो सकता।

अतः जब अश्व राजधानी से कुछ अन्तर पर रह गया तो रात के समय उसे वीरभद्र के साथी पकड कर ले गये। अश्व के सरक्षक इतने लम्बे-चौडे भ्रमण मे सतत् विरोध के अभाव में निश्चिन्त हो गये थे। विदर्भ मे भी जब किसी प्रकार का विरोध नही दिखाई दिया तो संरक्षक अश्व को खुला छोड़ आनन्द मे सो रहे थे।

वीरभद्र और विदर्भ के सैनिक अश्व को रात ही रात में राजधानी मे ले आये और उसको राज्यप्रासाद के नीचे एक गुफा मे, जिसका द्वार गुप्त स्थान पर था, ले जाकर रख दिया गया।

यह सब कार्य इतनी चतुराई से किया गया कि संरक्षक यज्ञ के अश्व के खुरचिह्न भी नही पा सके। साथ ही यह कार्य विदर्भ की जनता से भी गुप्त रखा गया।

अश्व की चोरी करने के अगले दिन जब वीरभद्र घर पर आया तो पद्मा ने उसके पहली रात घर से बाहर रहने का कारण पूछा। वीरभद्र अपना कार्य किसी को भी बताना नही चाहता था। इस कारण उसने कह दिया, "राज्य-कार्य से गया था।"

"तो राज्य ने कुछ कार्य आपके योग्य समझा है ?"

"हाँ, तभी तो करने के लिए दिया है। कार्य के समाप्त होने पर

भारी पुरस्कार की आशा दिलाई है।"

"तब तो हमारा भाग्य-चक्र घूम गया समझना चाहिये ?"

"हाँ, कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है।"

पद्मा तो चुप कर रही, परन्तु उसकी लडकी सौम्या, जो इस वार्तालाप को सुन रही थी, इस समय मुस्करा रही थी। वीरभद्र को उसके मुस्कराने पर विस्मय हुआ था। उस दिन विश्राम कर वीरभद्र जब अश्व की रक्षा का प्रबन्ध देखने के लिए जाने लगा तो सौम्या ने उसको अकेले देख पूछ लिया, "पिता जी ! कब तक इस पर चौकीदारी करते रहेगे ?"

"किस पर बेटी ?"

"यज्ञ के अश्व पर।"

वीरभद्र इस गुप्त रहस्य का उद्घाटन सौम्या के मुख से सुन, भौचक्का हो उसका मुख देखता रह गया। इस पर सौम्या ने हँसते हुए कहा, "मुझको विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि महाराज आपको अश्व चुराने और सुरक्षा से छिपाकर रखने का दस सहस्र पुरस्कार देगे।"

"मै भी तो यही जानना चाहता हूँ कि वह विश्वस्त सूत्र कहाँ है ? यह बात इतनी गुप्त रखी गई है कि इसका तुमको ज्ञान हो जाना आश्चर्य की बात है।"

"आपको आज्ञा देने वाले को और आपको तथा आपके साथियों को तो इस बात का ज्ञान है ही। जब कोई रहस्य की बात इतने व्यक्तियों को विदित हो जाती है तो वह फिर छिपी नहीं रह सकती। इसीलिये कह रही हूँ कि इसको समाप्त कर दो। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।

"क्या मतलब है तुम्हारा ? किसको समाप्त कर दूँ ?"

"देखिये पिताजी ! यह अश्व लापता हो गया है। इसके लापता होने की सूचना पाटलिपुत्र पहुँची तो दल के दल सैनिक विदर्भ पर उमड़ आयेगे। सम्भव तो यह है कि यज्ञसेन वहाँ की टिड्डी-दल के समान सेना को देखकर अपनी पराजय स्वीकार कर ले और अश्व वापस कर दे। यह भी हो सकता है कि यज्ञसेन युद्ध करे और परास्त हो मारा जाय। दोनो अव-

स्थाओं मे आपका पुरस्कार एक कल्पना-मात्र रह जायगा।

"मेरी सम्मति यह है कि अश्व की हत्या कर दी जाय। इसकी सूचना विदर्भराज को पहुँचा कर पुरस्कार प्राप्त कर लिया जाय। पीछे विदर्भ का यज्ञसेन चक्रवर्ती राजा हो अथवा मगध का पुष्यमित्र, हमे इससे क्या ? हम तो पुरस्कार पा ही जायेंगे।"

"देखो सौम्या ! यज्ञ का अश्व मैंने अपने लाभ अथवा हानि के लिए नही पकडा है। मै विदर्भ का सेवक हूँ और उसकी आज्ञा से अश्व को पकड कर लाया हूँ। यह उसका कार्य है कि वह उसको रखे अथवा मरवा डाले।"

"यह ठीक है पिताजी ! मै आपकी बात समझती हूँ। परन्तु आपको यह विदित होना चाहिए कि वह कार्य किसी अन्य सैनिक को न देकर आपको ही क्यो दिया गया है ? क्या इसमे कुछ भी कारण नही ? मै समझती हूँ कि हमारा मगध-राज्य से पूर्व सम्बन्ध जानकर ही हमको यह कार्य करने के लिए कहा गया है। महाराज यज्ञसेन और महामात्य राक्षस जानते है कि हम इस विषय मे स्वय अपने मन की अवस्था के कारण भी रुचि रखते है।"

"यह तुम कैसे जानती हो ?"

"कैसे भी सही, किन्तु यह ठीक नही है क्या ?"

"मै नही जानता। मुझको आज्ञा मिली है कि मै अश्व को चुराकर ले आऊँ। मै ले आया। मुझको आज्ञा हुई कि मैं उसकी रक्षा करूँ, वह कर रहा हूँ। जब मुझको आज्ञा मिलेगी कि उसकी हत्या कर दी जाय, तो कर दूंगा।"

"तो आज्ञा मिलनी चाहिये ? ठीक है, एक व्यक्ति, जो जीवन भर दूसरों की सेवा करता रहा है, वह सेवा-कार्य से आगे नही देख सकता।"

"पर मै तो देख सकता हूँ। यदि मै सेवक न होता और स्वतन्त्र होने पर भी अश्व को रोक रखने की शक्ति रखता, तो यज्ञ के इस अश्व को कभी न रोकता।"

"क्यो, पुष्यमित्र जैसे हत्यारे को चक्रवर्ती बनते देख, आपको दुःख नही होता क्या ?"

"यदि वह चक्रवर्ती न बन सके तो क्या मै चक्रवर्ती बन जाऊँगा। देखो सौम्या ! मै इस अश्व को पकडना और वह भी चोरो-चोरी, पसन्द नही करता। यह पाप है। किसी भी यज्ञ मे विघ्न डालना हमारा काम नही है।"

"महाराज यज्ञसेन का भी नही ?"

"यज्ञसेन का कार्य हो सकता है, यदि वह स्वयं चक्रवर्ती राजा बनने की अभिलाषा, सामर्थ्य और अवसर रखता हो। अन्यथा नही।"

: ६ :

वीरभद्र के विस्मय का ठिकाना नही रहा, जब उसको विदित हुआ कि महाराज यज्ञसेन ने उसको बुलाया है। अभी तक तो महाराज की आज्ञा महामन्त्री राक्षस के द्वारा ही मिला करती थी। आज जब वह गुफा-द्वार पर अश्व की सुरक्षा का प्रबन्ध देख रहा था तो महाराज के प्रासाद का एक प्रतिहार उसकोबु लाने वहां पहुँच गया और पूछने लगा, "वीरभद्र कौन है ?"

"मै हूँ। क्या बात है ?"

"महाराज बुलाते है।"

"कौन महाराज ?"

"विदर्भ के महाराज यज्ञसेन।"

"चलो।"

वीरभद्र उसके साथ राज्यप्रासाद के मुख्य द्वार मे से होता हुआ, महाराज के सम्मुख जा उपस्थित हुआ। यज्ञसेन ने उसको सिर से पाँव तक देखकर पूछा, "तुम वीरभद्र हो ?"

'जी महाराज ! सेवक का यही नाम है।"

"तुम बृहद्रथ के श्वसुर हो ?"

"हाँ महाराज ! दुर्भाग्य से मै उसका श्वसुर था। अब मेरी लड़की

विधवा है और मेरे पास ही रहती है।"

"तुमने पुष्यमित्र की हत्या का यत्न किया था ?"

"हाँ, श्रीमान् !"

"देखो, हमने तुम्हे एक काम सौपा है। तुमको पुष्यमित्र के यज्ञ के अश्व की रक्षा और उसको छिपाकर रखने का कार्य दिया गया है।"

"अपनी पूर्ण सामर्थ्य से उस आज्ञा का पालन कर रहा हूँ, महाराज !"

"उसके विषय मे हमारी यह आज्ञा है कि यदि युद्ध मे हमारी पराजय हुई तो अश्व उनके हाथ मे नही जाना चाहिये।"

"श्रीमान् की पराजय की अवस्था मे सेवक का शव भी रणभूमि मे ही मिलेगा, महाराज !"

"परन्तु हम यह नही चाहते। हम चाहते है कि जब तुमको विश्वास हो जाय कि हमारी पराजय होगी ही, तो अश्व को उसी गुफा मे निर्बन्ध्या नदी के किनारे ले जाकर, उसके टुकड़े-टुकड़े कर तुम नदी मे बहा देना।"

वीरभद्र इस आज्ञा को सुन अवाक् खडा रह गया। यज्ञसेन ने उसे चुप देख समझा कि वह यह कार्य कर देगा। इस पर उसने पुनः कहा, "दस सहस्र स्वर्ण इस कार्य के पुरस्कारस्वरूप तुम्हे महामात्य की ओर से यथा समय मिल जायेगा।"

इतना कहकर महाराज यज्ञसेन उठ खडे हुए और वीरभद्र अपने मन मे एक विशेष प्रकार की चचलता अनुभव करता हुआ वहाँ से चला आया। वह इस कार्य को धर्मविपरीत समझता था। यज्ञ का अश्व तो किसी का भी शत्रु नही था। शत्रु तो पुष्यमित्र था। यदि पुष्यमित्र को परास्त नही किया जाता तो यज्ञ के अश्व की हत्या से वह कैसे परास्त हो जायेगा। अश्व तो एक सकेत मात्र था।

वह वहाँ से अपने घर पहुँचा तो पद्मा और सौम्या मे विवाद चल रहा था। पद्मा को सौम्या ने, वीरभद्र को मिले कार्य का विवरण सुना दिया था और पद्मा को यह कार्य पसन्द नही आया था। वह समझती थी यह कार्य क्षत्रियोचित नही है। सौम्या अपनी माँ को समझा रही थी कि कार्य

भले ही अच्छा न हो, परन्तु इससे उसके पिताजी को बहुत बड़ा पुरस्कार मिलेगा।

"उस पुरस्कार का क्या करेगे ? यदि हम अपने क्षत्रिय धर्म से ही पतित हो गये तो ?"

"इस कार्य से हम पतित क्यो होगे ?"

"एक वीर क्षत्रिय का यह कर्तव्य नही है कि वह चोरी करे और फिर उस चोरी के माल को छिपाकर रखे।"

"परन्तु यह तो महाराज की ओर से हो रहा है। चोर है तो वे है, हम तो वेतन-भोगी सैनिक होने के कारण उनकी आज्ञा का पालन कर रहे है, जो हमारा कर्तव्य है।"

इस समय वीरभद्र आ गया। उसके आते ही पद्मा ने कहा, "मैने आपको पहले ही कह दिया था कि आपको एक प्रतिहार का कार्य मिला है। अब आपकी समझ मे आया है न ?"

"हाँ पद्मा ! तुम सत्य ही कहती थी। मुझे चोरी करने के लिए कहा गया। पश्चात् चोरी के माल की रक्षा करने के लिये और अब एक विशेष परिस्थिति मे चोरी के माल को नष्ट कर देने का आदेश मिल गया है।"

इस पर वीरभद्र ने वह आदेश, जो यज्ञसेन ने उसको दिया था, सुना दिया। यह सुनकर तो पद्मा भी अवाक् बैठी रह गई। किन्तु सौम्या यह सुन प्रसन्नता से भर कर बोली, "तो आप पुरस्कार ले आइये। आज ही महामात्य से मिल लीजिये।"

"मैं इस कार्य का पुरस्कार लेने नही जाऊँगा। देखो सौम्या ! मै अभी इस कार्य के लिए मन को तैयार भी नही कर सका। जब अश्व की हत्या करने का निश्चय कर लूंगा, तब पुरस्कार के विषय में भी विचार कर लूंगा।"

"परन्तु आप यह क्यों नही करेगे ?"

"यह तो एक बन्दी को बदीगृह में डाल कर, उसको मार डालने के समान है। यह कार्य एक क्षत्रिय का नही। यह तो एक हत्यारे का काम है। मैं हत्यारा नही हूँ।"

"एक समय तो आप पुष्यमित्र की हत्या करने के लिए तैयार हो गये थे ?"

"हाँ; परन्तु पुष्यमित्र बंदी नही था। वह असावधान अवश्य था और उसको सावधान करना मेरा काम नही था। अश्व की हत्या तो भीरुता है, जो कदाचित् मै नही कर सकूंगा।"

"परन्तु इस आज्ञा-उल्लघन से तो आपकी हत्या हो सकती है।"

"मैने अभी निश्चय नही किया। जब निश्चय करूंगा तो इस दण्ड पर भी विचार कर लूंगा।"

"कब तक निश्चय कर लेगे आप ?"

"सौम्या !" वीरभद्र के मन मे एक सन्देह उत्पन्न हो गया था, "तुम ऐसी बाते कर रही हो, जैसे यह आज्ञा देने वाली तुम ही हो।"

"नही पिताजी ! मै तो नही हूँ, इस पर भी मै उस व्यक्ति के मन की बात जानती हूँ, जिसने यह आज्ञा दी है।"

"और तुम्हारा उस व्यक्ति से क्या सम्बन्ध है ?" वीरभद्र का हाथ अनायास ही अपनी खड्ग के मूठ पर चला गया।

"मै मगध-राज्य की उत्तराधिकारिणी हूँ। मेरी और यज्ञसेन की सधि हो चुकी है। हम दोनो पुष्यमित्र को नीचा दिखाने की योजना बना रहे है।"

"परन्तु सौम्या !" वीरभद्र के मन मे जिस बात का सन्देह हुआ था, वह मिट गया और अपना हाथ खड्ग की मूठ से हटाकर उसने कहा, "यह तो मरासर हारने की योजना है।"

"नही पिताजी ! हमने पूर्ण योजना के प्रत्येक पग पर विचार कर लिया है। देखिये, मगध-सेना बढती हुई चली आ रही है। बिना विरोध यह राजधानी के द्वार तक आने दी जायेगी और वहाँ नगर के बाहर खाई में सब भर दी जायेगी।"

"ओह ! अब तो हमारी सौम्या सेनापति की भाँति बाते करने लगी है। देखो सौम्या, यदि यह करना है और ऐसा करने की सामर्थ्य है तो

अश्व को चोरी कर छिपाने की आवश्यकता नही थी और फिर उसको अभी मार देने की बात भी व्यर्थ है।"

"जहाँ तक चोरी रखने की बात है, यह नीति है। हम मगध-सेना को परेशान करना चाहते है। जहाँ तक अश्व की हत्या का प्रश्न है, वह तो पराजय के समय ही होगा। हम अपने पराजित होने के पश्चात् भी मगध को परेशान करना अपना धर्म समझते है।"

वीरभद्र कुछ बोला नही। उसने अपने मन मे विचार किया कि अश्व को छिपाकर रखना तो किसी प्रकार भी अनीति नही कही जा सकती। हाँ, हत्या की बात उसके मन मे नही बैठी। इस पर भी वह चुप था।

एक दिन वह महामात्य राक्षस से मिलने के लिए गया। वह चाहता था कि अश्व की रक्षा के विषय मे अपने प्रबन्ध का उल्लेख कर दे। प्रबन्ध इतना सुरक्षापूर्ण था कि पूर्ण नगर के आग मे भस्म हो जाने पर भी अश्व को आंच नही आ सकती थी।

राक्षस ने वीरभद्र को आया देखा तो उसको पृथक् आगार मे ले जाकर पूछ लिया, "पुरस्कार लेने आये हो क्या ?"

"पुरस्कार तो मिलेगा ही; परन्तु अभी कार्य समाप्त नही हुआ।"

"हम तुम्हारे प्रबन्ध से सर्वथा सन्तुष्ट हैं। इस कारण तुम्हारा पुरस्कार तुमको देते है। इस विषय मे इतनी आज्ञा और है कि यह अश्व तुमको उसके हाथ मे देना होगा, जिसके पास उसे प्राप्त करने के लिए हमारे हस्ताक्षरों से अंकित आदेश-पत्र होगा।"

इस आज्ञा को सुन, वीरभद्र का चित्त कुछ हल्का हो गया। वह समझ गया कि अब अश्व का हत्यारा, वह नही होगा। कौन उसकी हत्या करेगा, यह उसके जानने की बात नही है।

: १० :

इसके पश्चात् जब भी सौम्या और वीरभद्र का साक्षात्कार होता, सौम्या मुस्करा देती थी। यह मुस्कराहट वीरभद्र को तनिक भी पसन्द नही थी, परन्तु वह शान्त रहता था। सौम्या ने उसको बताया था कि

उसकी यज्ञसेन से सधि हो गई है। अत: अब वह उसके स्वामी के समान ही पदवी वाली थी। इस कारण वह चुप था।

समय व्यतीत होता गया। मागधी सेनाएँ विदर्भ मे राजधानी की ओर बढती चली आ रही थी। राजधानी मे इससे हलचल मच रही थी। जहाँ जन-साधारण दूसरे देश की सेनाओ को वे रोक-टोक चले आते देख भय-भीत था, वहाँ सैनिको का राजधानी मे जमाव बढता जा रहा था। लोग इससे भी सुख का अनुभव नही कर रहे थे। नित्य अनेक स्थानो पर नाग-रिको एव सैनिको मे झगड़े होते थे।

इस दुर्व्यवस्था को राज्य-परिवार के अन्य लोग भी देख रहे थे। यज्ञसेन का एक बड़ा भाई था। नाम था भद्रसेन। वह रहता तो छोटे भाई के साथ ही था, परन्तु राज्य-कार्य मे वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करता था। उससे परिचित लोग जानते थे कि वह साधु-स्वभाव का व्यक्ति है।

जब नागरिको की चचलता बढने लगी तो उसने भी इन समाचारो को सुना और उनका कारण जानकर तो वह विक्षुब्ध हो उठा। एक दिन यज्ञसेन के सम्मुख जा, उसने पूछा, "यज्ञसेन ! यह क्या हो रहा है ?"

"क्या हो रहा है भैया ?"

"सुना है तुमने मगध-राज्य से आया हुआ यज्ञ का अश्व पकड़ लिया है ?"

"नहीं भैया ! मैने नही पकडा है। सुना है कि वह हमारे राज्य में पकडा गया है। अभी तक पता नही चला है कि किसने उसे पकडा है।"

"यह तुम कहते हो ! क्या यह तुम्हारा कर्तव्य नही था कि तुम उसकी रक्षा करते ?"

"मेरा कर्तव्य कैसे हो गया ?"

"वह अश्व एक प्रकार की चुनौती थी। उसका अभिप्राय था कि मगधराज पुष्यमित्र चक्रवर्ती सम्राट् की पदवी प्राप्त कर रहा है और तुमको इसमें आपत्ति है अथवा नही ? अब तो यह समझा जायेगा कि तुम्हारे

ज्ञान के बिना, तुम्हारी प्रजा ने मगध को चुनौती दी है। वह अज्ञात वीर, मगधराज के चक्रवर्ती होने मे, आपत्ति करता है, परन्तु उसमे साहस नहीं कि वह डट कर मगध का विरोध कर सके। मगध के क्रोध का फल तुमको सहन करना पडेगा।"

"भैया ! मै मगध-राज्य का चौकीदार नही कि उनके घोडे, कुत्तो की देखभाल करता फिरूँ। उसके सरक्षकों को मैने यहाँ आने से रोका नही। इस पर भी यदि उन्होने अपना कर्तव्य-पालन नही किया तो मै दोषी नहीं हो सकता।

"हाँ, यदि उनकी सेना ने मेरे एक भी नागरिक पर अत्याचार किया तो लोहे से लोहा बजेगा और फिर ब्राह्मण कुमार को पता चलेगा कि राज्य-कार्य क्षत्रियो का कार्य है, ब्राह्मणो का नही।"

"तुम कुछ मूर्ख होते जाते हो।" भद्रसेन ने माथे पर त्योरी चढाकर कहा, "यदि तुम इस अश्व को ढूँढकर उनको वापस नही करते तो उनकी सेना को तुम्हारे राज्य मे आकर अश्व ढूंढने का अधिकार हो जाता है। जब उनकी सेनाएँ यहां आयेगी तो युद्ध होगा। यह अकारण ही तुम युद्ध मोल ले रहे हो। तुम्हारे अपने सैनिक भी तुम्हारी प्रजा पर अत्याचार कर रहे है, तो दूसरे राज्य के सैनिक क्या कुछ नही करेगे ?"

"मै इस विषय मे कुछ नही कर सकता।"

"यज्ञसेन ! तुम भूल कर रहे हो। इसमे तुमको लज्जित होना पडेगा।"

"भैया ! आप भगवत्भजन कीजिये। राजनीति आपका कार्य नही है।"

भद्रसेन का पुत्र माधवसेन भी यह वार्त्तालाप सुन रहा था। जब पिता-पुत्र अपने आगार में पहुँचे तो माधवसेन ने अपनी सूचना सुना दी। उसने कहा, "पिता जी ! वास्तविक बात यह है कि अश्व की चोरी महाराज की अनुमति से ही हुई है। जिस व्यक्ति ने उस अश्व को चुराया है, वह मगधाधिपति से द्वेष रखता है। इस कारण ही वह उस प्रकार का घृणित कार्य करने के लिए तैयार हो गया है। न केवल यही कि अश्व को चुराकर छिपाकर रखा गया है, प्रत्युत उसको यह आदेश भी है कि

कही विदर्भ की पराजय हुई, तो अश्व को मार, कर निर्बन्ध्या नदी में बहा दिया जाय।"

"तो यज्ञसेन इतना दुष्ट हो गया है ?"

"पिताजी ! वृहद्रथ की विधवा रानी मौम्या नित्य महाराज से मिलने आती है और इस पूर्ण योजना मे उसकी सम्मति है। वह यह कह रही है कि यदि एक वार मगध की सेना को यहाँ पराजय मिल गई, तो वह मगध-राज की पूर्ण बौद्ध-जनता को विद्रोह के लिए तैयार कर लेगी।

"केवल यही नही, प्रत्युत् आन्ध्र और कलिंग राज्यों ने भी यह वचन दिया है कि यदि मगध को पहली पराजय विदर्भ दे सका तो पीछे वे भी उससे युद्ध करने के लिये तैयार हो जायेगे।"

"इससे क्या होगा ?"

"होगा यह कि पहले मगध का राज्य वृहद्रथ की विधवा को दिलवा दिया जायेगा और तत्पश्चात् यज्ञसेन अश्वमेध-यज्ञ कर चक्रवर्ती राजा बन जायेगा।"

"योजना तो सुन्दर है, परन्तु है अव्यवहारिक।"

"मैने महाराज से कहा था। मै जब महाराज पुष्यमित्र के राज्या-भिषेक के समय मगध मे गया था तो वहाँ के सेट्ठियो और शूद्रों के विचार जान आया था। दोनों पुष्यमित्र को भगवान का अवतार मान, पूजा करते है। ऐसी अवस्था मे छल-बल से यदि वृहद्रथ की विधवा को वहाँ की रानी बनाया गया, तो पूर्ण राज्य की जनता विद्रोह कर देगी।

"इसके अतिरिक्त पुष्यमित्र राज्य की रक्षा के लिए सेना की आव-श्यकता को समझता है और उसने पाँच लाख चतुरंगिणी सेना तैयार कर रखी है। कदाचित् इस यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए सेना मे और भी वृद्धि हुई हो। ऐसी अवस्था में विदर्भ, आन्ध्र और कलिंग मिलकर भी मगध को परास्त नही कर सकेंगे।"

"यह तो विदर्भ का दुर्भाग्य है कि यज्ञसेन जैसा अभिमानी व्यक्ति यहाँ का शासक है।"

पिता-पुत्र का वार्तालाप तो यही समाप्त हो गया, परन्तु माधवसेन का मन शान्त नही था। उसके मन मे दो विचार काम कर रहे थे। एक तो यह कि राज्य स्वतन्त्र बना रहे और दूसरा कम से कम जन-रक्तपात हो।

उसके मन मे एक विचार आया और वह मगध सेनापति विद्रुम से मिला, कुछ निश्चय कर आया। उसने मगध की सेना से विदर्भ की रक्षा के लिए यत्न और सधि कर ली।

परिणाम यह हुआ कि समय पर माधवसेन की सहायता से मगध-सेना ने राजधानी पर अधिकार कर लिया और पूर्व इसके कि विदर्भ की सेना पीछे से आक्रमण करती, यज्ञसेन और उसका सेनापति मारे जा चुके थे। इनके मर जाने पर विदर्भ सेना ने निरुत्साहित हो शस्त्र डाल दिये।

माधवसेन बन्दी बना लिया गया था। अत वह सेनापति विद्रुम से मिल नही सका। सेनापति ने महामात्य राक्षस को बुलाकर अश्व के विषय मे पूछा। राक्षस ने कहा, "सेनापति ! मैने अभी मगध की सेवा स्वीकार नही की है।"

"तो महामात्य जानते है कि अश्व कहाँ है, इस पर भी बताना स्वीकार नहीं करते ?"

"अश्व का पता बताने का तात्पर्य हुआ कि मै अपने मृत स्वामी के साथ विश्वासघात करता हूँ।"

इस उत्तर से विद्रुम बहुत ही परेशान था। इस कारण उसने राक्षस को भी बन्दीगृह मे डालने की आज्ञा दे दी।

अश्व की खोज निरन्तर जारी रही। राजधानी के सब द्वारो पर देख-भाल के लिए सैनिकों का पहरा बिठा दिया गया। साथ ही एक घोषणा कर दी गई कि यदि दो दिन के भीतर यज्ञ का अश्व नही मिला तो नागरिकों के घर-घर मे घुसकर उसकी खोज की जायेगी। इस खोज मे बाधा उपस्थित करने वाले को मौत के घाट उतार दिया जायेगा। इस घोषणा को वीरभद्र ने भी सुना। उसके सहायक सैनिक, जो अश्वपालक के रूप में अश्वशाला में पहरा देते थे, राज्य पर मगध-सेना का अधिकार होने पर,

भाग चुके थे और वीरभद्र अकेला ही अश्व की सुरक्षा का भार लिए बैठा था। सेनापति की घोषणा सुन, उसने निश्चय कर लिया कि चूंकि यज्ञसेन मारा जा चुका है, अतः अश्व को बंदी बनाये रखने का कोई लाभ नही। व्यर्थ में सारी प्रजा पर अत्याचार होगा, इसलिए अश्व का पता सेनापति विद्रुम को दे देना चाहिये। अतः ऐसा निश्चय कर वह घर से निकला तो सौम्या भी उसके साथ चल पडी।

"किधर चल रही हो ?" वीरभद्र ने पूछा।

"आप बताइये, आप किधर जा रहे है ?"

वीरभद्र ने उसके मुख को देखते हुए कहा, "तुम अब मगध की रानी तो बनने से रही। मै समझता हूँ कि इस स्थिति मे अश्व अब मगध सेनापति को वापस कर दिया जाय।"

"परन्तु पिताजी ! अश्व तो घुडसाल मे है न ?"

"परन्तु मै वहाँ बिना सैनिकों को साथ लिये नही जाऊंगा।"

"अच्छी बात है।" यह कहकर सौम्या वही खड़ी रह गई। वीरभद्र ने उसके मुख पर देखा, परन्तु वहाँ उसके विचारों का किसी प्रकार का भी सकेत न पा, वह राज्यप्रासाद की ओर चल पडा।

सौम्या ने जब यह जाना कि उसका पिता अश्व को मगध-सेनापति को सौपने जा रहा है, तो वह स्वयं अश्वशाला की ओर चल पडी। उसको विदित था कि अश्व कहाँ रखा गया है। वह स्वयं उसकी हत्या करना चाहती थी। राज्यप्रासाद की घुडसाल के प्रायः सब अश्व विदर्भ सैनिक अपने-अपने लिये खोल कर ले गये थे और अश्वपालक तो पहले ही निकाल दिये गए थे। अश्वपालको के स्थान पर उनके वेश मे सैनिक रहते थे। वे भी अश्वशाला छोड़कर चले गये थे।

जब सौम्या वहाँ पहुँची तो घुड़साल खाली पड़ी थी। सौम्या ने गुफा का द्वार खोला। इस गुफा के विषय मे उसने सुन रखा था, परन्तु वह वहाँ आज प्रथम बार ही आई थी। इस कारण अंधेरा देख, भीतर जाने से वह डर रही थी। कुछ देर वहाँ ठहरने पर उसको वहाँ कुछ-कुछ दिखाई देने

लगा। इस समय उसे गुफा के एक कोने मे दीपक, तैल और दीपक को जलाने के लिए चकमक पत्थर रखा हुआ दिखाई दिया।

सौम्या ने दीपक जलाया और मार्ग खोजती हुई गुफा के भीतर घुस गई। गुफा बहुत लम्बी थी और उसके दूसरे किनारे से स्वच्छ वायु आ रही थी। इससे वह अनुमान लगा रही थी कि गुफा का दूसरा किनारा किसी खुले स्थान की ओर है।

थोड़ी दूर जाने पर गुफा मे सीढ़ियाँ आती थी। उन सीढियों पर उतरने के पश्चात् फिर सीधी गुफा आ जाती थी। लगभग चौथाई कोस जाने पर गुफा खुली हो गई। वहाँ एक खूंटे से, जो दीवार मे गढा था, अश्व बँधा हुआ था। अश्व के भूषण तथा अन्य शृ गार की वस्तुएँ उतार कर एक कोने से रखी हुई थी। अश्व बहुत ही बेचैनी से अपने पाँव से भूमि कुरेद रहा था।

सौम्या ने दीपक एक ओर रख दिया और विचार करने लगी कि अब क्या करे। एक तो यज्ञसेन का आदेश था कि पराजय की अवस्था मे अश्व को गुफा के दूसरे द्वार से ले जाकर टुकड़े-टुकड़े कर, निर्बन्ध्या नदी में बहा दिया जाय। वह स्वयं को ऐसा करने मे असमर्थ पा रही थी। सैनिक तो यह कार्य कर सकते थे। वह उसको खुले स्थान पर ले जाकर किस प्रकार टुकडे-टुकड़े करेगी, यह समझ नही सकी।

उसके अपने मन में यह विचार आया कि जब मारना ही है तो नदी-तट पर ले जाने की क्या आवश्यकता है ? यही गुफा मे ही उसे मार डालने में सुविधा होगी।

अतः वह कोई खड्ग ढूंढने लगी। किन्तु वहाँ इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं थी। उसका विचार था कि कदाचित् किसी सैनिक का कोई शस्त्र वहाँ भूल से रह गया हो। इससे उसका कार्य सिद्ध हो जाता। वह दीपक लेकर गुफा में इधर-उधर ढूंढने का प्रयत्न करने लगी।

ढूंढती-ढूंढती वह गुफा के उस द्वार तक पहुँच गई, जो घुड़साल की ओर खुलता था। वहाँ घोड़े के लिए घास के ढेर मे, उसको एक लोहे का

छड मिला, जो एक ओर से तीखा था। इसका यह किनारा इसलिए तीखा किया गया था, जिससे वह भूमि मे सुगमता से गाढा जा सके।

उमने उसका परीक्षण किया और उससे अच्छी अन्य कोई वस्तु न देख, उसी को लेकर चल पडी। अश्व के समीप पहुँच, उसने दीपक को एक ओर रख दिया और नेजे की भाँति छड को हाथ में ले, विचार करने लगी कि किस स्थान पर वार करे, जहाँ कम-से-कम परिश्रम से अधिक-से-अधिक आघात पहुँचाया जा सके। वह इसी निश्चय पर पहुँची कि पेट ही इस कार्य के लिए सर्वोत्तम स्थान है।

वह उस छड को तान, अपने पूरे बल से अश्व के पेट पर वार करने वाली थी कि किसी ने पीछे से उसके कंधे पर हाथ रख, उसको वार करने से रोक दिया। यह माधवसेन था।

सौम्या माधवसेन को पहचानती नही थी। अत उसने क्रोध मे पूछा, "कौन हो तुम ?"

माधवसेन ने केवल यह कहा, "ठहरो !" उसी क्षण उसके साथ आये सैनिकों ने सौम्या को घेर लिया। अपने को इस प्रकार घिरी देख, वह सामने खडे एक सैनिक पर लोहे के छड से झपटी। एक अन्य सैनिक ने, एक ही वार से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।

अश्व को सब सामान सहित तथा सौम्या का शव, गुफा से बाहर लाया गया। इस समय वीरभद्र तथा सेनापति विद्रुम अपने अगरक्षको के साथ वहाँ आ पहुँचा। अश्व को हानिरहित पाकर सेनापति ने भारी प्रसन्नता प्रकट की। परन्तु माधवसेन ने सौम्या का धड़ और सिर सामने उपस्थित कर बताया कि यह स्त्री अश्व को मार डालने के लिए वहाँ पहुँच गई थी और यदि वे दो-तीन क्षण विलम्ब से पहुँचते तो अवश्य ही अश्व घायल हो चुका होता।

वीरभद्र ने सौम्या को पहचाना तो उसका मुख विवर्ण हो गया। माधवसेन ने बताया, "यही बृहद्रथ की विधवा स्त्री तथा इस वीरभद्र की कन्या सौम्या है।"

इससे वीरभद्र को भी बन्दी बना लिया गया। सौम्या का दाह-संस्कार कर दिया गया। पद्मा को जब विदित हुआ कि उसका पति और पुत्रो दोनों अश्व को मार डालने के षड्यन्त्र मे पकडे गये है, तो वह अपने भाग्य को कोसती हुई, अनशन कर अपना प्राणान्त कर बैठी।

विदर्भ के पराजित होने का समाचार जब कलिग और आन्ध्र देशो को मिला तो उन्होने अश्व को अपने-अपने देशो से सुरक्षित निकल जाने देने मे, किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नही की।

इस प्रकार सफलता से अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ। इसकी पूर्णाहुति देने के लिए पुन· सब उत्तरी भारत के नरेशो को आमन्त्रित किया गया और यज्ञ को बहुत ही धूम-धाम से समाप्त किया गया। यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने की प्रसन्नता मे सब बन्दी मुक्त कर दिये गए। इस प्रकार वीरभद्र और राक्षस भी मुक्त हो गये।

पूर्णाहुति देते समय महर्षि पतजलि ने यजमान को आशीर्वाद दिय और भारत के नरेशों को इस यज्ञ मे सम्मिलित होने तथा इसके सफल होने मे, सहयोग देने के लिये धन्यवाद दिया।

महर्षि पतजलि ने धन्यवाद करते हुए कहा, "भारत-नरेशो को मै इस नवयुग के आगमन पर बधाई देता हूँ। पिछले एक सौ वर्ष से भी अधिक काल से देश पर अज्ञानता की काली घटा छाई रही है। ये काली घटा बौद्धमत की नही थी। हम बौद्धमत को भी भारत मे चल रही अने जीवन-मीमासाओं मे से एक मानते है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीव· चलाने के लिए अपना-अपना मार्ग स्वीकार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है परन्तु महाराज अशोक के काल से तो बौद्ध जीवन-मीमासा को, पूर्ण समाज की जीवन मीमासा बनाने का बलपूर्वक यत्न किया जाता रहा है। दुर्भाग्य से उस जीवन-मीमासा को राज्य-सचालन मे भी प्रयोग किया गया। उसक परिणाम, देश में घोर अन्यायाचरण और उत्साह-हीनता का प्रसार होन हुआ।

"हम पुनः अपनी थाह पा गये है। नदी में डूब रहे व्यक्ति की भाँति

जैसे उसके पाँव भूमि पर लग जाते है, वैसे ही हम आश्रय पा गये अनुभव करते है ।

"हम पुन: यज्ञमय जीवन पर विश्वास रखने लगे है । इस सब परिवर्तन को लाने मे महाराज पुष्यमित्र का अथक प्रयास ही कारण हुआ है। भारत के सब सम्राट् पुष्यमित्र को चक्रवर्ती राजा का पद देकर, इस नवीन युग के स्वागत मे सम्मिलित हुए है ।

"हमारी भगवान से प्रार्थना है कि वह हम भारतवासियो को सुमति और शक्ति दे जिससे हम देश और राष्ट्र को स्वतन्त्र, सबल और सत्यमार्ग का पथिक रख सके ।"

इसके पश्चात् पुष्यमित्र ने छत्तीस वर्ष तक चक्रवर्ती राज्य का भोग किया और देश ने इस राज्य मे अभूतपूर्व उन्नति की ।